श्रीगणेशाय नमः

श्रीयोगवाशिष्ठ

द्वितीय भाग

निर्वाण प्रकरण

www.tantrik-astrologer.in

अनुक्रम

दिवसरात्रिव्यापारवर्णन 7

विश्रामदृढ़ीकरणं 9

ब्रह्मैकप्रतिपादन 11

चित्तभावाभाववर्णन 12

राघवविश्रान्तिवर्णन 13

राघवविश्रान्तिवर्णन 13

अज्ञानमाहात्म्यवर्णन 14

अविद्यालतावर्णन 18

अविद्या निराकरण 19

अविद्याचिकित्सावर्णन 21

जीवन्मुक्तनिश्चयोपदेश 23

जीवन्मुक्तनिश्चय वर्णन 27

ज्ञानज्ञेयविचार 28

भुशुण्ड्यु पाख्याने सुमेरुशिखर लीलावर्णन 29

भुशुण्डिदर्शन 30

भुशुण–डिसमागमन 31

भुशुण्ड्यु पाख्याने अस्ताचललाभ 32

सन्तमाहात्म्यवर्णन 34

www.tantrik-astrologer.in

भुशुण्ड्यु पाख्याने जीवितवृत्तान्त वर्णन....36
चिरातीतवर्णन....38
संकल्पनिराकरण....40
समाधि वर्णन....41
चिरञ्जीविहेतुकथन....44
भुशुण्ड्यु पाख्यानसमाप्ति....46
परमार्थयोगोपदेश....47
देहसत्ताविचार....50
वशिष्ठाश्रमवर्णन....54
रुद्रवशिष्ठसमागम....55
जगत्परमात्मरूप वर्णन....57
चैतन्योन्मुखत्वविचार....59
मनप्राणोक्त प्रतिपादन....63
देहपातविचार....66
दैवप्रतिपादन....68
परमेश्वरोपदेश....70
देवनिर्णयो....72
महेश्वरवर्णन....74
नीतिनृत्यवर्णन....75
अन्तर्बाह्यपूजावर्णन....76
देवार्चनाविधान....77

www.tantrik-astrologer.in

देवपूजाविचार ... 79

जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादन ... 80

परमार्थविचार ... 82

विश्रान्ति आगम ... 84

चित्तसत्तासूचन ... 86

विल्वोपाख्यान ... 88

शिलाकोशउपदेश ... 89

सत्ताउपदेश ... 91

ब्रह्मएकताप्रतिपादन ... 93

स्मृतिविचारयोग ... 94

संवेदनविचार ... 96

यथार्थोपदेश ... 98

नारायणावतार ... 101

अर्जुनोपदेश ... 103

सर्वब्रह्मप्रतिपादन ... 106

जीवनिर्णय ... 108

अर्जुन विश्रान्तिवर्णन ... 110

भविष्यद् गीता ... 112

प्रत्यगात्मबोधवर्णन ... 113

विभूतियोगोपदेश ... 115

जाग्रत्स्वप्नविचारो ... 116

www.tantrik-astrologer.in

ब्रह्मैकताप्रतिपादन....117
वैताल प्रश्नोक्ति....123
भगीरथोपदेश....125
निर्वाणवर्णन....128
भगीरथोपाख्यानसमाप्ति....129
शिखर ध्वजचुड़ालोपाख्यान....130
चुड़ालाप्रबोध....131
अग्निसोमविचारयोग....133
चिन्तामणिवृत्तान्त....140
हस्तिआख्यानवर्णन....147
हस्तीवृत्तान्तवर्णन....148
शिखरध्वजसर्वत्याग वर्णन....150
राजविश्रान्ति वर्णन....154
निर्वाणप्रकरण....157
शिखरध्वजबोधन....157
शिखरध्वजबोध वर्णन....162
परमार्थ उपदेश....164
शिखरध्वजबोध वर्णन....166
शिखरध्वजस्त्री प्राप्ति....169
विवाहलीला वर्णन....173
मायाशक्रागमन वर्णन....175
www.tantrik-astrologer.in

मायापिञ्जर वर्णन..176

निर्वाण प्रकरण..177

शिखरध्वजचुड़ालाख्यान..179

बृहस्पति बोधन..180

मिथ्यापुरुषाकाश रक्षाकरणं..182

मिथ्यापुरुषोपाख्यान..184

परमार्थयोगोपदेश..186

महाकर्त्राद्युपदेश..188

कलना निषेध..190

सन्तलक्षण माहात्म्यवर्णन..192

इक्ष्वाकुप्रत्यक्ष उपदेश..195

राजाइक्ष्वाकुप्रत्यक्ष उपदेश..197

सर्वब्रह्म-प्रतिपादन..200

परमनिर्वाण वर्णन..203

मोक्षरूप वर्णन..205

परमार्थ उपदेश..207

www.tantrik-astrologer.in

द्वितीय भाग निर्वाण प्रकरण प्रारम्भ

दिवसरात्रिव्यापारवर्णन

वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! उपशम प्रकरण के अनन्तर अब तुम निर्वाण प्रकरण सुनो जिसके जानने से तुम निर्वाणपद को प्राप्त होगे। बड़े उत्तम वचन मुनिनायक ने रामजी से कहे हैं और रामजी ने सब और ओर से मन खैंचकर मुनीश्वर के वाक्यों में स्थापित किया है। और राजालोग भी निस्स्पन्द हो गये मानो कागज पर चित्र लिखे हैं-और वशिष्ठजी के वचनों को विचरने लगे। राजकुमार भी विचारते और कण्ठ हिलाते थे और शिर और भुजा फेर के विस्मय को प्राप्त हुए। वे प्रसन्नता को प्राप्त हुए कि जिस जगत् को सत्य जानकर हम बिचरते थे वह है ही नहीं। ऐसा विचारकर वे आश्चर्य को प्राप्त हुए। तब दिन का चतुर्थभाग रह गया और सूर्य अस्त हुए-मानो वशिष्ठजी के वचन सुनकर वे भी कृतार्थ हुए हैं -सब तेजक्षीण हो गया और शीतलता प्राप्त हुई। स्वर्ग से जो सिद्ध और देवता आये थे उनके गले में मन्दार आदिक वृक्षों के फूल थे उनसे पवन के द्वारा सब स्थान सुगन्धित हो गये और भँवरे फूलों पर गुञ्जार करने लगे और झरोखों के मार्ग से सूर्य की किरणें आती थीं उनसे सूर्यमुखी कमल जो राजा और देवताओं के शीश पर थे वह सूख गये। जैसे मन से जगत् की सत्ता निवृत्त हो जाती है और वृत्ति सकुचाती जाती है। बालक जो सभा में बैठे थे और पिञ्जरों में जो पक्षी बैठे थे उनके भोजन का समय हुआ और बालकों के भोजन के निमित्त मातायें उठीं। जब चौथे पहर राजा की नौबत, नगारे, भेरी, शहनाई, बाजे बजने लगे और वशिष्ठजी जो बड़े ऊँचे स्वर से कथा कहते थे- उनका शब्द नगारे और बाजों से दब गया तब-जैसे वर्षाकाल का मेघ गरजता है और मोर बोलकर तूष्णींम् हो जाते हैं तैसे ही वशिष्ठजी तूष्णीम् हो गये। ऐसा शब्द हुआ कि जिससे आकाश, पृथ्वी और सब दिशा भर गये और पिञ्जरो में पक्षी पंखों को फैलाकर भड़ भड़ शब्द करने लगे-जैसे भूकम्प हुए से लोग काँपते और शब्द करते हैं और-बालक माता के शरीर से लिपट गये। इसके अनन्तर मुनिशार्दूल वशिष्ठजी बोले कि हे निष्पाप, रघुनाथ! मैंने तुम्हारे चित्तरूपी पक्षी के फँसाने के निमित्त अपना वाक्‌रूपी जाल फैलाया है, इससे अपने चित्त को वश करके तुम आत्मपद में लगो। हे रामजी! यह जो मैंने तुमको उपदेश किया है उसके सार में दुर्बुद्धि को त्यागकर चित्त को लगाओ। जैसे हंस जल को त्याग कर दूध पान करता है तैसे ही आदि से अन्तपर्यन्त सब उपदेश बारम्बार विचारकर सार को अंगीकार करो। इस प्रकार संसारसमुद्र से तरकर परमपद को प्राप्त होगे। अन्यथा न होगे। हे रामजी! जो इन वचनों को अंगीकार करेगा वह संसारसमुद्र से तर जावेगा और जो अंगीकार न करेगा वह नीच गति को प्राप्त होगा। जैसे विन्ध्याचल पर्वत की खाईं में हाथी गिरके कष्ट पाता है तैसे ही वह संसार में कष्ट पावेगा। हे रामजी! ये जो मेरे वचन हैं इनको ग्रहण न करोगे तो नीचे गिरोगे-जैसे पन्थी हाथ से दीपक त्यागकर रात्रि को गढ़े में गिरता है-और जो असंग होकर व्यवहार में विचरोगे तो आत्मसिद्धि को प्राप्त होगे। यह जो मैंने तुमको तत्त्वज्ञान, मनोनाश और वासनाक्षय कहा है इस अभ्यास से सिद्धि को प्राप्त होगे। यह शास्त्र का सिद्धान्त है। हे सभा! हे महाराजो, हे राम, लक्ष्मण और भूपतिलोगों! जो कुछ मैंने तुमसे कहा है उसको तुम विचारो, जो कुछ और कहना है उसे मैं प्रातःकाल कहूँगा। इतना कह वाल्मीकिजी बोले हे साधो! इस प्रकार जब मुनीश्वरों ने कहा तब सब सभा उठ खड़ी हुई और वशिष्ठजी के वचनों को पाकर सब खिल आये-जैसे सूर्य को पाकर कमल खिल आता है। वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों इकट्ठे उठे और वशिष्ठजी विश्वामित्र को अपने आश्रम में ले गये आकाशचारी देवता और सिद्ध वशिष्ठजी को नमस्कार करके अपने अपने स्थानों को गये, राजा दशरथ अर्ध्य पाद्य से वशिष्टजी का पूजन करके अपने अन्तःपुर में गये और श्रोता लोग भी आज्ञा लेकर और वशिष्ठजी का पूजन करके अपने अपने स्थानों में गये। राजकुमार अपने

www.tantrik-astrologer.in

मण्डल को गये, मुनीश्वर वन में गये और राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न वशिष्ठजी के आश्रम को गये और पूजा करके फिर अपने गृह में आये। सब श्रोता अपने अपने स्थानों को जाकर स्नानसन्ध्यादिक कर्म करने लगे, पितर और देवताओं की पूजा और ब्राह्मणों से लेकर भृत्य पर्यन्त सबको भोजन कराकर अपने मित्र और भाइयों के साथ भोजन किया और यथाशक्ति अपने वर्णाश्रम के धर्म को साधा। जब सूर्य भगवान् अस्त हुए और दिन की क्रिया निवृत्त हो गई तब रात्रि हुई और निशाचर बिचरने लगे तब भूचर, राजऋषि और राजपुत्र आदिक जो श्रोता थे सो रात्रि को एकान्त में अपने अपने आसन पर बैठकर विचारने लगे। राजकुमार और राजा अपने अपने स्थानों पर बैठे और ब्राह्मण, तपस्वी कुशादिक बिछाकर बैठे विचारते थे कि संसार के तरने का क्या उपाय कहा है, और जो वशिष्ठजी ने वचन कहे थे उनमें भले प्रकार चित्त को एकाग्र कर और भले प्रकार विचारकर निद्रा को प्राप्त हुए। जैसे सूर्य उदय हुए पद्मिनियाँ मुँद जाती हैं तैसे ही वे सब सुषुप्ति को प्राप्त हुए, पर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न तीन पहर वशिष्ठजी के उपदेश को विचारते रहे और आधे पहर सोकर फिर उठे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे दिवसरात्रिव्यापारवर्णनन्नाम प्रथमस्सर्गः ||1||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

विश्रामदृढ़ीकरणं

वाल्मीकिजी बोले, हे साधो! इस प्रकार जब रात्रि व्यतीत हुई और तम का नाश हुआ तब राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्नादिक स्नान और सन्ध्यादिक कर्म करके वशिष्ठजी के आश्रम में जा स्थित हुए । वशिष्ठजी भी संन्ध्यादिक करके अग्निहोत्र करने लगे और जब कर चुके तब रामादिक ने उनको अर्घ्य पाद्य से पूजा और चरणों पर भले प्रकार मस्तक रक्खा । जब राम जी गये थे तब वशिष्ठजी के द्वारे पर कोई न था पर एक घड़ी में अनेक सहस्त्र जीव आये और वशिष्ठजी रामादिक को साथ लेकर राजा दशरथ के गृह में आये । तब राजा दशरथ उनकी अगवानी को आगे आये और वशिष्ठजी का आदर व पूजन किया और दूसरे लोगों ने भी बहुत पूजन किया । निदान नभचर और भूचर जितने श्रोता थे वे सब आये और नमस्कार करके बैठे और सब निस्स्पन्द और एकाग्र होकर स्थित भये । जैसे निस्स्पन्द वायु से कमलोंकी पंक्ति अचल होती है तैसे वे बैठे । भाटजन जो स्तुति करनेवाले थे वे भी एक ओर बैठे और सूर्य की किरणें झरोखों के मार्ग से आईं - मानो किरणें भी वशिष्ठजी के वचन सुनने को आई हैं । तब वशिष्ठजी की ओर रामजी ने देखा जैसे स्वामिकार्त्तिक शंकर की ओर, कच बृहस्पति की ओर और प्रह्लाद शुक्र की ओर देखें तैसे ही रामजी की दृष्टि औरों को देखते-देखते वशिष्ठजी पर आ स्थित हुई । तब वशिष्ठ जी ने रामजी की ओर देखा और बोली, हे रघुनन्दन! मैंने जो तुमको उपदेश किया है वह तुमको कुछ स्मरण है? वे वचन परमार्थबोध के कारण, आनन्दरूप और महागम्भीर हैं । अब और भी बोध के कारण और अज्ञानरूपी शत्रु के नाशकर्त्ता, इन्दुप्रभा वचनों को सुनो निरन्तर आत्मसिद्धान्त शास्त्र मैं तुमसे कहता हूँ । हे रामजी! वैराग्य और तत्त्व के विचार से संसारसमुद्र को तरता है और सम्यक्‌तत्त्व के बोध से जब दुर्बोध निवृत्त हो जाता है तब वासना का आवेश नष्ट हो जाता है और निर्दुःखपद को प्राप्त हो जाता है वह पद देशकाल और वस्तु के परिच्छेद से रहित है । वही ब्रह्म जगत्‌रूप होकर स्थित हुआ है और भ्रम से द्वैत की नाईं भासता है । वह सब भावों से अविच्छिन्न सर्वत्र ब्रह्म है, इस प्रकार महत् स्वरूप जानकर शान्तिमान् हो । हे रामजी! केवल ब्रह्म तत्त्व अपने आपमें स्थित है, न कुछ चित्त है, न अविद्या है, न मन है, न जीव है, यह सब कलना ब्रह्म में भ्रम से फुरती हैं । जो स्पन्द फुरना दृश्य और चित्त है सो कलनारूप संभ्रम है । ब्रह्म में कोई पदार्थ नहीं । हे रामजी! स्वर्ग, पाताल और भूमि में सदाशिव से तृण पर्यन्त जो कुछ दृश्य है वह सब परब्रह्म है-चिद्रूप से अन्य नहीं । उदासीन और मित्र, बाँधव से लेकर सब ब्रह्म है जबतक अज्ञान कलना से जगत् में बुद्धि स्थित है और ब्रह्मभाव नानात्व है तबतक चित्तादि कलना होती है, जब तक देह में अहंभाव है और अनात्मदृश्य में ममत्व है तबतक चित्त आदिक भ्रम होता है और जबतक सन्तजन और सत्‌शास्त्रों से ऊँचे पद को नहीं पाया और मूर्खता क्षीण नहीं हुई तबतक चित्तादिक भ्रम होता है । हे रामजी! जबतक देहाभिमान शिथिलता को नहीं प्राप्त हुआ, संसार की भावना नहीं मिटी और सम्यक्‌ज्ञान करके स्थिति नहीं पाई, जबतक चित्तादिक प्रकट हैं, तबतक अज्ञान से अन्धा है और विषयों की आशा के आवेश से मूर्छित है और मोह मूर्च्छा से नहीं उठा तब तक चित्तादिक कलना होती है । हे रामजी! जबतक आशारूपी विष की गन्ध हृदयरूपी वन में होती है तबतक विचाररूपी चकोर नहीं प्राप्त होता और भोगवासना नहीं मिटती । जब भोगों की आशा मिट जावे और सत्य शीतलता और संतुष्टता में हृदय प्राप्त हो तब चित्तरूपी भ्रम निवृत्त हो जाता है । जब मोह और तृष्णा निवृत्तकरिये और नित्य अभ्यास हो तब चित्त शान्त भूमिका को प्राप्त होता है हे रामजी! जिस पुरुष की स्थिति स्वरूप में हुई है वह आपको देह से देखता है । उस सम्यक्‌दर्शी के चित्त की भूमिका कहते हैं । जब अनन्त

www.tantrik-astrologer.in

चेतनतत्त्व की भावना होती है और दृश्य को त्यागकर आत्मस्वरूप में प्राप्त होता है तब वह पुरुष सब जगत् को अपना अंग ही देखता है अर्थात् सब अपना स्वरूप देखता है । ऐसा जो आत्मरूप देखता है उसको जीवत्वादिक भ्रम कहाँ है? जब अज्ञान भ्रम निवृत्त होता है । तब परम अद्वैत पद उदय होता है । जैसे रात्रि के क्षीण हुए उदय होता है तैसे ही मोह के निवृत्त हुए आत्म तत्त्व का साक्षात्कार होता है और जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब चित्त नष्ट हो जाता है । जैसे सूखा पत्र अग्नि में दग्ध हो जाता है तैसे ही ज्ञानवान् का चित्त नष्ट हो जाता है । हे रामजी! जीवन्मुक्त जो महात्मा पुरुष और परावरदर्शी है और जिसको सर्वत्र ब्रह्म ही दीखता है उसका चित्त सत्यपद को प्राप्त होता है । वह चित्त सत्य कहाता है और उसमें वासना भी दृष्टि नहीं आती । वह चैतन्यमन है और वह चित्त सत्यपद को प्राप्त हुआ है । यह जगत् ज्ञानवान् को लीलामात्र भासता है और वह हृदय से शान्तिरूप और नित्यतृप्त है उसको सर्वदा आत्मज्योति भासती है, विवेक से उसके चित्त से जगत् की सत्ता निवृत्त हो गई है और स्वरूप में उसने स्थिति पाई है सो चित्तसत्ता कहाती है । फिर वह कर्म चेष्टा करता भी दृष्टि आता है और मोह को नहीं प्राप्त होता जैसे भुना बीज नहीं उगता तैसे ही ज्ञानी की चेष्टा जन्म का कारण नहीं और जो अज्ञानी हैं उनकी वासना मोह संयुक्त है । जैसे कच्चा बीज उगता है तैसे ही अज्ञानी वासना से फिर जन्म लेता है और जिस चित्त से आसक्ति निवृत्त हुई है उसकी वासना जन्म का कारण नहीं । वह चित्तसत्ता कहाती है । हे रामजी! जिन पुरुषों ने पाने योग्य पद पाया है और ज्ञानाग्नि से चित्त दग्ध किया है वे फिर जन्म नहीं लेते । जो कुछ जगत् है उनको सब ब्रह्मरूप है जैसे वृक्ष और तरु नाममात्र दो वास्तव में एक ही है, तैसे हि ब्रह्म और जगत् नाम मात्र दोनों हैं, पर वास्तव में एक ही है । जैसे जल में तरंग और बुद्बुदे जलरूप हैं तैसे ही ब्रह्म में जगत् ब्रह्मरूप है । चैतन्य आत्मारूपी मिरच में जगत्ारूपी तीक्ष्णता है । हे रामजी! ऐसे ब्रह्म तुम हो । जो तुम कहो कि मैं चिन् नहीं तो कुछ माना जाता है, क्योंकि जो तुम कहो मैं जड़ हूँ तो तुम आकाशवत् हुए तुम्हारे में कलना का उल्लेख कैसे हो? जो चैतन्य हो तो शोक किसका करते हो जो चिन्मय हो तो निरायास आदि अन्त से रहित हुए । निदान सब तुमही हो अपने स्वरूप को स्मरण करो तब शान्ति पावोगे । जो सब भाव में स्थित हो और सबको उदय करनेवाले शान्तरूप, चैतन्य और ब्रह्मरूप हो । हे रामजी! ऐसी जो चैतन्यरूपी शिला है उसके उदय में वासनारूपी फुरना कहाँ हो? वह तो महाघनरूप है । हे रामजी! जो तुम हो सोई हो, उसमें और तुम्हारे में कुछ भेद नहीं । वही सत् और असत् रूप होकर भासता है, जिसके अन्तर सब पदार्थ हैं और जिसमें नानात्व और `अहं' `त्वं', `अज्ञ' `तज्ञ' की कुछ कलना नहीं । ऐसा जो सत्यरूप चिद्घन आत्मा है उसको नमस्कार है । हे रामजी! तुम्हारी जय हो । तुम आदि और अन्त से रहित विशाल हो और शिला के अन्तर्वत् चिद्घनस्वरूप आकाशवत् निर्मल हो । जैसे समुद्र में तरंग हैं तैसे ही तुम्हारे में जो जगत् है सो लीला मात्र है । तुम अपने घनस्वरूप में स्थित हो ।

इति श्री योगवाशीष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्रामदृढीकरणं नाम द्वितीयस्सर्गः ।।2

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

ब्रह्मैकप्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे निष्पाप, रामजी! जिस चैतन्यरूपी समुद्र में जगत्‌्रूपी तरंग फुरते और लीन हो जाते हैं ऐसे अनन्त आत्मभाव की भावना से मुक्त और भाव अभाव से रहित हो । ऐसा जो चिदात्म तुम्हारा स्वरूप है वही सब जगत्‌्रूप है तब वासनादिक आवरण कहाँ हैं? जीव और वासना सब आत्मा का किञ्चन है दूसरी वस्तु कुछ नहीं तब और कथा और प्रसंग कैसे हो? हे रामजी! महासरल गम्भीर और प्रकाशरूप जो चैतन्य समुद्र है वह तुम्हारा रूप है और रामरूपी एक तरंग फुर आया है सो समुद्र तुम हो ऐसा जो आत्मतत्त्व है वह जगत्‌् रूपी होकर भासता है । जैसे अग्नि से उष्णता, फूल से सुगन्ध, कज्जल से कृष्णता, बरफ से शुक्लता, गुड़ से मधुरता और सूर्य से प्रकाश भिन्न नहीं तैसे ही ब्रह्म से अनुभव भिन्न नहीं-नित्यरूप है । अनुभव से अहं भिन्न नहीं, अहं से जीव भिन्न नहीं, जीव से मन भिन्न नहीं, मन से इन्द्रियाँ भिन्न नहीं, इन्द्रियों से देह भिन्न नहीं और देह से जगत् भिन्न नहीं । इस प्रकार महाचक्र जो प्रवृत्त की नाईं हुआ है सो कुछ हुआ नहीं, न शीघ्र प्रवर्तन है, न चिरकाल का प्रवर्ता है, न कोई न्यून है और न अधिक है, सर्वदा एक अखण्डसत्ता परमात्मतत्त्व है जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसे ही ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है । वही सत्ता वज्रभूत और वही पूर्ण होकर स्थित है, द्वैतकल्पना कुछ नहीं । ऐसे अपने स्वरूप में जो पुरुष स्थित है वह जीवन्मुक्त है । ऐसा जो ज्ञानवान् है वह मन, इन्द्रियों और शरीर की चेष्टा भी करता है पर उसको कर्तव्य का लेप नहीं लगता । हे रामजी! ज्ञानवान् को न कुछ त्यागने योग्य रहता है और न ग्रहण करने योग्य है, वह सब पदार्थों से निर्लेप रहता है जबतक इनको ग्रहण और त्याग की बुद्धि होती है तबतक संसार के सुख दुःख का भागी होता है और इससे हेयोपादेय जिसको अभाव है वह सुख दुःख का भागी नहीं होता । हे रामजी! जो कुछ जगत् है वह एक अद्वैत आत्मतत्त्व है, अन्य कुछ नहीं । जैसे घट मठ की उपाधि से आकाश नाना प्रकार का भासता है और समुद्र तरंग से अनेक रूप भासता है पर नानात्वभाव को नहीं प्राप्त होता तैसे ही आत्मा में नाना प्रकार का जगत् भासता है और नानात्व को नहीं प्राप्त होता । ऐसे स्वरूप को जानकर उसमें स्थित हो, बाहर से अपने वर्णाश्रम का व्यवहार करो पर हृदय से पत्थर की नाईं हर्ष शोक से रहित हो । संवित्तमात्र आत्मा को जो अपना रूप देखता है वही सम्यक्‌्दर्शी है और उसका अज्ञान और मोह नष्ट हो जाता है । जैसे नदी का वेग मूलसहित तट के वृक्ष को काटता है तैसे ही आत्मज्ञान मोह सहित अज्ञान को काटता है । मित्रता, वैर, हर्ष, शोक, राग, द्वेष आदिक जो विकार हैं वे चित्त में रहते हैं सो उसका चित्त नष्ट हो जाता है । हे रामजी! ज्ञानी सोता भी दृष्टि आता है पर कदाचित् नहीं सोता जिसका अनात्मा में अहं भाव निवृत्त हुआ है और जिसकी बुद्धि लेपायमान नहीं होती वह पुरुष इस लोक को मारे तो भी उसने कोई नहीं मारा और न वह बन्धायमान होता है । हे रामजी! जो वस्तु न हो और भासे उसको मायामात्र जानिये, जानने से वह नष्ट हो जावेगी । जैसे तेल बिना दीपक शान्त हो जाता है तैसे ही ज्ञान से वासना क्षय हो जाती है और चित्त अचित्त हो जाता है । जिसको सुख दुःख में ग्रहण त्याग नहीं वह जीवन्मुक्त आत्मस्थित है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकप्रतिपादनन्नाम तृतीयस्सर्गः ||3||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

चित्तभावाभाववर्णन

वशिष्ठजी बोले हे रामजी! मन, बुद्धि, अहंकार और इन्द्रयादिक जो दृश्य हैं वह अचिन्त्य चिन्मात्र है और जीव भी उससे अभिन्नरूप है । जैसे सुवर्ण और भूषण में भेद कुछ नहीं तैसे ही चिन्मात्र और जीवादिक अभिन्न हैं । जबतक चित्त अज्ञान में होता है तबतक जगत् का कारण होता है और जब अज्ञान नष्ट हो जाता है तब चित्तादिक का अभाव हो जाता है अध्यात्मविद्या जो वेदान्तशास्त्र है उसके अभ्यास से अज्ञान नष्ट हो जाता है । जैसे अग्नि के तेज से शीत का अभाव हो जाता है तैसे ही अध्यात्मविद्या के विचार और अभ्यास से अज्ञान नष्ट हो जाता है । जबतक अज्ञान का कारण तृष्णा उपशम को नहीं प्राप्त हुई तबतक अज्ञान है- और जबतृष्णा नष्ट हो तब जानिये कि अज्ञान का अभाव हुआ । हे रामजी! तृष्णारूपी विषूचिका रोग के नाश करने का मन्त्र अध्यात्मशास्त्र ही है, उसके अभ्यास से तृष्णा क्षीण हो जाती है । जैसे शरत्‌्काल में कुहिरा नष्ट हो जाता है, तैसे ही आत्मअभ्यास से चित्त शान्त हो जाता है, और जैसे शरत्‌्काल में मेघ नष्ट होजाता है तैसे ही विचार से मूर्खता नष्ट हो जाती है । जब चित्त अचित्तता को प्राप्त होता है तब वासनाभ्रम क्षीण हो जाता है जैसे तागे से मोती पिरोये होते हैं और तागे के टूटे से मोती भिन्न भिन्न हो जाते हैं तैसे ही अज्ञान के नष्ट हुए मनादिक सब नष्ट हो जाते हैं । जो पुरुष अध्यात्म शास्त्र के अर्थ को नहीं धारण करते और न प्रीति ही करते हैं वे पापी कीटादिक नीच योनि को प्राप्त होंगे । हे कमलनयन! तुम्हारे में जो कुछ मूर्खता और चञ्चलता थी वह नष्ट हो गई है और जैसे पवन के ठहरने से जल अचल होता है तैसे ही तुम स्थिर और भाव अभाव से रहित परम आकाशवत् निर्मल पद को प्राप्त हुए हो । हे रामजी! मैं ऐसे मानता हूँ कि मेरे वचनों से तुम बोधवान् हुए हो और विस्तृत अज्ञानरूपी निद्रा से जागे हो । समान जीव भी हमारी वाणी से जग आते हैं, और तुम तो अति उदार बुद्धि हो तुम्हारे जागने में क्या आश्चर्य है? हे रामजी! जब गुरु भी दृढ़ होता है और शिष्य भी शुद्धपात्र होता है तब गुरु के वचन उसके हृदय में प्रवेश करते हैं सो मैं गुरु भी समर्थ हूँ कि मुझको अपना स्वरूप सदा प्रत्यक्ष है और सत्‌्शास्त्र के अनुसार मैंने वचन कहे हैं और तेरा हृदय भी शुद्ध है उसमें प्रवेश कर गये हैं । जैसे तप्त पृथ्वी के क्षेत्र में जल प्रवेश कर जाता है तैसे ही हृदय में वचनों ने प्रवेश किया है । हे राघव! हम महानुभाव रघुवंश कुल के बड़े गुरु के गुरु हैं ,हमारे वचन तुमको धारने आते हैं । अब खेद से रहित होकर अपने प्रकृत आचार को करो । इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि इस प्रकार जब मुनीश्वर ने कहा तब सूर्य अस्त होने लगा और सब सभासद परस्पर नमस्कार करके अपने अपने स्थानों को गये । रात्रि के व्यतीत हुए सूर्य की किरणों के निकलते ही फिर आ बैठे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तभावाभाववर्णनन्नामचतुर्थस्सर्गः ||4||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

राघवविश्रान्तिवर्णन

रामजी बोले, हे मुनीश्वर! मैं परम स्वस्थता को प्राप्त होकर अपने आप में स्थित हूँ और आपके वचनों की भावना से जगज्जाल के स्थित हुए भी मुझको शान्ति हो गई है । आत्मानन्द से मैं तृप्त हुआ हूँ-जैसे बड़ी वर्षा से पृथ्वी तृप्त होती है-और प्रसन्नता को पाकर स्थित हूँ । सब ओर से केवल आत्मारूप मुझको भासता है और नानात्व का अभाव हुआ है । जैसे कुहिरे से रहित दिशा और आकाश निर्मल भासता है तैसे ही सम्यक्ज्ञान से मुझको शुद्ध आत्मा भासता है और मोह निवृत्त हो गया है । मोहरूपी जंगल में जो तृष्णारूपी मृग और रागद्वेष आदिक धूलि और कुहिरा था सो सब निवृत्त हो गया है और ज्ञानरूपी वर्षा से सब शान्त हो गये है । अब मैं आत्मानन्द को प्राप्त हुआ हूँ, जो आदि अन्त से रहित और अमृत है बल्कि अमृत का स्वाद भी उसके आगे तुच्छ भासता है । ऐसे आनन्द से मैं अपने स्वभाव में प्राप्त हुआ हूँ मैं राम हूँ अर्थात् सबमें रमने वाला हूँ, मेरा मुझको नमस्कार है । अब में सब सन्देह से रहित हूँ और सब संशय और विकार मेरे नष्ट हुए हैं । जैसे प्रातःकाल होने से निशाचर और वैताल आदिक निवृत्त हो जाते हैं तैसे ही राग द्वेषादिक विकारोंका अभाव हुआ और निर्मल हृदय कमल में मैं स्थित हूँ । जैसे भँवरा फिरता फिरता कमल में आ स्थित होता है तैसे ही मैं आत्मरूपी सार में स्थित हूँ । अविद्यारूपी कलंक आत्मा को कहाँ था मैं तो निश्चय से निर्मलता को प्राप्त हुआ हूँ ।जैसे सूर्य के उदय हुए तम का अभाव हो जाता है तैसे ही मेरी संशय और अविद्या नाश हुई है । अब मुझे सर्व आत्मा भासता है और कलना कोई नहीं । भावित आकार अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ । मैं पूर्व प्रकृति को देखके हँसता हूँ कि क्या जानता था और क्या करता था । मैं तो नित्य शुद्ध ज्यों का त्यों आदि अन्त से रहित हूँ । हे मुनीश्वर! तेरे वचनरूपी अमृत के समुद्र में मैंने स्नान किया है और उससे अजर-अमर आनन्दपद को पाकर सूर्य से भी ऊँचे पद को प्राप्त हुआ हूँ और वीतशोक होकर परम शुद्धता, समता, शीतलता और अद्वैत अनुभव को प्राप्त हूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राघवविश्रान्तिवर्णनन्नाम पञ्चमस्सर्गः ।।5।।

www.tantrik-astrologer.in

अज्ञानमाहात्म्यवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो! फिर भी मेरे परम वचन सुनो; तुम्हारे हित की कामना से मैं कहता हूँ । अब तुम आत्मपद को प्राप्त हुए हो परन्तु बोध की वृद्धि के निमित्त फिर सुनो, जिसके सुनने से अल्पबुद्धि भी आनन्दपद को प्राप्त हो । हे रामजी! जिसको अनात्म में आत्माभिमान है और आत्मज्ञान नहीं हुआ उसको इन्द्रियरूपी शत्रु दुःख देते हैं जैसे निर्बल पुरुषको चोर दुःख देते हैं और जिसकी आत्मपद में स्थिति हुई है उसको इन्द्रियाँ दुःख नहीं देतीं-जैसे दृढ़ राजा के शत्रु भी मित्र हो जाते हैं तैसे ही ज्ञानवान् के इन्द्रियगण मित्र होते हैं । जिन पुरुषों की देह में स्थित बुद्धि है और इन्द्रियों के विषय की सेवना करते हैं उनको बड़े दुःख प्राप्त होते हैं । हे राम जी! आत्मा और शरीर का सम्बन्ध कुछ नहीं है । जैसे तम और प्रकाश विलक्षण स्वभाव हैं तैसे ही आत्मा और देह का परस्पर विलक्षण स्वभाव है । आत्मा सर्वविकारों से रहित, नित्यमुक्त, उदय अस्त से रहित और सबसे निर्लेप है और सदा ज्यों का त्यों प्रकाशरूप भगवान् आत्मा सतरूप है उसका सम्बन्ध किससे हो? देह जड़ और असत्य, अज्ञानरूप, तुच्छ, विनाशी और अकृतज्ञ है उसका संयोग किस भाँति हो? आत्मा चैतन्य, ज्ञान, सत् और प्रकाशरूप है उसका देह के साथ कैसे संयोग हो? अज्ञान से देह और आत्मा का संयोग भासता है, सम्यक्ज्ञान से संयोग का अभाव भासता है । हे रामजी! ये मैंनें निपुण वचन कहे हैं, इनका बारम्बार अभ्यास करने से संसार मोह का अभाव हो जावेगा । जब संसार का कारण मोह निवृत्त हुआ तब फिर उसका सद्भाव न होगा जबतक अज्ञानरूपी निद्रासे दृढ़ होकर नहीं जागता तबतक आवरण रहता है । जैसे निद्रा के जागे से फिर निद्रा घेर लेती है पर जब दृढ़ होके जागे तब फिर नहीं घेरती, तैसे ही दृढ़ अभ्यास से अज्ञान निवृत्त हुआ फिर आवरण न करेगा । इससे मोह और दुःख निवृत्ति के अर्थ दृढ़ अभ्यास करो। हे रामजी! आत्मा देह के गुण को अंगीकार नहीं करता, यदि देह के गुण अंगीकार करे तो आत्मा भी जड़ हो जावे पर वह तो सदा ज्ञानरूप है, और जो देह आत्मा का गुण परमार्थ से अंगीकार करे तो देह भी चेतन हो जावे पर वह तो जड़रूप है । उसको अपना ज्ञान कुछ नहीं । ज्यों का त्यों ज्ञान हो तब शरीर तुच्छ और जड़ भासे । हे रामजी! देह और आत्मा का कुछ सम्बन्ध नहीं और समवाय सम्बन्ध भी नहीं फिर इससे मिलकर वृथा दुःख को ग्रहण करना इससे बढ़के और मूर्खता क्या है? जब कुछ भी इसका समान लक्षण न हो उसका सम्बन्ध कैसे हो? आत्मा चैतन्य है, देह जड़ है, आत्मा सत्रूप है, देह असत्रूप है, आत्मा प्रकाशरूप है, देह तमरूप है, आत्मा निराकार है, देह साकार है, आत्मा सूक्ष्म है और देह स्थूल है तो फिर आत्मा और देह का सम्बन्ध कैसे हो? और जब इनका संयोग ही नहीं तब दुःख किसका हो? जैसे सूक्ष्म और स्थूल दिन और रात्रि, ज्ञान और अज्ञान, धूप और छाया, सत् और असत् का सम्बन्ध नहीं होता तैसे ही आत्मा और देह का संयोग नहीं होता और देह के सुख दुःख से आत्मा को सुखी दुःखी जानना मिथ्याभ्रम है । जरा-मरण, सुख-दुःख, भाव-अभाव आत्मा में रञ्चकमात्रभी नहीं, यदि देह में अभिमान होता है तो ऊँच नीच जन्म पाता है, वास्तव में कुछ नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उसमें विकार कोई नहीं । जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में होता है और जल के हिलने से प्रतिबिम्ब भी चलता है तैसे ही देह के सुख दुःख से आत्मा में सुख दुःख विकार मूर्ख देखते हैं-आत्मा सदा निर्लेप है और जब यथाभूत सम्यक् आत्मज्ञान हो तब देह में स्थित भी भ्रम को न प्राप्त हो । हे रामजी! जब यथाभूत ज्ञान होता है तब सत् को सत् जानता है और असत् को असत् जानता है । जैसे दीपक हाथ में होता है तब सत्-असत् पदार्थ भासते हैं तैसे ही ज्ञान से सत्-असत् यथार्थ जानता

www.tantrikastrologer.in

है और अज्ञान से मोह में भ्रमता है। जैसे वायु से पत्र भ्रमता है तैसे ही मोहरूपी वायु से अज्ञानी जीव भ्रमता है और कदाचित् स्वस्थ नहीं होता। जैसे यन्त्र की पुतली तागे से चेष्टा करती है तैसे ही अज्ञानी जीव प्राणरूपी तागे से चेष्टा करते हैं और जैसे नटुआ अनेक स्वाँग धारता है तैसे ही कर्म से जीव अनेक शरीर धारता है। जैसे काठकी पुतली तृण, काष्ठ, फूलादिक को लेती त्यागती और नृत्य करती है- तैसे ही ये प्राणी भी चेष्टा करते हैं और शब्द, स्पर्श, रूप,रस, गन्ध का ग्रहण करते हैं। जैसे वह पुतलियाँ जड़ हैं तैसे ही ये भी जड़ हैं। यदि कहिये कि इनमें तो प्राण है तो जैसे लुहार की धौकनी श्वास को लेती और त्यागती है तैसे ही ये जीव भी चेष्टा करते हैं। हे रामजी! अपना वास्तव स्वरूप है सो ब्रह्म है, उसके प्रमाद से जीव मोह और कृपणता को प्राप्त होते हैं। जैसे लुहार की खाल वृथा श्वास लेती है तैसे ही इनकी चेष्टा व्यर्थ है इनकी चेष्टा और बोलना अनर्थ के निमित्त है-जैसे धनुष से जो बाण निकलता है सो हिंसा के निमित्त है, उससे और कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता तैसे ही अज्ञानी की चेष्टा और बोलना अनर्थ और दुःख के निमित्त है, सुख के निमित्त नहीं और उसकी संगति भी कल्याण के निमित्त नहीं-जैसे जंगल के ठूँठ वृक्ष से छाया और फल की इच्छा करनी व्यर्थ है, तैसे ही अज्ञानी जीव की संगति से सुख नहीं होता। उनको दान देना व्यर्थ है-जैसे कीचड़ में घृत डालना व्यर्थ होता है तैसे ही मूर्खों को दान दिया व्यर्थ होता है और उनके साथ बोलना भी व्यर्थ है। जैसे यज्ञ में श्वान को बुलाना निष्फल है तैसे ही उनके साथ बोलना निष्फल है। हे रामजी! जो अज्ञानी जीव हैं वे संसार में आते, जाते और जन्मते, मरते हैं और शरीर में आस्था करते हैं, एवम् पुत्र, दारा, बान्धव, धनादिक से ममत्व बुद्धि करते हैं पर इस मिथ्यादृष्टि से वे दुःख पाते हैं और मुक्ति कदाचित नहीं होती, क्योंकि अनात्म में आत्मबुद्धि को त्याग नहीं करते और ममता बुद्धि में दृढ़ रहते हैं। हेरामजी! जो अज्ञानी हैं वे असत् पदार्थ को देखते हैं और वस्तुरूप की ओर से अन्धे हैं इससे वे परमार्थ धन से विमुख रहते हैं। नरक का सार जो स्त्री आदिक हैं उनमें वे प्रीति करते हैं और उनको देखकर प्रसन्न होते हैं। जैसे मेघ को देखकर मोर प्रसन्न होता है तैसे ही स्त्री आदिकों को देखकर मूर्ख प्रसन्न होते हैं। हे रामजी! मूर्ख के मारने के निमित्त स्त्री रूपी विष की बेलि हैं, नेत्ररूपी उसके फूल हैं, ओष्ठरूपी पत्र हैं, स्तनरूपी गुच्छे हैं और अज्ञानरूपी भँवरे वहाँ विराजमान होते हैं-और नाश करते हैं। मतिरूपी तालाब में हर्षरूपी कमल और चित्तरूपी भँवरे सदा रहते हैं और अज्ञानरूपी नदी में दुःखरूपी लहरें और तृष्णारूपी बुद्बुदे हैं, ऐसी नदी मरणरूपी बड़वाग्नि में जा पड़ेगी। हे रामजी! जब जन्म होता है तब जीव महागर्भ अग्नि से जलता हुआ निकलता है और महामूर्ख अवस्था में निकलकर दुःखी होता है, जब यौवन अवस्था को प्राप्त होता है तब विषयों को सेवता है-वे भी दुःख के कारण होते हैं और फिर वृद्वा वस्था को प्राप्त होता है तब शरीर अशक्त होता है और हृदय को तृष्णा जलाती है। इस प्रकार जन्म-मरण अवस्था में जीव भटकते हैं। हे रामजी! संसाररूपी कूप में मोहरूपी घटों की माला है और तृष्णा और वासनारूपी रस्सी से बाँधे हुए जीव भ्रमते हैं।ज्ञान वान् को संसार कोई दुःख नहीं देता,गोपद की नाईं तुच्छ हो जाता है और अज्ञानी को समुद्रवत् तरना कठिन होता है। वह अपने भीतर ही भ्रम देखता है और निकल नहीं सकता थोड़ा भी उसको बहुत हो जाता है। जैसे पक्षी को पिंजरे में और कोल्हू के बैल को घर ही में बड़ा मार्ग हो जाता है तैसे ही अज्ञानी को तुच्छ संसार बड़ा हो भासता है। हे रामजी! जिस जगत् को रमणीय जानकर जीव उसके पदार्थों की इच्छा करता है वे सब पाञ्चभौतिक पदार्थ हैं पर मोह से उनको सुन्दर जानता है उनमें प्रीति करता है और स्थिर जानता है और वह सब अनर्थ के निमित्त होते हैं। हे रामजी! अज्ञानरूपी चन्द्रमा के उदय से भोगरूपी वृक्ष पुष्ट होते हैं और जन्मों की परंपरा रस को पाते हैं कर्मरूपी जल से

www.tantrik-astrologer.in

सिंचते है और पुण्य और पापरूपी मञ्जरी उनमें होती है । अज्ञान रूपी चन्द्रमा का वासनारूपी अमृत है और आशारूपी चकोर उसको प्रसन्न होता है । आशा रूपी कमलिनी पर अज्ञानरूपी भँवरा बैठकर प्रसन्न होता है इससे सब जगत् अज्ञान से रमणीय भासता है । हे रामजी! जिस अज्ञान से यह जगत् स्थित है उसका प्रवाह सुनो । जब अज्ञानरूपी चन्द्रमा पूर्ण होकर स्थित होता है तब कामनारूपी क्षीरसमुद्र उछलता है और अनेक तरंग फैलाता है । उसके रस से तृष्णारूपी मञ्जरी पुष्ट होती है और काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी चकोर उसको देखकर प्रसन्न होते हैं । देह अभिमानरूपी रात्रि के निवृत्त हुए और विवेकरूपी सूर्य के उदय हुए अज्ञानरूपी चन्द्रमा का प्रकाश निवृत्त हो जाता है । हे रामजी! अज्ञान से जीव भ्रमते हैं और उनकी चेष्टा विपर्यय हो गई है, जो तुच्छ और नीच दुःखरूप पदार्थ हैं उनको देखकर सुखदायक और रमणीय जानते हैं और स्त्री को देख प्रसन्न होते हैं । कवीश्वर कहते हैं कि इसके कपोल कमलवत्, नेत्र भँवरेवत्, होठ हँसनेवाले और भुजा बेलि की नाईं हैं, कञ्चन के कलशवत् स्तन हैं, उदर और वक्षस्थल बहुत सुन्दर हैं और जंघस्थल केले के स्तम्भवत् हैं ।जिस स्त्री की कवि स्तुति करते हैं वह स्त्री रक्तमांस की पुतली है कपोल भी रक्तमांस हैं, होठ भी रक्तमाँस हैं, भुजा विष के वृक्ष के टासवत् हैं, स्तन भी रक्तमाँस हैं और संपूर्ण शरीर भी रक्तमाँस अस्थि से पूर्ण एक मूर्ति बनी है उसको जो रमणीय जानते हैं वे मूर्ख मोह से मोहित हुए हैं और अपने नाश के निमित्त इच्छा करते हैं । जैसे सर्पिणी से जो कोई हित करेगा वह नष्ट होगा तैसे ही इससे हित किये से नाश होगा और जैसे कदलीवन का महाबली हाथी काम से नीच गति पाता है और संकट में पड़ता है और अंकुश सहकर जो अपमान को प्राप्त होता है, सो एक के हित से ही ऐसी गति को प्राप्त होता है, तैसे ही यह जीव स्त्री की इच्छा करके अनेक दुःख पाता है । जैसे दीपक को रमणीय जानकर पतंग उसमें प्रवेश करता है और नष्ट होता है तैसे ही यह जीव स्त्री की इच्छा करता है और उसके संग से नाश को प्राप्त होता है । लक्ष्मी का आश्रय करके जो सुख की इच्छा करता है वह भी सुखी न होगा । जैसे पहाड़ दूर से देखतेमात्र सुन्दर भासता है तैसे ही यह भी देखने में सुन्दर लगती है पर लक्ष्मी का आश्रय करके जो सुख की इच्छा करे सो सुख न मिलेगा, अन्त में दुःख को ही प्राप्त होगा जब लक्ष्मी प्राप्त होती है तब अनर्थ और पाप करने लगता है और दुःख का पात्र होता है, और जब जाती है तब दुःख दे जाती है और उससे जलता रहता है । हे रामजी! जगत् में सुख की इच्छा करना व्यर्थ है, प्रथम जन्म लेता है तब भी दुःख से जन्म लेता है, फिर जन्म कर मूर्ख और नीच बालक अवस्था को प्राप्त होता है तब कुछ विचार नहीं होता है उसमें दुःख पाता है और कुछ शक्ति नहीं होती उससे दुःख पाता है, जब यौवन अवस्था रूपी रात्रि आती है तब उसमें काम, क्रोध,लोभ और मोहरूपी निशाचर विचरते हैं और तृष्णारूपी पिशाचिनी बिचरती है, क्योंकि उस अवस्था में विवेकरूपी चन्द्रमा नहीं उदय होता उससे अन्धकार में वे सब क्रीड़ा करते हैं । हे रामजी! यौवन अवस्थारूपी वर्षा काल में बुद्धि आदिक नदियाँ मलिनभाव को प्राप्त होती हैं, कामरूपी मेघ गर्जता है और तृष्णारूपी मोरनी उसको देख प्रसन्न होकर नृत्य करती है । फिर यौवन अवस्थारूपी चूहे को जरारूपी बिल्ली भोजन कर लेती है और शरीर महाजर्जरीभूत हो निर्बल हो जाता है, तृष्णा बढ़ती जाती है और हृदय से जलता है, निदान फिर मृत्युरूपी सिंह जरारूपी हरिण को भोजन कर लेता है । इस प्रकार मनुष्य उपजता और मरता है और आशारूपी रस्सी से बँधा हुआ घटीयन्त्र की नाईं भटकता है– शान्ति कदाचित् नहीं पाता । हे रामजी! ब्रह्माण्डरूपी एक वृक्ष है और उसमें जीवरूपी पत्र लगे हैं सो कर्मरूपी वायु से हिलते हैं और अज्ञानरूपी जड़ता है ।चित्तरूपी ऊँचा वृक्ष है उस पर लोभादिक उलूक बैठते हैं । जगत्रूपी ताल में शरीररूपी कमल हैं उन पर जीवरूपी भँवरे आ बैठते हैं और कालरूपी हाथी आकर उनको भोजन कर जाता

www.tantrik-astrologer.in

है । हे रामजी! जनतारूपी जीर्ण पक्षी आशारूपी फाँसी से बँधे हुए वासनारूपी पिंजड़े में पड़े हैं और रागद्वेषरूपी अग्नि में पड़े हुए कालरूपी पुरुष के मुख में प्रवेश करते हैं। जनरूपी पक्षी उड़ते फिरते हैं सो कोई दिन उनको जब कालरूपी व्याध जाल फैलावेगा तब फँसा लेगा । हे रामजी! संसाररूपी ताल में जीवरूपी मछलियाँ है और कालरूपी बगला उनको भोजन करता है । कालरूपी कुम्हार जनरूपी मृत्तिका के बासन बनाता है और वे शीघ्र ही फूट जाते हैं । जीवरूपी नदी कर्मरूपी तरंगों को फैलाती है और कालरूपी बड़वाग्नि में जा पड़ती है । जगत्‌रूपी हाथी के मस्तक में जीवरूपी मोती हैं, उस हाथी को कालरूपी सिंह भोजन कर जाता है । वह कालरूपी भक्षक ऐसा है कि जिसने ब्रह्मा को भी भोजन किया है और करता है पर तृप्त नहीं होता । जैसे घृत की आहुति से अग्नि तृप्त नहीं होती तैसे ही काल जीवों के भोजन से तृप्त नहीं होता है । हे रामजी! एक निमेष में अनेक जगत् उपजते हैं और निमेष में लीन हो जाते हैं । सबके अभाव हुए जो शेष रहता है वह रुद्र है, फिर वह भी निवृत्त होता है और सबके पीछे एक परमतत्त्व ब्रह्मसत्ता रहती है । हे रामजी! जो कुछ जगत् है वह अज्ञान से भासता है । जन्म, मरण, बालअवस्था, यौवन और वृद्धादिक विकार अज्ञान से भासते हैं और अज्ञान के नष्ट हुए सब नष्ट हो जाते हैं । जबतक आत्म विचार नहीं उपजता तबतक अज्ञान रहता है और जब आत्मविचार उपजता है तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त हो जाती है केवल ब्रह्मपद भासता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अज्ञानमाहात्म्यवर्णनन्नामषष्ठस्सर्गः ||6||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

अविद्यालतावर्णन

अविद्यालतावर्णन वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसाररूपी यौवन चेतनरूपी पर्वत के श्रृंग पर स्थित है और अविद्यारूपी बेलि उसमें बढ़कर विकास को प्राप्त हुई और सुख, दुःख, भाव, अभाव, अज्ञानपत्र, फूल और फल हैं । जहाँ अविद्या सुखरूप होकर स्थित होती है वहाँ ऊँचे सुख को भुगाती है और सत्य की नाईं होती है और जहाँ दुःखरूप होकर स्थित होती है वहाँ दुःखरूप भासती है । वही सुख दुःख इसके फल हैं । दिनरूपी फूल हैं और रात्रिरूपी भँवरे हैं, जन्मरूपी अंकुर हैं और भोगरूपी रस से पूर्ण है जब विचार रूपी घुन अबिद्यारूपी वृक्ष को खाने लगता है तब वह नष्ट हो जाती है । जबतक विचाररूपी घुन नहीं लगा तबतक वह दिन-दिन बढ़ती जाती है और दृढ़ होती जाती है । हे रामजी! अविद्या रूपी बलि का मूल संवित फुरना है उससे फैली है, तारागण उसके फूल हैं, चन्द्रमा और सूर्यउसका प्रकाश है और दुष्कृत कर्मरूपी नरकस्थान कण्टक हैं, शुभ कर्मरूपी स्वर्ग उसके फूल हैं और सुख दुःखरूपी फल लगते हैं, जीवरूपी उसके पत्र हैं जो कालरूपी वायु से हिलते हैं और जीर्ण होकर गिर पड़ते हैं, पृथ्वीरूपी उसकी त्वचा है, पर्वतरूपी पीड़ है, मरणरूपी उसमें छिद्र हैं, जन्मरूपी अंकुर हैं और मोहरूपी कलियाँ हैं जिनके महासुन्दर और अंग हैं उनसे जीव मोहित होते हैं- जैसे स्त्री को देखकर पुरुष मोहित होते हैं-और सात समुद्र के जल से सींची जाती है जिससे पुष्ट होती है । उस बेलि में एक विष की भरी सर्पिणी रहती है जो कोई उसके निकट जाता है उसको काटती है और वह मूर्च्छा से गिर पड़ता है । संसाररूपी मूर्छा की देने वाली तृष्णारूपी सर्पिणी है । वह बेलि अन्यथा नष्ट नहीं होती, जब विचाररूपी घुन इसको लगे तो नष्ट हो जाती है । हे रामजी! जो कुछ प्रपञ्च तुमको भासता है सो सब अविद्यारूप है, कहीं अविद्या जलरूप हुई है कहीं पहाड़, कहीं नाग, कहीं देवता, कहीं दैत्य, कहीं पृथ्वी, कहीं चन्द्रमा, कहीं सूर्य, कहीं तारे, कहीं तम, कहीं प्रकाश, कहीं तेज, कहीं पाप, कहीं पुण्य, कहीं स्थावर ,कहीं मूढ़रूप, कहीं अज्ञान से दीन और कहीं ज्ञान से आपही क्षीण हो जाती है । कहीं तप दान आदिक से क्षीण होती है, कहीं पापादिक से वृद्ध होती है, कहीं सूर्यरूप होकर प्रकाशती है, कहीं स्थानरूप होती है, कहीं नरक में लीन हैं, कहीं स्वर्गवासी है, कहीं देवता होती है, कहीं कृमि होती है कहीं विष्णुरूप होकर स्थित हुई है, कहीं ब्रह्मा होकर स्थित है, कहीं रुद्र है, कहीं अग्निरूप है, कहीं पृथ्वीरूप हुई है और कहीं आकाश व कहीं भूत भविष्यत् और वर्तमान हुई है । हे रामजी! जो कुछ देखने में आता है वह सब महिमा इसी की है । ईश्वर से आदि तृणपर्यन्त सब अविद्यारूप है जो इस दृश्यजाल से अतीत है उसको आत्मलाभ जानो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यालतावर्णनन्नाम सप्तमस्सर्ग ।।7।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

अविद्या निराकरण

रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मन्! विष्णु और हर आदिक तो शुद्ध आकार आकाश जाति हैं इनको अविद्या तुम कैसे कहते हो? यह सुनकर मुझको संशय उत्पन्न हुआ है । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम अविद्या और तत्त्व सुनो कि किसको कहते हैं । जो अविद्यमान हो और विद्यमान भासे वह अविद्या है और जो सदा विद्यमान है उसको तत्त्व कहते हैं । हे राम जी! शुद्ध संवित् और कलना से रहित जो चिन्मात्र आत्मसत्ता है सो ही तत्त्व है, उसमें जो अहं उल्लेख से संवेदनकलना पूर्णरूप से फुरी है सो ही चिन्मात्र संवित् का आभास है । वही संवेदन फुरकर स्थानभेद से सूक्ष्म, स्थूल और मध्यमभाव को प्राप्त हुई है और वही दृढ़ स्पन्द से मनन-भाव को प्राप्त हुई है । सात्त्विक, राजस और तामस तीनों उसी के आकार हुआ हैं । वह अविद्या त्रिगुण प्राकृत धर्मिणी हुई है और तीन गुण जो तुझसे कहे हैं वे भी एक गुण तीन प्रकार के हुए हैं जिससे अविद्या के गुण नव प्रकार के भेद को प्राप्त हुए हैं जो कुछ तुमको दृश्य भासता है वह अविद्या के नव गुणों में है । ऋषीश्वर, मुनीश्वर,सिद्ध,नाग, विद्याधर और देवता अविद्या के सात्त्विक भाग हैं और उस सात्त्विक के विभाग में नाग सात्त्विक -तामस हैं, विद्याधर, सिद्ध, देवता और मुनीश्वर, अविद्या के सात्त्विक भाग में सात्त्विक-राजस हैं और हरिहरादिक केवल सात्त्विक हैं । हे रामजी! सात्त्विक जो प्रकृतभाग है उसमें जो तत्त्वज्ञ हुए हैं वे मोह को नहीं प्राप्त होते, क्योंकि वे मुक्तिरूप होते हैं । हरिहरादिक शुद्ध सात्त्विक हैं और सदा मुक्तिरूप होकर जगत् में स्थित हैं । वे जबतक जगत् में हैं तबतक जीवन्मुक्त हैं और जब विदेह-मुक्त हुए तब परमेश्वर को प्राप्त होते हैं । हे रामजी! एक अविद्या के दो रूप हैं । एक अविद्या विद्यारूप होती है-जैसे बीज फल को प्राप्त होता है और फल बीजभाव को प्राप्त होता है जैसे जल से बुद्बुदा उठता है तैसे ही अविद्या से विद्या उपजती है और विद्या से अविद्या लीन होती है । जैसे काष्ठ से अग्नि उपजकर काष्ठ को दग्ध करती है तैसे ही विद्या अविद्या से उपजकर अविद्या को नाश करती है । वास्तव में सब चिदाकाश है जैसे जल में तरंग कलनामात्र है तैसे ही विद्या अविद्या भावनामात्र है इसको त्यागकर शेष आत्मसत्ता ही रहती है । अविद्या और विद्या आपस में प्रतियोगी हैं जैसे तम और प्रकाश, इससे इन दोनों को त्यागकर आत्मसत्ता में स्थित हो । विद्या और अविद्या कल्पनामात्र हैं । विद्या के अभाव का नाम अविद्या है और अविद्या के अभाव का नाम विद्या है ।यह प्रतियोगी कल्पना मिथ्या उठी है । जब विद्या उपजती है तब अविद्या को नष्ट करती है और फिर आप ही लीन हो जाती है-जैसे काष्ठ से उपजी अग्नि काष्ठ को जलाकर आप भी शान्त हो जाती है-उससे जो शेष रहता है वह अशब्द पद सर्वव्यापी है । जैसे बटबीज में पत्र, टास, फूल, फल और पत्ते होते हैं तैसे ही सबमें एक अनुस्यूत सत्ता व्यापी है सो ही ब्रह्मतत्त्व सर्वशक्ति है, उसी से सर्वशक्ति का स्पंद है और आकाश से भी शून्य है । जैसे सूर्यकान्त में अग्नि होती और दूध में घृत है तैसे ही सब जगत् में ब्रह्म व्याप रहा है । जैसे दधि के मथे बिना घृत नहीं निकलता तैसे ही विचार बिना आत्मा नहीं भासता और जैसे अग्नि से चिनगारे और सूर्य से किरणें निकलती है तैसे ही यह जगत् आत्मा का किंचनरूप है । जैसे घट के नाश हुए घटाकाश अविनाशी है तैसे ही जगत् के अभाव से भी आत्मा अविनाशी है । हे रामजी! जैसे चुम्बक पत्थर की सत्ता से जड़ लोह चेष्टा करता है परन्तु चुम्बक सदा अकर्ता ही है तैसे ही आत्मा की सत्ता से जगत् देहादिक चेष्टा करते हैं और चेतन होते हैं परन्तु आत्मा सदा अकर्त्ता है । इस जगत् का बीज चैतन्य आत्मसत्ता है और उसमें संवित् संवेदन आदिक शब्द भी कल्पनामात्र है । जैसे जल को कहिये कि बहुत

www.tantrikastrologer.in

सुन्दर और चञ्चल है सो जल ही है तैसे ही संवेदन आदिक सब चैतन्य रूप हैं । जहाँ न किञ्चन है, न अकिञ्चन है सो तुम्हारा स्वरूप है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्या निराकरणन्नामाष्टकस्सर्गः ।।8।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

अविद्याचिकित्सावर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्थावर-जंगम जो कुछ जगत तुमको भासता है वह आधिभौतिकथा को नहीं प्राप्त हुआ । वह सब चिदाकाशरूप है और उसमें कुछ भाव अभाव की कल्पना नहीं और जीवादिक भेद भी नहीं । हमको तो भेदकल्पना कुछ नहीं भासती । जैसे रस्सी में सर्प का अभाव है तैसे ही ब्रह्म में भेदकल्पना का अभाव है । हे रामजी! आत्मा के अज्ञान से भेदकल्पना भासती है और आत्मा के जाने से भेदकल्पना मिट जाती है वही सर्वसंपदा का अन्त है । शुद्ध चैतन्य में चित्त का सम्बन्ध होने का नाम अविद्या है । जो पुरुष चित्त की उपाधि से रहित चिन्मात्र है वह शरीर के नाश हुए नाश नहीं होता और शरीर के उपजे से नहीं उपजता । शरीर के उपजने और विनशने में वह सदा एकरस ज्यों का त्यों स्थित है । जैसे घट के उपजने और विनशने में घटाकाश ज्यों का त्यों रहता है तैसे ही शरीर के भाव अभाव में आत्मा ज्यों का त्यों है जैसे बालक दौड़ता है तो उसको सूर्य भी दौड़ता भासता है और स्थित होने में स्थित भासता है- परन्तु सूर्य ज्यों का त्यों है, तैसे ही चित्त की चञ्चलता से मूर्ख जन आत्मा को व्याकुल देखते हैं, चित्त की अचलता में अचल देखते है और चित्त के उपजने में उपजता देखते हैं परन्तु आत्मा सदा ज्यों का त्यों है । जैसे मकड़ी अपने जाले से आप ही वेष्टित होती है और निकल नहीं सकती तैसे ही जीव अपनी वासना से आप ही बन्धायमान होते हैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन् अत्यन्त मूर्खता को प्राप्त होकर जो स्थावर आदिक स्थित हुए हैं उनकी वासना कैसी होती है सो कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो स्थावर जीव हैं वे अमनसत्ता को नहीं प्राप्त हुए । वे केवल मन अवस्था में भी प्रतिष्ठित नहीं पर मध्य अवस्था में हैं । उनकी पुर्यष्टका सुषुप्तिरूप है सो केवल दुःख का कारण है । उनका मन नष्ट नहीं हुआ वे सुषुप्ति अवस्था में जड़रूप स्थित हैं सो काल पाकर जागेंगे अब उनकी सत्ता मूकजड़ होकर स्थित है । रामजी ने पूछा, हे देवताओं में श्रेष्ठ! यदि उनकी सत्ता अद्वैतरूप होकर स्थावर शरीर में स्थित है तो मुक्ति अवस्था उनके निकट है यह सिद्ध हुआ । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मुक्ति कैसे निकट होती है? मुक्ति तब होती है जब बुद्धिपूर्वक वस्तु को विचारे और यथाभूत अर्थदृष्टि आवे । जब सत्ता समान का बोध हो तब केवल आत्मपद को प्राप्त हो । हे रामजी! जब ज्यों का त्यों पदार्थ जानकर वासना को त्याग करे तब सत्तासमान पद प्राप्त अध्यात्म शास्त्र को विचारे और उसमें जो सार है उसकी बारम्बार भावना करे तब उससे जो प्राप्त हो सो सत्तासमान परब्रह्म कहाता है । स्थावर के भीतर वासना है परन्तु बाहर दृष्टि नहीं आती, क्योंकि उनकी सुषुप्ति वासना है । जैसे बीज में अंकुर होता है और फिर उगता है, तैसे ही उनके जन्म होवेंगे और वासना जागेगी । उनके भीतर जगत् की सत्यता है पर बाहर दृष्टि नहीं आती है । वे सुषुप्तिवत् जड़धर्मा हैं वे अनन्त जन्मों में दुःख पावेंगे । हे रामजी! स्थावर जो अब जड़ धर्मी सुषुप्तिपद में स्थित हैं सो बारम्बार जन्म को पावेंगे-जैसे बीज में पत्र, टास, फूल और फल स्थित होते हैं और मृत्तिका में घटशक्ति है तैसे ही स्थावर में वासना स्थित है । जिसमें वासनारूपी बीज है वह सुषुप्तिरूप कहाता है और वह सिद्धता जो मुक्ति है नहीं प्राप्त होती ।जहाँ निर्बीज वासना है सो तुरीय पद है और वह सिद्धता को प्राप्त करती है । हे रामजी! जब चित्तशक्ति दृढ़ वासना से मिली होती है तब स्थावर होती है और वह फिर जागती है । जैसे कोई कर्म करता हुआ सो जाता है तो सुषुप्ति से उठकर फिर वही कर्म करने लगता है, क्योंकि कर्मरूपी वासना उसके भीतर रहती है, तैसे ही स्थावर वासना से फिर जन्म पावेंगे । जब वह वासना हृदय से दग्ध हो तब जन्म का कारण नहीं होती । आत्मसत्ता समानभाव से घट पट आदिक सब पदार्थों में स्थित है । जैसे वर्षाकाल का एक ही

www.tantrikastrologer.in

मेघ नानारूप होकर स्थित होता है तैसे ही एक ही आत्मसत्ता सर्व पदार्थों में स्थित होती है । इससे सबमें आत्मा ही व्याप रहा है । ऐसी दृष्टि से जो रहित है उसको विपर्यय दृष्टि भ्रमदायक होती है और जब आत्मदृष्टि प्राप्त होती है तब सब दुःख नाश हो जाते हैं । हे रामजी! असम्यक्‌्दृष्टि को ही बुद्धीश्वर अविद्या कहते हैं । वह अविद्या जगत् का कारण है और उससे सब पसारा होता है । जब उससे रहित अपना स्वरूप भासे तब अविद्या नष्ट होती है । जैसे बरफ की कणिका धूप से नष्ट हो जाती है तैसे ही शुद्धस्वरूप के अभ्यास से अविद्या नष्ट हो जाती है । जैसे स्वप्न से रहित जब अपना स्वरूप देखता है तब फिर स्वप्न की ओर नहीं जाता, तैसे ही शुद्धस्वरूप के अभ्यास से सम्पूर्ण भ्रम निवृत्त हो जाते हैं । हे रामजी! जब वस्तु को जानता है तब अविद्या नष्ट हो जाती है । जैसे प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है पर दीपक को हाथ में लेकर देखिये तो अन्धकार की कुछ मूर्ति दृष्टि नहीं आती, और जैसे उष्णता से घृत का पिंड गल जाता है तैसे ही आत्मा के दर्शन हुए अविद्या नहीं रहती । वास्तव में अविद्या कुछ वस्तु नहीं, अविचार से सिद्ध है और विचार किये से लीन हो जाती है । जैसे प्रकाश से तम लीन हो जाता है तैसे ही विचार से अविद्या लीन हो जाती है । अज्ञान से अविद्या की प्रतीति होती है । जब तक आत्मतत्त्व को नहीं देखा तबतक अविद्या ही प्रतीति होती है और जब आत्मा को देखा तब अविद्या का अभाव हो जाता है । प्रथम यह विचार करे कि रक्त, माँस और अस्थि का यन्त्र जो शरीर है उसमें "मैं क्या वस्तु हूँ"? "सत्य क्या है? और असत्य क्या है?" इस विचार से जिसका अभाव होता है वह असत्य है और जिसका अभाव नहीं होता वह सत्य है । फिर अन्वय व्यतिरेक से विचारे कि कार्यकल्पित के होते भी हो और उसके अभाव में भी हो सो अन्वय सत्य है । देहादिक के भाव में भी जो आत्मा अधिष्ठान है और इनके अभाव में भी निरुपाधि सिद्ध है सो सत्य है और देहादिक व्यतिरेक सत्य है । ऐसे विचारकर आत्मतत्त्व का अभ्यास करे और असत् देहादिक से वैराग्य करे तब निश्चय करके अविद्या लीन हो जाती है, क्योंकि वह वास्तव नहीं है, असत्यरूप है । उसके नष्ट हुए जो शेष रहे सो निष्किंचन है और सत्य है, ब्रह्म निरन्तर है सो तत्ववस्तु उपादेय करने योग्य है । हे रामजी! ऐसे विचार करके अविद्या नष्ट हो जाती है । जैसे पौंड़े का रस जिह्वा से लगता है तब अवश्य स्वाद आता है तैसे ही आत्मविचार से अविद्या अवश्य नष्ट हो जाती है यदि वास्तव में कहिये तो अविद्या भी कुछ भिन्न वस्तु नहीं एक अखंड ब्रह्मतत्त्व है । जिससे घट, पट, रथ आदिक पदार्थ भिन्न-भिन्न भासते हैं उसको अविद्या जानो और जिससे सबमें एक ब्रह्म भावना होती है उसको विद्या जानो । इस विद्या से अविद्या नष्ट हो जावेगी ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्याचिकित्सावर्णनन्नाम नवमस्सर्गः ।।9।।

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

जीवन्मुक्तनिश्चयोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! बोधके निमित्त मैं तुम को बारम्बार सार कहता हूँ कि आत्मा का साक्षात्कार भावना के अभ्यास बिना न होगा । यह जो अज्ञान अविद्या है सो अनन्त जन्म का दृढ़ हुआ भीतर बाहर दिखाई देता है, आत्मा सब इन्द्रियों से अगोचर है जब मन सहित षट् इन्द्रियों का अभाव हो तब केवल शान्ति को प्राप्त होता है । हे राम जी! जो कुछ वृत्ति बहिर्मुख फुरती है सो अविद्या है, क्योंकि वह वृत्ति आत्मतत्त्व से भिन्न जानकर फुरती है और जो अन्तर्मुख आत्मा की ओर फुरती है सो विद्या अविद्या को नाश करेगी । अविद्या के दो रूप हैं-एक प्रधान रूप और दूसरा निकृष्टरूप है । उस अविद्या से विद्या उपजकर अविद्या को नाश करती है और फिर आप भी नष्ट हो जाती है । जैसे बाँस से अग्नि उपजती है और बाँस को जलाकर आप भी शान्त हो जाती है तैसे ही जो अन्तर्मुख है सो प्रधानरूप विद्या है और जो बहिर्मुख है सो निकृष्ट रूप अविद्याभाव को नाश करे । हे रामजी । अभ्यास बिना कुछ सिद्ध नहीं होता । जो कुछ किसी को प्राप्त होता है सो अभ्यासरूपी वृक्ष का फल है । चिरकाल जो अविद्या का दृढ़ अभ्यास हुआ है तब अविद्या दृढ़ हुई है । जब आत्मज्ञान के निमित्त यत्न करके दृढ़ अभ्यास करोगे तब अविद्या नष्ट हो जावेगी । हे रामजी! हृदयरूपी वृक्ष में जो अविद्यारूपी बुरी लता फल रही है उसको ज्ञानरूपी खंग से काटो और जो कुछ अपना प्रकृत आचार है उसको करो तब तुमको दुःख कोई न होगा जैसे जनक राजा ज्ञात ज्ञेय होकर व्यवहार को करता था तैसे ही आत्मज्ञान का दृढ़ अभ्यास कर तुम भी बिचरो । हे रामजी! जैसा निश्चय पवन, विष्णुजी, सदाशिव, ब्रह्मा, वृहस्पति, चन्द्रमा, अग्नि , नारद, पुलह, पुलस्त्य, अंगिरा, भृगु, शुकदेव और ज्ञात ज्ञेय ब्राह्मणों का है वही तुमको भी प्राप्त हो । रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण! जिस निश्चय से बुद्धिमान विशोक होकर स्थित हुए हैं वह मुझसे कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे सम्पूर्ण ज्ञानवानों का निश्चय है और जैसे वे व्यवहार में सम रहे हैं सो सुनो । विस्ताररूप जो कुछ जगज्जाल तुमको भासता है वह निर्मल ब्रह्मसत्ता अपनी महिमा में स्थित है- जैसे समुद्र में तरंग स्थित होते हैं और नाना प्रकार के उत्पन्न होते हैं सो एक जल रूप है, जल से भिन्न नहीं, तैसे ही जो ग्रहण करनेवाला है सो भी ब्रह्म है और जिसको भोजन करताहै वह भी ब्रह्म है, मित्र भी ब्रह्म है, शत्रु भी ब्रह्म है, ब्रह्म ही अपने आपमें स्थित है । यह निश्चय ज्ञानवान् को सदा रहता है और ब्रह्म को ब्रह्म स्पर्श करता है तब किसको स्पर्श किया? हे रामजी! जिनको सदा यही निश्चय रहता है उनको राग द्वेष कुछ दुःख नहीं दे सकते । ब्रह्म ही ब्रह्म में फुरता है, भावरूप भी ब्रह्म है, अभावरूप भी ब्रह्म है, कुछ भिन्न नहीं तो फिर राग-द्वेष कलना कैसे हो? ब्रह्म ही ब्रह्म को चेतता है, ब्रह्म ही ब्रह्म में स्थित है, ब्रह्म ही अहं अस्मि है, ब्रह्म ही सम है, ब्रह्म ही आत्मा है और घट भी ब्रह्म है, पट भी ब्रह्म है, ब्रह्म ही से विस्तार को प्राप्त हुआ है । हे रामजी! जब सर्वत्र ब्रह्म ही है तब राग विराग कलना कैसे होवे? मृत्यु भी ब्रह्म है, शरीर भी ब्रह्म है, मरता भी ब्रह्म है और मारता भी ब्रह्म है । जैसे रस्सी में सर्प भ्रम से भासता है तैसे ही आत्मा में सुख दुःख मिथ्या है । भोग भी ब्रह्म है, भोगनेवाला भी ब्रह्म है और भोक्ता देह भी ब्रह्म है, निदान सर्वत्र ब्रह्म ही है । जैसे समुद्र में तरंग उपजते और मिट जाते हैं सो जल से भिन्न नहीं तैसे ही शरीर उपजते और मिट जाते हैं सो ब्रह्म ही ब्रह्म में स्थित है । हे रामजी! जल के तरंग जो मृत्यु को प्राप्त होते हैं तो क्या हुआ वे तो जल ही हैं, तैसे ही मृतक ब्रह्म ने जो मृतक देह ब्रह्म को मारा तब कौन मुआ और किसने मारा? जैसे एक तरंग जल से उपजा और दूसरे तरंग से मिल दोनों इकट्ठे होकर मिट गये सो जल ही जल है, वहाँ मैं, तू इत्यादिक दूसरा कुछ नहीं, तैसे ही आत्मा

www.tantrik-astrologer.in

में जो जगत् है सो आत्मा ही अपने आपमें स्थित है, तेरा, मेरा, भिन्न कुछ नहीं । जैसे सुवर्ण में भूषण और जल में तरंग अभेद रूप है तैसे ही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं । हे रामजी! जो पुरुष यथार्थदर्शी है उसको सदा यही निश्चय रहता है और जिनको सम्यक्ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ उनको विपर्ययरूप और का और भासता है । पर वास्तव में सदा एकरूप है, ज्ञान और अज्ञान का भेद है । जैसे रस्सी एक होती है परन्तु जिसको सम्यक्ज्ञान होता है उसको रस्सी भासती है और जिसको सम्यक्ज्ञान नहीं होता उसको सर्प हो भासता है, तैसे ही जो ज्ञानवान् पुरुष है उसको सब ब्रह्मसत्ता ही भासती है और जो अज्ञानी है उसको जगत् नानारूप हो भासता है और दुःखदायक होता है पर ज्ञानवान् को सुखरूप है । जैसे अन्धे को सब ओर अन्धकार ही भासता है और नेत्रवान् को प्रकाशरूप होता है तैसे ही सर्वजगत् आत्मरूप है परन्तु ज्ञानी को आत्मसत्ता सुखरूप भासती है और अज्ञानी को दुःख दायक है जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैतालबुद्धि होती है और उससे भयवान् होता है पर बुद्धिमान निर्भय होता है तैसे ही अज्ञानी को जगत् दुःखदायक है और ज्ञानी को सुखरूप है । यदि मेरा निश्चय पूछो तो यों है कि मैं सर्व, ब्रह्म, नित्य, शुद्ध, सर्व में स्थित हूँ, न कोई विनशता है, न उपजता है । जैसे जल में तरंग न कुछ उपजते हैं और न विनशते हैं जल ही जल है तैसे ही भूत भी आत्मा में और जगत् भी आत्मरूप है । आत्मब्रह्म ही अपने आपमें स्थित है और शरीर के नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता । मृतकरूप भी ब्रह्म है शरीर भी ब्रह्म है वह ही अनेकरूप होकर भासता है ब्रह्म से भिन्न शरीर आदिक कुछ सिद्ध नहीं होते । जैसे तरंग, फेन और बुद्बुदे जल रूप हैं तैसे ही देह, कल्पना, इन्द्रियाँ, इच्छा देवतादिक सब ब्रह्मरूप हैं और जैसे भूषण सुवर्ण से भिन्न नहीं होता-सुवर्ण ही भूषणरूप होता-तैसे ब्रह्म से व्यतिरेक जगत् नहीं होता ब्रह्म ही जगत्रूप है । जो मूढ़ हैं उनको द्वैतकलना भासती है । हे रामजी! मन, बुद्धि, अहंकार, तन्मात्रा और इन्द्रियाँ सब ब्रह्म ही के नाम हैं और सुख-दुख कुछ नहीं । अहं आदिक जो शब्द हैं, उनमें भिन्न भिन्न भावना करनी व्यर्थ है, अपना अनुभव ही अन्य की नाईं हो भासता है-जैसे पहाड़ में शब्द करने से प्रतिशब्द का भास होता है सो अपना ही शब्द है उसमें और की कल्पना मिथ्या है । जैसे स्वप्न में कोई अपना शिर कटा देखता है सो व्यर्थ है पर सो भी भासि आता है । जिसको असम्यक् ज्ञान होता है उसको ऐसे ही है । हे रामजी! ब्रह्म सर्वशक्ति है उसमें जैसे भावना होती है वही भासि आता है । जिसको सम्यक्ज्ञान होता है वह उसे निरहंकार, सुप्रकाश और सर्वशक्ति देखता है । कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण, यह जो षट्कार बुद्धि है सो सब सर्वत्र ब्रह्म ही है और ब्रह्म ही अर्पण, ब्रह्म ही हवि, ब्रह्म ही अग्नि, ब्रह्म ही होत्र, ब्रह्म ही हुतनेवाला और ब्रह्म ही फल देता है, ऐसे जाननेवाले का नाम ज्ञानी है और ऐसे न जानने से अज्ञानी है । जाननेवाले का नाम ब्रह्मवेत्ता है । हे रामजी! यदि चिरकाल का बान्धव हो और उसको देखिये तो जानिये कि बान्धव है और जो देखने में न आये और उसका अभ्यास दूर हो गया हो तो बान्धव भी अबान्धव की नाईं हो जाता है, तैसे ही अपना आप ही ब्रह्मस्वरूप है, जब भावना होती है तब ऐसे ही भासि आता है कि मैं ब्रह्म हूँ- और द्वैत कल्पना लीन हो जाती है-सर्व ब्रह्म ही भासता है । जैसे जिसने अमृत पान किया है वह अमृतमय होता है और जिसने नहीं पान किया वह अमृतमय नहीं होता, तैसे ही जिसने जाना है कि मैं ब्रह्म हूँ वह ब्रह्म हौ होता है और जिसने नहीं जाना उसको नानात्व कल्पनारूप जन्म मरण भासता है और ब्रह्म अप्राप्त की नाईं भासता है । हे राम जी! जिसको ब्रह्मभावना का अभ्यास है वह अभ्यास के बल से शीघ्र ही ब्रह्म होता है । ब्रह्मरूपी बड़े दर्पण में जैसे कोई भावना करता है तैसा ही रूप हो भासता है । मन भावनामात्र है, दुर्वासना से स्वरूप का आवरण हुआ है, जब वासना नष्ट होती है तब निष्कलंक आत्मतत्त्व ही भासता है

www.tantrik-astrologer.in

। जैसे शुद्ध वस्त्र पर केशर का रंग शीघ्र ही चढ़ जाता है, तैसे ही वासना से रहित चित्त में ब्रह्म निश्चय होता है । हे रामजी! आत्मा सर्वकलना से रहित है और तीनों काल में नित्य, शुद्ध, सम और शान्तरूप है । जिसको ज्ञान होता है वह ऐसे जानता है कि मैं ब्रह्म हूँ । और सर्वदाकाल, सर्व में सर्व प्रकार सर्व घट, पटादिक जो जगज्जाल है उसमें मैं ही ब्रह्म आकाशवत् व्याप रहा हूँ? न कोई मुझको व्याप रहा हूँ? न कोई मुझको दुःख है, न कर्म है न किसी का त्याग करता हूँ और न वाञ्छा करता हूँ और सर्वकलना से रहित निरामय हूँ । मैं ही रक्त, पीत, श्वेत और श्याम हूँ और रक्त, माँस अस्थि का वपु भी मैं ही हूँ, घट पटादिक जगत् भी मैं ही हूँ और तृण, बेलि, फूल, गुच्छे, टास, वन, पर्वत, समुद्र, नदियाँ, ग्रहण, त्याग, संकुचना, भूत आदि शक्ति सब मैं ही हूँ । विस्तार को प्राप्त मैं ही भया हूँ, वृक्ष, बेलि, फल गुच्छे, जिसके आश्रय फुरते हैं वह चिदात्मा मैं ही हूँ और सबमें रस रूप मैं ही हूँ । जिसमें यह सर्व है और जिससे यह सर्व है, जो सर्व है और जिसको सर्व है ऐसा चिदात्मा ब्रह्म मैं ही हूँ । जिसके चैतन्य, आत्मा, ब्रह्म, सत्य अमृत, ज्ञानरूप इत्यादिक नाम हैं ऐसा सर्वशक्त, चिन्मात्र, चैत्य से रहित प्रकाशमात्र, निर्मल, सर्वभूतों का प्रकाशक और मन, बुद्धि, इन्द्रियों का स्वामी मैं हूँ । जो कुछ भेद कलना है सो मनादि ही की थी और अब इनकी कलना को त्यागकर मैं अपने प्रकाश में स्थित हूँ । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिक जो सब जगत् का कारण है उन सबका चैतन्य आत्मारूप ब्रह्म, निरामय, अविनाशी, निरन्तर, स्वच्छ आत्मा, प्रकाशरूप, मन के उत्थान से रहित, मौनरूप मैं ही हूँ और परम अमृत, निरन्तर सर्व भूतों में सत्तारूप से मैं ही स्थित हूँ । सदा अलेप साक्षी, सुषुप्ति की नाईं और द्वैतकलना से रहित अक्षोभरूप अनुभव मैं ही हूँ । शान्तरूप जगत् में मैं ही फैल रहा हूँ और सब वासना से रहित अक्षोभरूपी अनुभव मैं ही हूँ । जिससे सर्व स्वाद का अनुभव होता है सो चैतन्य ब्रह्म आत्मा मैं ही हूँ । जिसका चित्त स्त्री में आसक्त है, जिसको चन्द्रमा की कान्ति से अधिक मुदिता है और जिससे स्त्री का स्पर्श और मुदिता का अनुभव होता है ऐसा चैतन्य ब्रह्म मैं ही हूँ और सुख दुःख की कलना से रहित अमन सत्ता और अनुभवरूप जो आत्मा है सो चैतन्यरूप आत्मा ब्रह्म मैं ही हूँ । खजूर और नींब आदिक में स्वादरूप मैं ही हूँ, खेद और आनन्द, लाभ और हानि मुझको तुल्य है और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और साक्षी तुरीयारूप आदि, अन्त से रहित चैतन्य ब्रह्म निरामय मैं हूँ । जैसे एक खेत के पौंड़ों में एक ही सा रस होता है तैसे ही अनेक मूर्तियों में एक ब्रह्मसत्ता ही स्थित है । वह सत्य, शुद्ध, सम, शान्तरूप और सर्वज्ञ है, जो प्रकाशक और सूर्य की नाईं है सो प्रकाशरूप ब्रह्म मैं ही हूँ और सब शरीरों में व्याप रहा हूँ । जैसे मोती की माला में तागा गुप्त होता है जिसमें मोती पिरोये हैं, तैसे ही मोतीरूपी शरीर में तन्तुरूप गुप्त मैं ही हूँ और जगत्‌रूपी दूध में ब्रह्मरूपी घृत मैं ही व्याप रहा हूँ । हे रामजी! जैसे सुवर्ण में जो नाना प्रकार के भूषण बनते हैं सो सुवर्ण से भिन्न नहीं होते तैसे ही सब पदार्थ आत्मा में स्थित हैं-आत्मा से भिन्न नहीं । पर्वत, समुद्र और नदियों में सत्तारूप आत्मा ही है, सर्व संकल्प का फलदाता और सर्व पदार्थों का प्रकाशक आत्मा ही है और सब पाने योग्य पदार्थों का अन्त है । उस आत्मा की उपासना हम करते हैं जो घट, पट, तट, और कन्ध में स्थित है । जाग्रत में जो सुषुप्तिरूप स्थित है और जिसमें कोई फुरना नहीं, ऐसे चैतन्यरूप आत्मा की हम उपासना करते हैं । मधुर में जो मधुरता है और तीक्ष्ण में तीक्ष्णता है और जगत् में चलना शक्ति है उस चैतन्य आत्मा की हम उपासना करते हैं । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया और तुरीयातीत में जो समतत्त्व है उसकी हम उपासना करते हैं । त्रिलोकी के देहरूपी मोतियों में जो तन्तु की नाईं अनुस्युत है और फैलाने और संकोचने का कारण है उस चैतन्यरूप आत्मा की हम उपासना करते हैं । जो षोडश कलासंयुक्त और षोडश

www.tantrik-astrologer.in

कला से रहित और अकिंचन, किंचनरूप है उस चैतन्य आत्मा की हम उपासना करते हैं । चैतन्यरूप अमृत जो क्षीरसमुद्र से निकला है और चन्द्रमा के मण्डल में रहता है, ऐसा जो स्वतः सिद्ध अमृत है जिसको पाकर कदाचित् मृत्यु न हो उस चैतन्य अमृत की हम उपासना करते हैं । जो अखण्ड प्रकाश है और सब भूतों को सुन्दर करता है उस चिदात्मा को हम उपासते हैं । जिससे शब्द, स्पर्श, रूप , रस, गन्ध प्रकाशते हैं और आप इससे रहित है उस चैतन्य आत्मा की हम उपासना करते हैं । सब मैं हूँ और सब मैं नहीं और भी कोई नहीं इस प्रकार विदित वेद अपने अद्वैतरूप में विगतज्वर होकर स्थित होते हैं । यही निश्चय ज्ञानवानों का है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तनिश्चयोपदेशोनाम दशमस्सर्गः ||10||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

जीवन्मुक्तनिश्चय वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो निष्पाप पुरुष है उसको यही निश्चय रहता है कि सत्यरूप आत्मतत्त्व है यह पूर्ण बोधवान् है यह पूर्ण बोधवान् का निश्चय है। उसको न किसी में राग होता और न किसी में द्वेष होता है, उसको जीना और मरना सुख दुःख नहीं देते और वह एक समान रहता हे। वह विष्णुनारायण का अंग है अर्थात् अभेद है और सदा अचल है। जैसे सुमेरु पर्वत वायु से चलायमान नहीं होता तैसे ही वह दुःख से चलायमान नहीं होता। ऐसे जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे वन में विचरते हैं और नगर द्वीप आदिक नाना प्रकार के स्थानों में भी फिरते हैं परन्तु दुःख नहीं पाते। कोई स्वर्ग में फूलों के वन और बगीचों में फिरते हैं कोई पर्वत की कन्दराओं में रहते हैं, कोई राज्य करते हैं और शत्रुओं को मारकर शिर पर झुलाते हैं, कितने श्रुति-स्मृति के अनुसार कर्म करते हैं, कोई भोग भोगते हैं, कोई विरक्त होकर स्थित हैं, कोई दान, यज्ञादिक कर्म करते हैं, कोई स्त्रियों के साथ लीला करते, कहीं गीत सुनते और कहीं नन्दनवन में गन्धर्व गायन करते हैं, कोई गृह में स्थित हैं, कोई तीर्थ और यज्ञ करते, कोई नौबत, नगारे और तुरियाँ इत्यादिक सुनते और नाना प्रकार के स्थानों में रहते हैं परन्तु आसक्त नहीं होते। जैसे सुमेरु पर्वत ताल में नहीं डूबता तैसे ही ज्ञानवान किसी पदार्थ में बन्धवान् नहीं होते। वे इष्ट को पाकर हर्षवान् नहीं होते और अनिष्ट को पाकर दुःखी नहीं होते। वे आपदा और सम्पदा में तुल्य रहते हैं और प्रकृत आचार (कर्म) करते हैं, परन्तु उनका हृदय सर्व आरम्भ से रहित है। हे राघव! इसी दृष्टि का आश्रय करके तुम भी बिचरो। यह दृष्टि सब पापों का नाश करती है। अहंकार से रहित होकर जो इच्छा हो सो करो ,जब यथार्थदर्शी हुए तब निर्बन्ध हुए फिर जो कुछ पतित प्रवाह से आ प्राप्त होगा उसमें सुमेरु की नाईं तुम रहोगे। हे रामजी! यह सब जगत् चिन्मात्र है, न कुछ सत्य है, न असत्य है, वही इस प्रकार होकर भासता है। इस दृष्टि को आश्रय करके और तुच्छ दृष्टि को त्यागो। हे रामजी! असंसक्त बुद्धि होकर सर्व भाव अभाव में स्थित होकर राग द्वेष से चलायमान न हो, अब सावधान हो जाओ, अब सावधान हो। रामजी बोले, हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है कि मैंने आपके प्रसाद से जानने योग्य और प्रबुद्ध हुआ हूँ। जैसे सूर्य की किरणों से कमल प्रफुल्लित होते हैं तैसे ही मैं प्रफुल्लित हुआ हूँ और जैसे शरत्काल में कुहिरा नष्ट हो जाता है तैसे ही आपके वचनों से मेरा संदेह और मान मोह मद मत्सर सब नष्ट हो गये हैं। मैं अब सब क्षोभ से रहित शान्ति को प्राप्त हुआ हूँ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तनिश्चय वर्णनन्नामैकादशस्सर्गः ॥11॥

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

ज्ञानज्ञेयविचार

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सम्यक्ज्ञान के पश्चात् जीवन्मुक्त पद में किस प्रकार विश्रान्ति पाते हैं सो कहो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसार तरने की युक्ति है सो योगनाम्नी है । वह युक्ति दो प्रकार की है-एक सम्यक्ज्ञान और दूसरी प्राण के रोकने से । फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! इन दोनों में सुगम कौन है जिससे दुःख भी न हो और फिर क्षोभ भी न हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी!दोनों प्रकार से योग शब्द कहाता है तो भी योग प्राण के रोकने का नाम है । योग और ज्ञान दोनों संसार से तरने के उपाय हैं । इन दोनों का फल एक ही सदाशिव ने कहा है । हे रामजी! किसी को योग करना कठिन होता है और ज्ञान का निश्चय सुगम होता है और किसी को ज्ञान का निश्चय कठिन होता है और योग करना सुगम है । यदि मुझसे पूछो तो दोनों में ज्ञान सुगम है, क्योंकि इसमें यत्न और कष्ट थोड़ा है । जानने योग्य पदार्थ के जानने से फिर सपने में भी भ्रम नहीं होता, क्योंकि वह साक्षीभूत होकर देखता है और जो बुद्धिमान् योगीश्वर हैं उनको भी कुछ यत्न नहीं होता, वे स्वभाविक ही चले जाते हैं और गुरु की युक्ति समझकर चित्त शान्त हो जाता है । हे रामजी! दोनों की सिद्धता अभ्यासरूप यत्न से होती है, अभ्यास बिना कुछ नहीं प्राप्त होता । वह ज्ञान तो मैंने तुमसे कहा है । जो हृदय में विराजमान ज्ञेय है उसका जानना ही ज्ञान है जो प्राण अपान के रथ पर आरूढ़ है और हृदयरूपी गुहा में स्थित है । हे रामजी! उस योग का भी क्रम सुनो वह भी परम सिद्धता के निमित्त है । प्राण वायु जो नासिका और मुख के मार्ग से आती जाती है उसके रोकने का क्रम कहता हूँ । उससे चित्त उपशम हो जाता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानज्ञेयविचारोनाम द्वादशस्सर्गः ||12||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

भुशुण्ड्यु पाख्याने सुमेरुशिखर लीलावर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाश के किसी अणु में यह जगत्रूपी स्पन्द आभास फुरा है-जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणों में मृग तृष्णाका जल फुर आता है-उस जगत् के कारणभाव को वह प्राप्त हुआ है जो ब्रह्म के नाभिकमल से उत्पन्न हुआ है और पितामह नाम से कहाता है। उसका मानसीपुत्र श्रेष्ठ आचारी मैं वशिष्ठ हूँ। नक्षत्र और ताराचक्र में मेरा निवास है और युग युग प्रति मैं वहाँ रहता हूँ। एक समय मैं नक्षत्रचक्र से उड़ा और इन्द्र की सभा में गया तो देखा कि वहाँ ऋषीश्वर, मुनीश्वर बैठे थे। इतने में नारद आदिक चिरंजीवी का जो प्रसंग चला तो शातातप नाम एक बुद्धिमान ऋषीश्वर ने कहा कि हे साधो! सबमें चिरंजीवी एक है। सुमेरु पर्वत की कोण पद्मरागनाम्नी कन्दरा के शिखर पर एक कल्पवृक्ष है जो महासुन्दर और अपनी शोभा से पूर्ण है। उस वृक्ष के दक्षिण दिशा की डाल पर बहुत पक्षी रहते हैं उन पक्षियों में एक महाश्रीमान् कौवा रहता है जिसका नाम भुशुण्डि है। वह वीतराग और बुद्धिमान् है और उसका आलय उस कल्पवृक्ष के टास पर बना हुआ है। जैसे ब्रह्मा नाभि कमल में रहते हैं तैसे ही वह आलय में रहता है। जैसे वह जिया है तैसे न कोई जिया है और न जीवेगा। उसकी बड़ी आयु है और वह महाबुद्धिमान्, विश्रान्तिमान्, शान्तरूप और काल का वेत्ता है। हे साधो! बहुत जीना भी उसी का फल है और पुण्यवान् भी वही है। उसको आत्मपद में विश्रान्ति हुई है और संसार की आस्था जाती रही है। इस प्रकार जब उन देवताओं के देव ने कहा तब सम्पूर्ण सभा में ऋषीश्वरों ने दूसरी बार पूछा कि उसका वृत्तान्त फिर कहो तब उसने फिर वर्णन किया तो सब आश्चर्य को प्राप्त हुए। जब यह कथा वार्त्ता हो चुकी तब सब सभा उठ खड़ी हुई और अपने-अपने आश्रम को गये, पर मैं आश्चर्यवान् हुआ कि ऐसे पक्षी को किसी प्रकार देखना चाहिये ऐसा विचार करके मैं सुमेरु पर्वत की कन्दरा के सम्मुख हो चला और एक क्षण में वहाँ जा पहुँचा तो क्या देखा कि महाप्रकाशरूप वह कन्दरा का शिखर रत्नमणियों से पूर्ण हे और उसका मोर की नाईं रंग है। जैसे अग्नि की ज्वाला होती है तैसे ही उसका प्रकाशरूप था मानो प्रलयकाल में अग्नि की ज्वाला जलती है-और बीच में नीलमणि धूम्र के समान था-मानों धुआँ निकलता है और सब रंगों की खानि है। ऐसे प्रकाश था मानो संध्या के लाल बादल इकट्ठे हुए हैं, मानो योगीश्वरों के ब्रह्मरन्ध्र से अग्नि निकलकर इकट्ठी हुई वा मानो बड़वाग्नि समुद्र से निकलकर मेघ को ग्रहण करने के निमित्त स्थित हुई है। निदान महासुन्दर रचना बनी हुई थी जो फल और रत्नमणिसंयुक्त प्रकाशवान् था और ऊपर गंगा का प्रवाह चला जाता था सो यज्ञोपवीतरूप था। गन्धर्व गीत गाते थे, देवियों के रहने के स्थान बने थे और हर्ष उपजाने को महासुन्दर लीला के स्थान विधाता ने वहाँ रचे थे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाण प्रकरणे भुशुण्ड्यु पाख्याने सुमेरुशिखर लीलावर्णनन्नाम त्रयोदशस्सर्गः ।।13।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

भुशुण्डिदर्शन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे शिखर पर मैंने कल्पवृक्ष देखा कि वह महासुन्दर फलों से पूर्ण है और रत्न और मणियों के गुच्छे और स्वर्ण की बेलें लगी हुई हैं, तारों से दूने फूल दृष्टि आते हैं, मेघ के बादल से दूने पत्र दृष्टि आते हैं और सूर्य की किरणों से दुगुने त्रिवर्ग भासते हैं, जिनका बिजली की नाईं चमत्कार है । पत्रों पर देवता, किन्नर, विद्याधर और देवियाँ बैठी हैं और अप्सरा आ नृत्य और गान करती हैं-जैसे भँवरे गुन्जार करते फिरते हैं । हे रामजी! रत्नों के गुच्छे और कलियाँ और मणि के फूल फल पत्र निरन्ध्र दृष्टि आते थे, सब स्थान फूल फल गुच्छों से पूर्ण थे और छहों ऋतु के फूल फल वहाँ पाये जाते थे । उस वृक्ष के एक टास पर पक्षी बैठे कहीं फूल फलादिक खाते थे, कहीं ब्रह्माजी के हंस बैठे थे , कहीं अग्नि के वाहन तोते, कहीं अश्विनीकुमार और भगवती के शिखावाले मोर, कहीं बगले, कहीं कबूतर और कहीं गरुड़ बैठे ऐसे शब्द करते थे मानो ब्रह्मा कमल से उपजकर ॐकार का उच्चार करते हैं कई ऐसे पक्षी देखे कि उनकी दो दो चोंचे थीं । फिर मैं आगे देखने को गया तो जहाँ उस वृक्ष का टास था वहाँ अनेक कौवे बैठे देखे । जैसे महाप्रलय में मेघ लोकालोक पर्वत पर आन बैठते हैं तैसे ही वहाँ अनेक कौवे अचल बैठे थे जो सोम, सूर्य, इन्द्र, वरुण और कुबेर के यज्ञ की रक्षा करनेवाले और पुण्यवान् स्त्रियों को प्रसन्नता देनेवाले भर्ता के संदेशे पहुँचानेवाले हैं । उनके मध्य में एक महा श्रीमान् ओर कान्तिमान् कौवा ऊँची ग्रीवा किये हुए बैठा था । जैसे नीलमणि चमकती है तैसे ही उसकी ग्रीवा चमकती थी और पूर्ण मन और मानी अर्थात् मान करने योग्य, सुन्दर और प्राणस्पन्द को जीतनेवाला, नित्य अन्तर्मुख और नित ही सुखी वह चिरंजीवी पुरुष वहाँ बैठा था जगत् में दीर्घ आयु और जगत् की आगमापायी गति देखते देखते जिसने बहुत कल्प का स्मरण किया है, इन्द्र की जिसने कई परम्परा देखी हैं, लोकपाल वरुण, कुबेर, यमादिक के कई जन्म देखे हैं और देवतों और सिद्धों के अनेक जन्म जिस पुरुष ने देखे हैं और जिसका प्रसन्न और गम्भीर अन्तःकरण है, जिसकी सुन्दरवाणी वक्रता से रहित है, जो निर्मल और निरहंकार सबका सुहृद मित्र है, जो पिता समान हैं,उनको पुत्र की नाईं है और जो पुत्र के समान हैं उनको उपदेश करने के निमित्त पिता और गुरु की नाईं समर्थ है और जो सर्वथा सर्व प्रकार, सर्वकाल, सबमें समर्थ और प्रसन्न, महामति, हृदय, पुण्डरीक, व्यवहार का वेत्ता है, गम्भीर और शान्तरूप महाज्ञातज्ञेय है ऐसे पुरुष को मैंने देखा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्डिदर्शनन्नाम चतुर्दशस्सर्गः ||14||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

भुशुण-डिसमागमन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसके अनन्तर मैं आकाशमार्ग से वहाँ आया और महातेजवान् दीपकवत् प्रकाशवान् मेरा शरीर था । जब मैं उतरा तब जितने पक्षी वहाँ बैठे थे वे सब जैसे वायु से कमल की पंक्ति क्षोभ को प्राप्त होती है और भूकम्प से समुद्र क्षोभ को प्राप्त होता है तैसे ही क्षोभ को प्राप्त हुए । उनके मध्य में जो भुशुण्डि था उसने मुझको यद्यपि अकस्मात् देखा तो भी जान गया कि यह वशिष्ठ है और खड़ा होकर बोला हे मुनीश्वर! स्वस्थ हो, कुशल तो है । हे रामजी! ऐसे कहकर उसने संकल्प के हाथ रचे और उनसे मेरा अर्ध्यपाद्यकर भावसंयुक्त पूजन किया और नौकरों को दूर करके आप ही वृक्ष के बड़े पत्र ले और उनका आसन रचकर मुझको बैठाकर बोला अहो, आश्चर्य है! हे भगवन्! आपने बड़ी कृपा की कि दर्शन दिया । चिरपर्यन्त दर्शनरूपी अमृत से हम वृक्ष सहित पूर्ण हो रहे हैं । हे भगवन्! मेरे पुण्य इक्ट्ठे होकर प्रसन्नता के निमित्त्त आपको प्रेर ले आये हैं । हे मुनीश्वर! देवता जो पूजने योग्य हैं उनके भी आप पूज्य हो कृपा करके कहो कि आप किस निमित्त आये हैं और आपका क्या मनोरथ है? आपके चरणों के दर्शन करके मैंने तो सब कुछ जाना है । स्वर्ग की सभा में जब चिरंजीवि यों का प्रसंग चला था तब मैं भी शरण आया था इससे आप मुझको पवित्र करने आये हो परन्तु प्रभु के वचनरूपी अमृत के स्वाद की मुझको इच्छा है इस निमित्त मैं प्रभु के मुख से कुछ सुना चाहता हूँ । हे रामजी! जब इस फ-रकार चिरंजीवी भुशुण्डि नाम पक्षी ने मुझसे कहा तब मैंने कहा, हे पक्षियों के महाराज! जो कुछ तुमने कहा सो सत् है । मैं अभ्यागत तुम्हारे आश्रम पर इस निमित्त आया हूँ कि चिरंजीवियों की कथा चली थी और उसमें तुम्हारा वर्णन हुआ था । तुम मुझको शीतल चित्त दृष्टि आते हो, और कुशलमूर्ति हो और संसाररूपी जाल से निकले हुए दीखते हो । इससे मेरे संशय को दूर करो कि कब तुमने जन्म लिया था, ज्ञात ज्ञेय कैसे हुए, तुम्हारी आयु कितनी है, कौन-कौन वृत्तान्त तुमको देखा हुआ स्मरण है और किस कारण यहाँ निवास किया है । भुशुण्डि बोले, हे मुनीश्वर! जो कुछ तुमने पूछा वह सब कहता हूँ, शनैः शनैः तुम श्रवण करो । तुम तो स्वयम् साक्षात् प्रभु त्रिलोकी के पूज्य और त्रिकालदर्शी हो परन्तु जो कुछ तुमने आज्ञा की है सो मानने योग्य है । तुम सारिखे महात्मा पुरुषों के सम्मुख हुए अपने में जो कुछ तप्तता होती है वह भी निवृत्त हो जाती है-जैसे मेघ के आगे आये हुए सूर्य की तप्तता मिट जाती है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण-डिसमागमनन्नाम पञ्चदशस्सर्गः ।।15।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

भुशुण्ड्यु पाख्याने अस्ताचललाभ

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! इस जगत् में सब देवताओं के बड़े देव सदाशिव हैं जिन्होंने अर्धाङ्गिनी भगवती को शरीर में धारण किया है और जो महासुन्दर मूर्ति और त्रिनेत्र हैं । जिनकी बड़ी जटा है और मस्तक पर चन्द्रमा है जिससे अमृत टपकता है, और जटा के चहुँ ओर गंगा फिरती है जैसे फूलों की माला कण्ठ में होती है । नीलकण्ठ कालकूट के पीने से विष विभूषण हो गया है, कण्ठ में मुण्ड की माला है और सब ओर से भस्म लगी हुई है । दिशा उनके वस्त्र हैं, श्मशान में गृह है और महाशान्तरूप बिच रते हैं । उनके साथ जो सेना है उसके महाभयानक आकार हैं, किसी के तो रुद्र की नाईं तीन नेत्र हैं, किसी का तोते की नाईं मुख है, किसी का ऊँट का मुख है, कोई गर्दभमुखी है, किसी का बैल का मुख है, कोई जीवों के हृदय में प्रवेश करके रक्त माँस के भोजन करनेवाले हैं, कोई पहाड़ में रहते हैं, कितने वन कन्दराओं और श्मशान में रहते हैं । उनके साथ देवियाँ भी ऐसी हैं जिनकी महाभयानक चेष्टा और आचार हैं । उन देवियों में जो मुख्य देवियाँ हैं उनका जिस जिस दिशा में निवास है वह सुनो । जया, विजया, जित और अपराजित वामदिशा की ओर तुम्बर रुद्र के आश्रित हैं, और सिद्धा, मुखका, रक्तका और उतला, भैरव रुद्र के आश्रित हैं । सर्व देवियों के मध्य ये अष्ट नायिका और शतसहस्त्र देवियाँ हैं रुद्राणी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, वाराही, वायवी कौमारी, वासवी, सौरी इत्यादिक । इनके साथ मिली हुई आकाश में उत्तम देव, किन्नर गन्धर्व पुरुष, सुरसंभवतियाँ तिनके साथ हुई हैं । भूचरपृथ्वी में कोटों है और नाना प्रकार के रूप, नाम धारकर पृथ्वी में जीवों को भोजन करती हैं । उनके वाहन ऊँट, गर्दभ, काक, वानर, तोते इत्यादिक हैं । उन देवियों में कई पशुधर्मिणी हैं जो क्षुद्रकर्म में स्थित हैं और कई विदितवेद जीवनमुक्तपद में स्थित हैं । उनके मध्य नायका अलम्बसा देवी है । जैसे विष्णु का वाहन गरुड़ है तैसे ही उस देवी का वाहन काक है और यह देवी अष्टसिद्धि के ऐश्वर्य संयुक्त है । वे देवियाँ एककाल में बिचारती भईं और जगत् के पूज्य तुम्बर और भैरव की पूजा कर विचार किया कि सदा शिव हमारे साथ भावसंयुक्त नहीं बोलते और हमको तुच्छ जानते हैं इससे हम इनको कुछ अपना प्रभाव दिखावें क्योंकि प्रभाव दिखाये बिना कोई किसी को नहीं जानता । ऐसे विचार करके उमा को वश करके दुराय ले गईं और उत्साह करके मद्य, मांसादिक भोजन किया । निदान माया के छल से पार्वती को मारकर चावल की नाईं पकाया और उसके कुछ अंग पकाये हुए सदाशिव को दिये । तब सदाशिव ने जाना कि मेरी प्यारी पार्वती इन्होंने मारी है । ऐसे निश्चय करके वह कोप करने लगे तब उन देवियों ने अपने अपने अंग से उसके अंग निकाले सौरी ने नेत्र, कौमारी ने नासा और इसी प्रकार सबने अपने अपने अङ्ग निकालकर वैसी ही पार्वती की मूर्ति ला दी और नूतन विवाह कर दिया तब सदाशिव प्रसन्न हुए, सब ठौर उत्साह और आनन्द हुआ और सब देवियाँ अपने-अपने स्थानों को गईं । चन्द्र नाम काक जो अलम्बसा देवी का वाहन था उसने ब्रह्माणी की हंसिनी के साथ क्रीड़ा की और इसी प्रकार सबने क्रीड़ा की जिससे सबको गर्भ रहे । निदान वह हंसिनी ब्राह्मणी के पास गई तब ब्राह्मणी ने कहा कि अब तुमको मेरे उठाने की शक्ति नहीं-तुम गर्भवती हो-जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ जाओ, फिर आना । हे मुनीश्वर! ऐसे कहकर ब्रह्माणी निर्विकल्प समाधि में स्थित हुई और नाभिसरोवर जो ब्रह्माजी का उत्पत्तिस्थान है वहाँ जा स्थित हुई और उस ताल के कमलपत्र पर निवास किया । जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब उन हंसनियों ने तीन तीन अण्डे दिये । जैसे बैल से अंकुर उत्पन्न होता है तैसे ही उनसे एकविंशति अण्ड क्रम से उत्पन्न हुए । कुछ काल उपरान्त जब उनको फोड़ा तो उन अण्डों से हमारे अंग उत्पन्न हुए और क्रम

www.tantrikastrologer.in

करके जब हम बड़े हो उड़ने योग्य हुए तब माता हमको ब्रह्माणी के पास ले गई । उनके आगे हमने मस्तक टेका तब ब्रह्माणी ने, जो किसी समय समाधि से उतरी थी, हमको देखकर कृपा वृत्ति धार हमारे शिर पर हाथ रक्खा । उसके हाथ रखने से हमारी अविद्या नष्ट हो गई और हमारा मन तृप्त शान्तरूप हो गया और हम जीवन्मुक्त पद में स्थित हुए । तब हमको यह वृत्ति फुर आई कि किसी प्रकार एकान्त में जाकर ध्यान में स्थित होवें । देवी ने आज्ञा की कि अब तुम जाओ, तब देवीजी की आज्ञा से हम पिता के पास आये और पिता ने हमको कण्ठ लगाया और मस्तक चूँबा । फिर हमने अलम्बसा देवी की पूजा की तब पिता ने हमसे कहा, हे पुत्रों! तुम संसाररूपी जाल में तो नहीं फँसे और फँसे हो मैं भगवती की प्रार्थना करता हूँ वह भृत्यों पर दयालु है-जैसे तुम चाहोगे तैसे ही तुमको प्राप्त करेगी । तब हमने कहा, हे पिता! हम तो ज्ञात ज्ञेय हुए हैं जो कुछ जानने योग्य था वह जाना है और जो पाने योग्य था वह हमने ब्रह्माणी देवीजी के प्रसाद से पाया है । अब हमको एकान्त स्थान की इच्छा है जहाँ एकान्त हो वहाँ जा बैठे । तब चन्द्र पिता ने कहा, हे पुत्रों । सुमेरु पर्वत निर्दोष महापावन निर्भय और क्षोभ रहित सुन्दर स्थान है, वह सर्वरत्नों की खानि है, सर्व देवताओं का आश्रयरूप है और सूर्य-चन्द्रमा उसके दीपक हैं जो चहूँ ओर फिरते हैं । ब्रह्माण्डरूपी मण्डप का वह थम्भा है और सुवर्ण का है, चन्द्र सूर्य उसके नेत्र हैं और तारों की कण्ठ में माला है । दशों दिशा उसके वस्त्र हैं, रत्नमणियों के भूषण हैं और वृक्ष और बेल रोमावली हैं । उसकी त्रिलोकी में पूजा होती है और वह षोडशसहस्त्र योजन पाताल में है जहाँ नाग और दैत्य पूजा करते हैं और चौरासी सहस्त्र योजन ऊर्ध्व को है जहाँ गन्धर्व, देवता, किन्नर, राक्षस मनुष्य पूजा करते हैं । ऐसा पर्वत जम्बूद्वीप के एक स्थान में स्थित है और उसके आश्रय चतुर्दश प्रकार के भूतजाति रहते हैं वह बड़ा ऊँचा पर्वत है और पद्मराग नाम उसका एक शिखर सूर्यवत् उदय है । शिखर पर एक बड़ा कल्पवृक्ष है जो मानो जगत्‌रूपी शिखर का प्रतिबिम्ब आ पड़ा है । उस कल्पवृक्ष के दक्षिण दिशा की ओर जो ढाल है उसमें महारत्न के गुच्छे सुवर्ण के पत्र और चन्द्रमा के बिम्बवत् फूल हैं और सघन रमणीय गुच्छे लगे हैं । वहाँ एक आलय बना हुआ है, वहाँ मैं भी आगे रह आया हूँ । जब देवीजी समाधि में स्थित हुई थी तब मैं वहाँ आलय बनाकर स्थित हुआ था । चिन्तामणि की उसमें शलाका लगी हैं और महारत्नों से बनाहै । वहाँ जा तुम निवास करो ।वहाँ और कौवों के पुत्र भी रहते हैं जिनका हृदय आत्मज्ञानसे शीतलहै और बाहर से भी शीतल है । तुमको वहाँ भोग भी है और मोक्ष भी है । हे वशिष्ठजी! जब इस प्रकार पिता ने हमसे कहा तब हम सबों ने पिता के चरण परसे और पिता ने हमारा मस्तक चूँबा। निदान हम विन्ध्याचलपर्वत से उड़े और आकाशमार्ग से मेघ नक्षत्र, चक्र, लोकान्तर होकर ब्रह्मलोक में पहुँच देवीजी को प्रणाम किया और उन्होंने भली प्रकार हमारे ऊपर कृपादृष्टि की । दया और स्नेह सहित कण्ठ लगाया और मस्तक चूँबा । हम भी मस्तक टेक कर सुमेरु को चले और सूर्य और चन्द्रमा के लोकों और तारागण, लोकपाल और देवताओं के लोकों और तारागण, लोकपाल और देवताओं के लोक, मेघ और पवन के स्थान लाँघकर सुमेरु पर्वत के कल्पवृक्ष पर पहुँचे । हे मुनीश्वर! जिस प्रकार हम उपजे और जिससे ज्ञान हुए हैं और जिस प्रकार यहाँ आ स्थित हुए हैं वह सब समाचार तुम्हारे आगे अखण्डित कहा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्ड्यु पाख्याने अस्ताचललाभोनाम षोडशस्सर्गः ।।16।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

सन्तमाहात्म्यवर्णन

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! यह चिरकाल की वार्त्ता तुमसे कही है वह सृष्टि इस सृष्टि से दूर है परन्तु मैंने तुमको वर्तमान की नाईं अभ्यास के बल से सुनाया है । हे मुनीश्वर! मेरा कोई पुण्य था सो फला है कि तुम्हारा निर्विघ्न दर्शन हुआ और यह आलय शाखा और वृक्ष आज पवित्र हुए । अब जो कुछ संशय है सो पूछो तो मैं कहूँ । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर उसने मेरा भली प्रकार अर्ध्यपाद्य से आदर सहित पूजन किया तब मैंने उससे कहा, हे पक्षियों के ईश्वर तुम्हारे वे भाई कहाँ हैं जो तुम्हारे समान तत्त्ववेत्ता थे, वह तो दृष्टि नहीं आते, अकेले तुमही दिखते हो? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! यहाँ मुझको बहुत युग की पंक्ति व्यतीत हुई है जैसे सूर्य को कई दिन रात्रि व्यतीत हो जाते हैं तैसे ही मुझको युग व्यतीत हुए हैं । कुछ काल वे भी रहे थे पर समय पाकर उन्होंने शरीर त्याग दिये और तृण की नाईं तनु त्यागकर शिव आत्मपद को प्राप्त हुए । हे मुनीश्वर! बड़ी आयु हो अथवा सिद्ध महन्त हो, बली हो, अथवा ऐश्वर्यवान् हो, काल सबको ग्रासि लेता है । फिर मैंने पूछा हे साधो! जब प्रलयकाल का समय है आता तब सूर्य, चन्द्रमा, वायु मेघ ये सब अपनी अपनी मर्यादा त्याग देते हैं और बड़ा मोक्ष होता है पर तुमको खेद किस कारण नहीं होता? सूर्य की तपन से अस्ताचल उदयाचलादिक पर्वत भस्म हो जाते हैं पर उस क्षोभ में तुम खेदवान क्यों नहीं होते? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! कई जीव जगत् में आधार से रहते हैं और कई निराधार रहते हैं जिनको सेना आदिक ऐश्वर्य पदार्थ होते हैं वे आधार सहित हैं और जो इन पदार्थों से रहित हैं वे निराधार हैं पर दोनों को हम तुच्छ देखते हैं सत् कोई नहीं । उनमें पक्षी की जाति महातुच्छ है जिनका उजाड़ वन में निवास है और वहाँ ही उनका दानापानी है । ये निरालम्ब हैं और इनकी जीविका दैव ने ऐसे ही बनाई है । हे भगवन् मैं तो सदा सुखी हूँ और अपने आपमें स्थित आत्मसन्तोष से तृप्त हूँ । कदाचित इस जगत् के क्षोभ से खेद को प्राप्त नहीं होता और स्वभावमात्र में सन्तुष्ट और कष्टचेष्टा मुक्त से हूँ । हे ब्राह्मण! अब हम केवल काल को व्यतीत करते हैं और जगत् के इष्ट अनिष्ट हमको चला नहीं सकते । न मरने की हमको इच्छा है और न जीने की इच्छा है, क्योंकि जीना मरना शरीर की अवस्था है, आत्मा की अवस्था नहीं । हमको जीने का राग नहीं और मरने में द्वेष नहीं-जैसी अवस्था प्राप्त हो उसी में सन्तुष्ट हैं । हे मुनीश्वर! ऐसे- ऐसे देखे हैं कि वे फिर भस्म हो गये हैं, उनकी अवस्था देखकर हमारे मन की चपलता जाती रही है और हम इस कल्पवृक्ष पर बैठे हैं जिसमें रत्नों की बेलि लगी हैं । इसपर बैठकर मैं प्राण अपान की गति को देखता हूँ । इनकी कला की जो सूक्ष्म गति है उसका मैं ज्ञाता हूँ और दिन रात्रि का मुझको कुछ ज्ञान नहीं । सत्ुबुद्धि से मैं काल को जानता हूँ और सार असार को भी भले प्रकार जानता हूँ । हे मुनीश्वर! जो कुछ विस्तार भासता है वह सब झूठ है, सत् कुछ नहीं, इसी कारण किसी दृश्यपदार्थ की इच्छा नहीं, हम परमउपशमपद में स्थित हैं और सब जगत् भी हमको शान्तरूप है । जो कोई इस जगज्जाल का आश्रय करता है वह सुखी नहीं होता । यह सब जगत् चञ्चलरूप है और स्थित कदाचित् नहीं होता । इसकी अवस्था में हम पत्थरवत् अचल हैं, न किसी का हमको राग फुरता है और न द्वेष है, न हम किसी की इच्छा करें, सब जगत् हमको तुच्छ भासता है । यह सब भूतरूपी नदियाँ कालरूपी समुद्र में जा पड़ती हैं पर हम किनारे खड़े हैं इससे कदाचित नहीं डूबते और जितने जीव हैं वे डूबते हैं? पर कई एक तुम सरीखे निकले हुए हैं और तुम्हारी कृपा से हम भी निर्विकार पद को प्राप्त हुए हैं । हे मुनिश्वर! मैं निर्विकार सब जगत् के क्षोभ से रहित हूँ और आत्मपद को पाकर उपशमरूप हूँ । हे मुनीश्वर! तुम्हारे दर्शन से मैं अब

www.tantrik-astrologer.in

पूर्ण आनन्द को प्राप्त हुआ हूँ, सन्त की संगति चन्द्रमा की चाँदनीवत् शीतल है और अमृत की नाईं आनन्द को प्राप्त हो, अर्थात् सब आनन्द को प्राप्त होते हैं । हे मुनीश्वर! सन्त का संग चन्द्रमा के अमृत से भी अधिक है, क्योंकि वह शीतल गौण है– हृदय की तपन नहीं मिटाता और सन्त का संग अन्तःकरण की तपन मिटाता है वह अमृत क्षीरसमुद्र के मथन के क्षोभ से निकला है और सन्त का संग सुख से प्राप्त होता है और आत्मानन्द को प्राप्त करता है–इससे यह परम उत्तम है । मैं तो इससे और कोई उत्तम नहीं मानता, सन्त का संग सबसे उत्तम है सन्त भी वे ही हैं जिनकी आपातरमणीय सब इच्छाएँ निवृत्त हुई हैं अर्थात् जो विचार बिना दृश्य पदार्थ सुन्दर भासते हैं और नाशवन्त हैं वे उनको तुच्छ भासते हैं और वे सदा आत्मानन्द से तृप्त हैं । वे अद्वैत निष्ठ हैं, उनकी द्वैतकलना का अभाव हुआ है वे सदा आत्मानन्द में स्थित हैं । ऐसे पुरुष सन्त कहाते हैं । उन सन्तों की संगति ऐसी है जैसे चिन्तामणि होती है, जिसके पाये से सब दुःख नष्ट होते हैं । हे मुनीश्वर! त्रिलोकरूपी कमल के भँवरे और सब ज्ञानवानों से उत्तम तुमही दृष्टि आये हो । तुम्हारे वचन स्निग्ध, कोमल और आत्मरस से पूर्ण, हृदयगम्य और उचित हैं और तुम्हारा हृदय महागम्भीर और उदार, धैर्यवान् और सदा आत्मानन्द से तृप्त है, इससे तुम सबसे उत्तम मुझको दीखते हो । तुम्हारे दर्शन से मेरे सब दुःख नष्ट हुए हैं और आज मेरा जन्म सफल हुआ है । तुम सरीखे सन्तों का संग आत्मपद को प्राप्त करता है । और दुःख और भय नष्ट करके निर्भयता को प्राप्त करता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सन्तमाहात्म्यवर्णनन्नाम सप्तदशस्सर्गः ||17||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

भुशुण्ड्यु पाख्याने जीवितवृत्तान्त वर्णन

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! तुमने जो पूछा था कि सूर्य, वायु और जल का क्षोभ होता है तो तुम खेदवान क्यों नहीं होते उसका उत्तर सुनो । जब जगत् को क्षोभ होता है तब भी मेरा यह कल्पवृक्ष स्थिर रहता है क्षोभ को प्राप्त नहीं होता । हे मुनीश्वर! यह मेरा वृक्ष सब लोको को अगम है । भूत नष्ट होते हैं तब भी मैं इससे सुखी रहता हूँ । जब हिरण्यकशिपु द्वीपों सहित पृथ्वी समेटकर पाताल ले गया था तब भी मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ, जब देवता और दैत्यों का युद्ध हुआ तब और सब पर्वत चलायमान हुए पर मेरा वृक्ष स्थिर रहा और जब क्षीरसमुद्र के मथने के निमित्त विष्णुजी सुमेरु को भुजा से उखाड़ने लगे पर मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ- तब मन्दराचल को ले गये और क्षीरसमुद्र को मथने लगे । प्रलयकाल का पवन और मेघ का क्षोभ हुआ तब भी मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ । फिर एक दैत्य आकर सुमेरु को पटकने लगा और उसने कुछ उखाड़ा परन्तु मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ । हे मुनीश्वर! बड़े- बड़े उपद्रव हुए हैं और प्रलयकाल के मेघ, पवन और सूर्य तपे हैं तब भी मेरा वृक्ष स्थिर रहा है । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर मैंने उससे पूछा कि हे साधो! जब प्रलयकाल के वायु और मेघ क्षोभते हैं तब तू विगतज्वर कैसे रहता है? भुशुण्डिजी ने कहा, हे साधो! जब प्रलयकाल के वायु, मेघ मेघादिक क्षोभ करते हैं तब मैं कृतघ्न की नाईं अपने आलय को त्यागकर और सब क्षोभ से रहित आकाश में स्थित होता हूँ और सब अंगों को सकुचा लेता हूँ । जैसे वासना के रोके से मन सकुच जाता है तैसे ही मैं भी अंग को सकुचा लेता हूँ । हे मुनीश्वर! जब प्रलयकाल का सूर्य तपता है तब मैं जल की धारणा से जलरूप हो जाता हूँ, जब वायु चलता है तब पर्वत की धारणा बाँधकर स्थित हो जाता हूँ, जब बहुत तत्त्वों का क्षोभ होता है तब सबको त्यागकर ब्रह्माण्ड खप्पर के पार जो निर्मल परमपद है वहाँ मैं सुषुप्तिवत् अचल गम्भीर हो जाता हूँ और जब ब्रह्मा उपजकर फिर सृष्टि रचता है तब मैं सुमेरु के वृक्ष पर इसी आलय में स्थित होता हूँ । फिर मैंने पूछा, हे पक्षियों के ईश्वर! जैसे तुम अखण्ड स्थित होते हो तैसे ही और योगीश्वर क्यों नहीं स्थित होते? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! परमा- त्मा की यह नीति किसी से लंघी नहीं जाती, उन योगीश्वरों की नीति इसी प्रकार हुई है और मेरी उत्पत्ति इसी प्रकार है । ईश्वर की नीति अतुल है । उसकी तुल्यता किसी से नहीं की जाती, जहाँ जैसी नीति हुई वहाँ वैसे ही है, अन्यथा किसी से नहीं होती । हमको इसी प्रकार हुई है कि कल्प कल्प में इसी पर्वत के वृक्ष पर आलय होता है और हम आय निवास करते हैं । वशिष्ठजी बोले, हे पक्षियों के नायक! तुम्हारी अत्यन्त दीर्घ आयु है, तुम ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न और योगेश्वर हो और तुमने अनेक आश्चर्य देखे हैं उनमें जो स्मरण है वह कहो? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! एक बार ऐसे स्मरण आता है कि पृथ्वी पर तृण और वृक्ष ही थे और कुछ न था, फिर एक बार एकादशसहस्त्रवर्ष पर्यन्त भस्म ही दृष्टि आती थी, जो वृक्ष और तृण थे सो सब जल गये थे, एक बार ऐसी सृष्टि हुई कि उसमें चन्द्र और सूर्य न उपजे और दिन और रात्रि की गति कुछ जानी न जाती थी पर कुछ सुमेरु के रत्नों का प्रकाश होता था एक कल्प ऐसा हुआ है कि जिसमें देवता और दैत्यों का युद्ध हुआ था । और जब दैत्यों की जीत हुई तो उन्होंने सब देवता मनुष्यों की नाईं हत किये, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों देवताओं के सिवा और सब सृष्टि उन्होंने जीती और बीस युग पर्यन्त उन्हीं की आज्ञा चली । एक बार ऐसे स्मरण आता है कि दो युग पर्यन्त पृथ्वी पर वृक्ष ही वृक्ष थे और कुछ सृष्टि न थी, एक बार दो युग पर्यन्त पृथ्वी पर पर्वतही पर्वत सघन हो रहे थे और कुछ न था और एक बार ऐसा हुआ कि सब जल ही जल हो गया और कुछ न

www.tantrik-astrologer.in

भासे केवल सुमेरु पर्वत थंभे की नाईं भासे । एक बार अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशा से आये और विन्ध्याचलपर्वत बढ़ा और सब ब्रह्माण्ड चूर्ण कर दिये । हे मुनीश्वर! बहुत कुछ स्मरण है परन्तु संक्षेप से-सुनो-- एक काल सृष्टि में मनुष्य, देवतादिक कुछ न भासते थे, एक बार ऐसी सृष्टि हुई थी कि ब्राह्मण मद्यपान करते थे शूद्र बड़े हो बैठे थे और सब जीवों में विपर्यय धर्म हो गये थे ,एकबार ऐसी सृष्टि स्मरण में आती है कि पृथ्वी में कोई पर्वत दृष्टि न आता था, एक बार सृष्टि ऐसी उत्पन्न हुई कि सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, लोकपाल आदि कोई न उपजा, एक सृष्टि ऐसी हुई कि सब ही उपजे, एक सृष्टि ऐसी हुई कि उसमें स्वामिकार्तिक न उपजा, दैत्य और बढ़ गये और दैत्यों ही का राज्य हो गया । मुझको बहुत स्मरण है कहाँ तक कहूँ । सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, इन्द्र, उपेन्द्र और लोकपालों के बहुत जन्म मुझको स्मरण आते हैं । जब हिरण्याक्ष को जो वेद को चुरा ले आया था हरि ने मारा था वह भी स्मरण है और क्षीरसमुद्र मथना भी स्मरण है । ऐसी सृष्टि भी देखी है कि जिसमें विष्णुजी का वाहन गरुड़ नहीं हुआ, ब्रह्माजी हंस वाहन बिना हुए हैं और रुद्र बैल वाहन बिना हुए हैं । इसी प्रकार बहुत कुछ देखा है क्या क्या तुम्हारे आगे वर्णन करूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्ड्यु पाख्याने जीवितवृत्तान्त वर्णनन्नामाष्टादशस्सर्गः ||18||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

चिरातीतवर्णन

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! जब फिर सृष्टि उत्पन्न हुई तब तुम भारद्वाज, पुलस्त्य, नारद, इन्द्र, मरीचि, उद्दालक, क्रतु, भृगु, अंगिरा, सनत्कुमार, भार्गवेश आदिक उपजे । फिर सुमेरु, मन्दराचल, कैलास, हिमालय आदिक पर्वत उपजे और अत्रि वासुदेव, बाल्मीकि इत्यादिक यह तो अल्पकाल के उपजे हैं । हे मुनीश्वर! तुम ब्रह्मा के पुत्र हो और तुम्हारे आठ जन्म मुझको स्मरण आते हैं । कभी तुम आकाश से उपजे हो कभी जल से उपजे, कभी पहाड़ से उपजे, कभी पवन से उपजे और कभी अग्नि से उपजे हो । हे मुनीश्वर मन्दराचलपर्वत को क्षीरसमुद्र में डालकर जब मथने लगे और देवता और दैत्य क्षोभवान् हुए कि मन्दराचल नीचे चला जाता है तब विष्णुजी ने कच्छपरूप धारणकर पर्वत को ठहराया था और अमृत निकाला था सो मुझको द्वादशबार स्मरण आता है । तीन बार हिरण्याक्ष पृथ्वी को पाताल में समेट ले गया है और छः बार परशुराम रेणुका माता का पुत्र हुआ है सो बहुत सृष्टि के पीछे हुआ है । जब क्षत्रियों में दैत्य उपजने लगे तो उनके नाश निमित्त विष्णुजी ने परशुरामजी का अवतार लिया था । हे मुनीश्वर! एक सृष्टि ऐसी हुई है कि जिसमें अगले से विपर्ययरूप शास्त्र और पुराण के अर्थ हुए और एक कल्प में और ही पाठ और ही युक्ति और ही अर्थ हुए क्योंकि युग युग प्रति और ही पुराण होते हैं, किसी को देवता बनाते हैं और किसी को ऋषीश्वर मुनीश्वर कहते हैं । कथा और इतिहास भी मुझे बहुत स्मरण हैं । बाल्मीकीजी ने द्वादशबार रामायण बनाई और विलय हो गया है और व्यासजी ने दो बार महाभारत बनाई और उन्होंने सातबार अवतार लिया है । मुनीश्वर! इस प्रकार आख्यान, कथा, इतिहास और शास्त्र जो जो हुए हैं वे सब मुझको बहुत स्मरण में आते हैं । हे साधो! दैत्यों के मारने के निमित्त विष्णुजी युग युग प्रति अवतार लेते हैं । एकादशबार मुझको रामजी स्मरण में आते हैं- और वसुदेव के गृह में पृथ्वी के भार उतारने के निमित्त कृष्णजी ने सोलह बार अवतार लिया है सो भी मुझको स्मरण है और तीन बार नरसिंह अवतार धारण कर विष्णुजी ने हिरण्य कशिपु को मारा है । हे मुनीश्वर! इसी प्रकार मुझको अनेक सृष्टि स्मरण आती है परन्तु सबही भ्रममात्र है, कुछ उपजी नहीं । जब आत्मतत्त्व में देखता हूँ तब कुछ सृष्टि नहीं भासती सब सत्तामात्र है । जैसे जल में बुद्बुदे उपजकर लीन हो जाते हैं तैसे ही आत्मा में मन के फुरने से कई सृष्टि उपजती हैं और लीन हो जाती हैं । उस फुरने से कई सृष्टि देखी हैं; कोई सदृश ही उपजती हैं कोई अर्धसदृश और कोई विपर्यय रूप हैं । हे मुनीश्वर! कोई कोई सृष्टि में एक से ही आकार और कर्म-आचार होते हैं कोई मन्वन्तर-मन्वन्तर प्रति और ही और सृष्टि होती है और किसी में ऐसे होता है कि पुत्र पिता हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाता है, बान्धव अबान्धव और अबान्धव बान्धव हो जाता है । इस प्रकार भी विपर्यय होते दृष्टि आये हैं । कभी इस ही कल्पवृक्ष पर हमारा आलय होता है, कभी मन्दराचल में कभी हिमालय पर्वत में, और कभी मालव पर्वत में होता है । इसी प्रकार वन, वृक्ष और बेलि पर हो जाता है और कभी इसी कल्पवृक्ष के ऊपर हो जाता है पर अब तो बहुत काल से इसी कल्पवृक्ष पर रहता हूँ । जब सृष्टि का नाश हो जाता है तब भी मेरा यही शरीर रहता है । मैं आसन लगाकर अपनी पुर्यष्टक को ब्रह्म सत्ता में स्थित करता हूँ इसी कारण मुझको फिर यही शरीर प्राप्त होता है । हे मुनीश्वर! जगत् सब संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प फुरता है तैसा ही आगे हो भासता है । यह जगत् सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं केवल भ्रमरूप है । उस जगत् भ्रम में अनेक आश्चर्य दृष्टि आते हैं, पिता पुत्र हो जाता है, मित्र शत्रु हो जाता है, स्त्री पुरुष हो जाती और पुरुष स्त्री हो जाता है । कभी कलियुग में सतयुग बर्तने लगता है और सतयुग में कलियुग बर्तने लगता है और कभी द्वापर में त्रेता और त्रेता में द्वापर बर्तता है । कभी अदृश्य ही वेद विद्या के अर्थ

www.tantrik-astrologer.in

होते हैं और नाना प्रकार के आश्चर्य भासते हैं । हे मुनीश्वर! जब एक सहस्त्र चौकड़ी युग की व्यतीति होती है तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है, सो एकबार दो दिन पर्यन्तब्रह्मा समाधि में लगा रहा और सृष्टि शून्य हो रही-यह स्मरण आता है और भी कई देश क्रिया विचित्ररूप स्मरण आते हैं, क्या क्या कहूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिरातीतवर्णनन्नामैकोनविंशतितमस्सर्गः ||19||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

संकल्पनिराकरण

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब भुशुण्डिजी ने कहा तब मैंने फिर जिज्ञासा के अर्थ पूछा कि हे पक्षियों के ईश्वर! तुमतो चिरकाल पर्यन्त जगत् में व्यवहार करते रहे तो तुम्हारे शरीर को मृत्यु ने किस निमित्त न ग्रास किया? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! तुम सब जानते हो परन्तु ब्रह्म जिज्ञासा करके पूछते हो इससे जैसे विद्यार्थी वेदार्थ पढ़कर फिर गुरु के आगे कहते हैं तैसे ही मैं आज्ञा मानकर कहता हूँ । हे मुनीश्वर! मृत्यु किसको मारता है और किसको नहीं मारता सो सुनो । दुःख रूपी मोती वासनारूपी तांत से पिरोये हैं, यह माला जिसके हृदयरूपी गले में पड़ी हुई है उसको मृत्यु मारता है और जिसके कण्ठ में यह माला नहीं पड़ी उसको मृत्यु नहीं मारता । शरीररूपी वृक्ष में चित्तरूपी सर्प बैठा है । आशारूपी अग्नि जिस वृक्ष को नहीं जलाती वह मृत्यु के वश नहीं होता । रागद्वेषरूपी विष से पूर्ण जो चित्तरूपी सर्प है, तृष्णा से चूर्ण होता है और लोभरूपी व्याधि से नष्ट होता है उसको मृत्यु मारता है और ग्रस लेता है । जिसको इनका दुःख नहीं स्पर्श करता उसको मृत्यु भी नहीं नाश करता । हे मुनीश्वर! शरीररुपी समुद्र क्रोधरूपी बड़वाग्नि से जलता है जिसको क्रोधरूपी अग्नि नहीं जलाता उसको मृत्यु भी नहीं मारता । जिसका मन परम पावन और निर्मल पद में दृढ़ विश्रान्त और स्थित हुआ है उसको मृत्यु नाश करता । हे मुनीश्वर जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, तृष्णा, चिन्ता, चञ्चलता, अभिमान, प्रमाद इत्यादि दुःख होते हैं उसको मृत्यु मारता है और जिसको काम क्रोध, लोभादिक रोग संसार बन्धन का कारण बाँध नहीं सकते और जो इनसे चलायमान नहीं होता उसको आधि व्याधिरूपी मल नहीं स्पर्श करता । जो मनुष्य लेता है, देता है और सब कार्य करता है पर चित्त में अनात्म स्पर्श नहीं करता उसको और जो पुरुष इष्ट की वाच्छा नहीं करता और अनिष्ट में दोष नहीं करता दोनों की प्राप्ति में सम रहता है उसको समाहितचित्त कहते हैं । हे मुनिश्वर! जो कुछ ऐश्वर्यवान् सुन्दर पदार्थ हैं वे सब असत्ूरूप हैं, पृथ्वी पर चक्रवर्ती राजा और स्वर्ग में गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, देवता और उनकी स्त्रीगण और सुरों की सेना आदिक सब नाशरूप हैं । दैत्य, देवता, असुर, पहाड़, ताल,नदियाँ जो कुछ बड़े पदार्थ हैं वे सबही नाशरूप हैं । स्वर्ग, पृथ्वी और पातालालोक जो कुछ जगत् भोग हैं वे सब असत्ूरूप और अशुभ हैं । कोई पदार्थ श्रेष्ठ नहीं, न पृथ्वी का राज्य श्रेष्ठ है, न देवताओं का रूप श्रेष्ठ है, न नागों का पातालालोक श्रेष्ठ है, न कुछ शास्त्रों का विचारना श्रेष्ठ है, न काव्य का जानना श्रेष्ठ है, न पुरातन कथाक्रम वर्णन करना श्रेष्ठ है, न बहुत जीना श्रेष्ठ है, न मूढ़ता से मर जाना श्रेष्ठ है, न नरक में पड़ना श्रेष्ठ है और न इस त्रिलोकी में और कोई पदार्थ श्रेष्ठ है, जहाँ सन्त का मन स्थित है वही श्रेष्ठ है । यह नाना प्रकार का जगत्ुक्रम चलरूप है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे मूढ़ होकर चलपदार्थ में नहीं रमते और बहुत जीने की इच्छा भी नहीं करते हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्ड्युपाख्याने संकल्पनिराकरण न्नामविंशतितमस्सर्गः ||20||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

समाधि वर्णन

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! केवल एक आत्मदृष्टि सबसे श्रेष्ठ है, जिसके पाये से सब दुःख नाश होते हैं और परमपद पद प्राप्त होता है । वह आत्मचिन्तन सर्व दुःखों का नाशकर्त्ता है और चिरकाल के तीनों तापों से तपे और जन्म के मार्ग से थके हुए जीवों के श्रम को दूर करता है और तपन मिटाता है । समस्त दुःखों की खानि अनिद्या अनर्थ प्राप्त करनेवाली है उसको नाश करती है । जैसे अन्धकार को प्रकाश नष्ट करता है तैसे ही जीव के हृदय में शीतल प्रकाश उपजाती है । हे भगवन्! ऐसी जो आत्मचिन्तना सब संकल्पो से रहित है सो तुम सारिखे को सुगम प्राप्त है और हम सारिखों को कठिन है, क्योंकि समस्त कलना से अतीत है । हे मुनीश्वर! उस आत्मचिन्तन की सखी और भी कोई ताप हो तो सब ताप मिट जावें- और महा शीतलता हो उनमें से मुझको एक सखी प्राप्त हुई है वह सब दुःखों का नाश करती है, सब सौभाग्य देनेवाली और जीने का मूल है । ऐसी प्राणचिन्ता मुझको प्राप्त हुई है । हे रामजी! जब इस प्रकार मुझसे काकभुशुण्डि ने कहा तब मैंने जानकर भी क्रीड़ा के निमित्त फिर उससे पूछा कि हे सर्वसंशयों के निवृत्त करनेवाले, चिरंजीवी पुरुष! सत्य कहो, प्राण चिन्ता किसको कहते हैं? भुशुण्डिजी बोले, हे सर्ववेदान्त के वेत्ता और सर्व संशयों के नाशकर्त्ता! मेरे उपहास के निमित्त तुम मुझसे पूछते हो । तुम तो सब कुछ जानते हो परन्तु तुमसे शिष्य की भाँति कहता हूँ । क्योंकि गुरु के आगे कहना भी कल्याण के निमित्त है । भुशुण्डिजी के जीने का कारण और भुशुण्डि को आत्मलाभ देनेवाली प्राणचिन्ता कहाती है । हे भगवन्! इसी दृष्टि का आश्रय करके मैं परमपद को प्राप्त हुआ हूँ मुझको बन्धन नहीं होता और सब अवस्था में बैठते, चलते, जागते, सोते सब ठौर मेरा चित्त सावधान रहता है इस कारण कोई बन्धन नहीं होता । हे मुनीश्वर! मैंने प्राण और अपान के संसरने की गति पाई है, उस युक्ति से मुझको आत्मबोध हुआ है और उस बोध से मेरे मद, मोहादिक विकार सब नष्ट हो गये हैं और शान्तरूप होकर स्थित हुआ हूँ । हे मुनीश्वर! जिसको प्राण अपान की गति प्राप्त हुई है वह सब आरम्भ कर्म को करे अथवा सब आरम्भ का त्याग करे परन्तु सदा शान्तरूप है, उसका काल सुख से व्यतीत होता है । हे मुनीश्वर! प्राण हृदय से उपजकर द्वादश अंगुल पर्यन्त बाहर जाता है और वहाँ जाकर स्थित होता है, उस ठौर से अपानरूप हो हृदय में आकर स्थित होता है । हे मुनीश्वर! बाहर आकाश के सम्मुख जो प्राण जाता है सो अग्निवत् उष्ण होता है और जो हृदय आकाश के सम्मुख आता है सो शीतल नदी के प्रवाहवत् आता है, अपान चन्द्रमारूप है और बाहर से अन्तर आता है । और प्राण भीतर से बाहर जाता है, वह अग्नि, उष्ण और सूर्यरूप है । प्राणवायु हृदयाकाश को तपाता है और अन्न को पचाता है और अपान हृदय को चन्द्रमा की सदृश शीतल करता है । हे मुनीश्वर! अपानरूपी चन्द्रमा जब प्राणरूपी सूर्य में जहाँ तत्त्व है लीन होता है तो उसमें स्थित हुआ मन फिर शोक को नहीं प्राप्त होता और प्राणरूपी सूर्य जब अपानरूपी चन्द्रमा के घर में लीन होता है उस अवस्था में मन स्थित हुआ फिर जन्म का भागी नहीं होता । हे मुनीश्वर! सूर्यरूपी प्राण अपने सूर्यभाव को त्यागकर अपानरूपी चन्द्रमा को जबतक नहीं प्राप्त हुआ उस अवस्था के देशकाल को विचारे तो फिर शोक नहीं पाता और सब भ्रम नष्ट हो जाते हैं । द्वादश अंगुल पर्यन्त जो आकाश है उससे अपानरूप चन्द्रमा उपजकर हृदय के प्राणरूपी सूर्य में लीन होता है पर सूर्यभाव को जब तक नहीं प्राप्त होता उसके मध्यभाव अवस्था में जिसका मन लगा है वह परमपद को प्राप्त होता है । हृदय में चन्द्रमा और सूर्य के अस्तभाव और उदयभाव का ज्ञाता था और इसका आधारभूत जो आत्मा है उसको जानकर फिर मन नहीं उपजता । हे मुनीश्वर! प्राण और अपानरूपी सूर्य

www.tantrikastrologer.in

और चन्द्रमा जो हृदय आकाश में उदय और अस्त होते हैं उनके प्रकाश से हृदय में जो भास्करदेव है उसको जो देखता है वही देखता है । बाहर जो सूर्य प्रकाशता है और कभी अन्धकार होता है तो उस प्रकाश के उदय हुए और तम के क्षीण हुए कुछ सिद्ध नहीं होता परन्तु जब हृदय का तम दूर होता है तब परमसिद्धता को प्राप्त होता है । बाहर के तम नष्ट हुए लोकों में प्रकाश होता है और हृदय के तम नष्ट हुए आत्म प्रकाश उदय होता है और अज्ञानअन्धकार का अभाव हो परमपद को जानकर मुक्त होता है । प्राण अपान की युक्ति जाने से तम नष्ट हो जाता है । हे मुनीश्वर! प्राण अपानरूपी जो चन्द्रमा और सूर्य हैं सो यत्न बिना उदय और अस्त होते हैं । जब प्राणरूपी सूर्य हृदयकोट से उपजकर बाहर जाता है तब उसी क्षण अपानरूपी चन्द्रमा में लीन होता है और अपानरूपी चन्द्रमा उदय हो जाता है और जब अपानरूपी चन्द्रमा हृदयकोट के प्राण वायुरूपी सूर्य में स्थित होता है तब उसी क्षण में प्राणरूपी सूर्य उदय होता है । प्राण के अस्त हुए अपान उदय होता है और अपान के अस्त हुए प्राण उदय होता है । जैसे छाया के अस्त हुए धूप उदय होती है और धूप के अस्त हुए छाया उदय होती है तैसे ही प्राण अपान की गति है । हे मुनीश्वर! जब हृदयकोट से प्राण उदय होता है तब प्राण का रेचक होने लगता है । और अपान का पूरक होने लगता है और जब प्राण अपान में स्थित हुआ तब अपान का कुम्भक होता है । उस कुम्भक में जब स्थिति होती है तब फिर तीनों तापों से नहीं तपता । जब अपान का रेचक होता है तब प्राण का पूरक होने लगता है और जब अपान जा स्थित होता है तब प्राण का कुम्भक होता है । उसमें जब स्थित होता है तब भी तीन तापों से तपायमान नहीं होता । हे मुनीश्वर! प्राण अपान के भीतर जो शान्तरूप आत्मतत्त्व है उसमें जब स्थित होती है तब मन तपायमान नहीं होता और जब अपान आ स्थित होता है और प्राणउदय नहीं हुआ उस अवस्था में जो साक्षीभूत सत्ता है वह आत्मतत्त्व है । उसमें जब स्थिति होती है तब फिर वह कठिन नहीं होता । जब अपान के स्थान में प्राण जा स्थित होता है और अपान जबतक उदय नहीं हुआ वहाँ जो देश काल अवस्था है उसमें मन स्थित होता है तब मन का मनत्वभाव जाता है और फिर नहीं उपजता । हे मुनीश्वर! प्राण जो अपान में स्थित हुआ और अपान उदय नहीं हुआ वह कुम्भक है । अपान प्राण में स्थित भया और प्राण जबतक उदय नहीं हुआ उस कुम्भक में जो शान्त तत्त्व है वह आत्मा का स्वरूप है और शुद्ध और परम चैतन्य है । जो उसको प्राप्त होता है वह फिर शोकवान् नहीं होता । जैसे पुष्प में गन्ध से प्रयोजन होता है तैसे ही प्राण अपान के भीतर जो अनुभव तत्त्व स्थित है उससे प्रयोजन है । वह न प्राण है न अपान है, उस अनुभव आत्मतत्त्व की हम उपासना करते हैं । प्राण अपान कोट क्षय को प्राप्त होता है और अपान प्राण कोट में क्षय होता है, उस प्राण–अपान के मध्य में जो चिदात्मा है उसकी हम उपासना करते हैं । हे मुनीश्वर! जो प्राण का प्राण है, अपान का अपान है जीव का जीव है और देह का आधारभूत है ऐसे चिदात्मा की हम उपासना करते हैं । जिसमें सर्व है, जिससे यह सर्व है और जो यह सर्व है, ऐसा जो चिदात्मा है उसकी हम उपासना करते हैं । जो सर्वप्रकाश का प्रकाश है, सब पावन का पावन है और सब भाव अभाव पदार्थों का अपना आप है– उस चिदात्मा की हम उपासना करते हैं । जो पवन परस्पर हृदय में संपुटरूप है उसमें जो साक्षी रूप और भीतर बाहर सब ठौर वही है, उस चिदात्मा की हम उपासना करते हैं । जब अपान अस्त हुआ और प्राण नहीं उपजा उस क्षण में जो कलंक से रहित है उस चैतन्यतत्त्व की हम उपासना करते हैं । जब प्राण अस्त हुआ और उसमें जो सत्यता है उस चिद्सत्ता की हम उपासना करते हैं । जब प्राण अस्त हुआ और अपमान नहीं उपजा ऐसा जो नासिका के अग्र में शुद्ध आकाश है और उसमें जो सत्यता है उस चिद्सत्ता की हम उपासना करते हैं । जो प्राण अपान के उत्पत्ति का स्थान, भीतर बाहर सब ओर से

www.tantrik-astrologer.in

व्याप्त और सब योग कला का आधारभूत है उस चिद्तत्त्व की हम उपासना करते हैं । जो प्राण अपान के रथ पर आरूढ़ है और शक्ति का शक्तिरूप है उस चिद्तत्त्व की हम उपासना करते हैं । हे मुनिश्वर! जो संपूर्ण कला कलंक से रहित और सर्वकला जिसके आश्रय हैं ऐसा जो अनुभवतत्त्व है और सब देवता जिसकी शरण को प्राप्त होते हैं उस आत्मतत्त्व की हम उपासना करते हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्ड्युपाख्याने समाधि वर्णनन्नाम एकविंशतितमस्सर्गः ||21||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

चिरञ्जीविहेतुकथन

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैं प्राणसमाधि को प्राप्त हुआ हूँ और इस क्रम से मैं आत्मपद को प्राप्त हुआ हूँ । इसी निर्मल दृष्टि का आश्रय करके स्थित हूँ और एक निमेष भी चलायमान नहीं होता । सुमेरु पर्वत की नाईं स्थित हूँ और चलता हुआ भी स्थित हूँ, जाग्रत में सुषुप्ति स्वप्न में स्थित हूँ और सर्वदा आत्मसमाधि में लगा रहता हूँ, विक्षेप कदाचित् नहीं होता । हे मुनीश्वर! नित्य अनित्य भाव से जो जगत् स्थित है उसको त्यागकर मैं अन्तर्मुख अपने आपमें स्थित हूँ और प्राण अपान की कला जो तुम्हारे विद्यमान कही है उसका सदा ऐसे ही प्रवाह चला जाता है उसमें मेरी अयत्न समाधि है इससे मैं सदा सुखी रहता हूँ कुछ कष्ट नहीं होता । जिसको यह कला नहीं प्राप्त हुई वह कष्ट पाता है । हे मुनीश्वर! अज्ञानी जीव महाप्रलय पर्यन्त संसार समुद्र में डूबते हैं और निकलकर फिर डूबते और इसी प्रकार गोते खाते हैं । और जिन पुरुषों ने पुरुषार्थ करके आत्मपद पाया है वे सुख से बिचरते हैं । हे मुनीश्वर! भूतकाल की मुझको चिन्ता नहीं और भविष्य की इच्छा नहीं, वर्तमान में यथा प्राप्त राग द्वेष से रहित होकर, विचरता हूँ । मैं सुषुप्ति की नाईं स्थित हूँ इससे केवल स्वरूप में भाव अभाव पदार्थों से रहित हूँ और इस कारण चिरंजीवी हो दुःख से रहित हूँ । प्राण अपान की कला को शम करके स्वरूप में स्थित हूँ । आज यह कुछ पाया है और कल यह पाऊँगा यह चिन्ता मेरी दूर हो गई है, इस कारण निर्दुःख जीता हूँ न किसी की प्रशंसा करता हूँ और न कदाचित् निन्दा करता हूँ, सब आत्मस्वरूप देखता हूँ इस कारण सुखी जीता हूँ । इष्ट की प्राप्ति में हर्षवान् नहीं और अनिष्ट की प्राप्ति में शोकवान् नहीं होता मैंने परम त्याग किया है सर्व आत्मभाव देखता हूँ और जीवभाव दूर हो गया है इस कारण अदुःख जीता हूँ । हे मुनीश्वर । मेरे मन की चपलता मिट गई है और राग द्वेष दूर हो गये हैं । मन शान्त हुआ है । इस कारण अरोग जीता हूँ, काष्ठ, सुन्दर स्त्री, पहाड़, तृण, अग्नि और सुवर्ण को सम देखता हूँ । हे मुनीश्वर! मैं जरामरण के दुःख और राजलाभ के सुख और शोक से रहित समभाव में स्थित हूँ और निर्दुःख जीता हूँ ये मेरे बान्धव हैं ये अन्य हैं । यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह सब कलना मुझको कुछ नहीं इसी से सुखी जीता हूँ और आहार व्यवहार करता, बैठता, चलता, सूँघता, स्पर्श करता और श्वास लेता हूँ परन्तु यह जो अभिमान है कि मैं `देह हूँ,' इस अभिमान से रहित हो सुखी जीता हूँ इस संसार की ओर से मैं सुषुप्त रूप हूँ और इस संसार की गति को देखकर हँसता हूँ कि वास्तव मे यह है नहीं आश्चर्य है,इस कारण निर्दुःख जीता हूँ । हे मुनीश्वर! मैं सर्वदा काल, सर्वप्रकार पदार्थों में समबुद्धि हूँ और विषमता मुझको कुछ नहीं भासती, न किसी से सुखी होता हूँ और न दुःखी हूँ-जैसे हाथ फैलाइये तो भी शरीर है और संकोचिये तो भी शरीर है इसी प्रकार मैंने सर्वात्मा आपको जाना है इससे मुझको कोई दुःख नहीं । मेरी बोली और निश्चय स्निग्ध और कोमल सबको हृदयगम्य है । सर्वत्र मैं जो ऐसे देखता हूँ इस कारण निर्दुःख जीता हूँ । चरण से मस्तक पर्यन्त देह में मुझको ममता नहीं और अहंकाररूपी कीचड़ से मैं निकला हूँ इस कारण अरोग जीता हूँ । कार्यकर्त्ता और भोजनकर्त्ता भी दृष्ट आता हूँ परन्तु मेरे मन में निष्कर्मता दृढ़ है । हे मुनीश्वर! सामर्थ्य करके कार्य करूँ तो भी मुझको अभिमान नहीं और दरिद्री होऊँ तो भी संपत्ति और सुख की इच्छा नहीं अर्थात् किसी में आसक्त नहीं होता । इस असत्यरूप शरीर के नाश हुए अभिमान नष्ट नहीं होता । भूतों का समूह सब असत्यरूप है और आत्मा सत्यरूप है, ऐसे जानकर मैं स्थित हूँ और आशारूपी फाँसी से मेरे मुक्तचित्त की वृत्ति समाहित हुई है और अनात्म में आत्म अभिमान की वृत्ति नहीं फुरती । हे मुनीश्वर! मैंने जगत् को असत्य जाना है और आत्मा को सत्य

www.tantrik-astrologer.in

और हाथ में बिल्वफलवत् प्रत्यक्ष जाना है । इस जगत् में मैं सुषुप्त हूँ । सुख को पाकर मैं सुखी नहीं होता और दुःख को पाकर दुःखी नहीं होता । सबका मैं परम मित्र हूँ इस कारण मैं निर्दुःख जीता हूँ, आपदा में अचलचित्त हूँ, संपदा में सब जगत का मित्र हूँ और भाव अभाव से ज्यों हूँ इस कारण सदासुखी जीता हूँ । न मैं परिछिन्न अहं हूँ, न कोई अन्य है, न कोई मेरा है और न मैं किसी का हूँ, यह भावना मेरे चित्त में दृढ़ है । मैं जगत् हूँ, और मैं ही आकाश, देश, काल, क्रिया, सब हूँ, यह निश्चय मुझको दृढ़ है । घट भी चैतन्य है, पट भी चैतन्य है, रथ भी चैतन्य है और यह सब चैतन्य तत्त्व है, यह निश्चय मुझको दृढ़ है इस कारण अदुःख जीता हूँ । हे मुनि शार्दूल! यह सब जो मैंने तुमसे कहा भुशुण्डि नाम काक ने जो त्रिलोकीरूपी कमल का भँवरा है मुझसे कहा था ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुड्यु पाख्याने चिरञ्जीविहेतुकथनन्नाम द्वाविंशतितमस्सर्गः ||22||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

भुशुण्ड्यु पाख्यानसमाप्ति

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! जैसा मैं हूँ तैसा तुम्हारी आज्ञा के सिद्धि अर्थ कहा है नहीं तो गुरु के आगे कहना भी ढिठाई है। तुम ज्ञान के पारगामी हो। फिर मैं बोला, हे भगवन्! आश्चर्य है और आश्चर्य से भी आश्चर्य है कि तुमने श्रवण का भूषण कहा और आत्म उदितरूप वचन जो तुमने कहे हैं वे परम विस्मय के कारण हैं। हे भगवन्! तुम धन्य हो। तुम महात्मा पुरुष हो और चिरंजीवियों के मध्य तुम मुझको साक्षात् दूसरे ब्रह्मा भासते हो। आज हम भी धन्य है जैसे मैंने पूछा तैसे ही तुमने कहा। हे साधो! मैंने सब भूमिलोक देखे हैं और दिशागण, आकाश और पाताललोक भी देखे हैं, त्रिलोकी में तुमसा कोई बिरला ही है। जैसे बाँस बहुत हैं पर मोतीवाला बिरला ही होता है तैसे ही तुम सरिखे बिरले हैं। हे साधो! आज हम पुण्यरूप हुए हैं और आज हमारी देह पवित्र हुई जो तुम जैसे मुक्तआत्मा का दर्शन हुआ है। हे साधो अब हम सप्तर्षियों के मध्य जाते हैं, हमारे मध्याह्न का समय हुआ है। जब मैंने ऐसे कहा तब भुशुण्डि कल्पलता से उठ खड़ा हुआ और संकल्प के हाथ करके उसने सुवर्ण का पात्र रच कर मोती और रत्नों से भरा और मुझको अर्ध्यपाद्य करके पूजन किया। जैसे सदाशिव की पूजा करते हैं तैसे ही उसने चरणों से लेकर मस्तक पर्यन्त मेरा पूजन किया और बहुत नम्र होकर प्रणाम किया। मैंने भी उसको प्रणाम किया और इस प्रकार परस्पर नमस्कार करके मैं वहाँ से उठ खड़ा हुआ और आकाशमार्ग को चला। जैसे पक्षी उड़ता है तैसे ही मैं उड़ा और वह भी मेरे साथ उड़ा। परस्पर हम दोनों हाथ ग्रहण किये जब एक योजन पर्यन्त चले गये तब मैंने उससे कहा, हे साधो! तुम अब यहाँ से फिरो। इस प्रकार बारम्बार कहकर मैंने उसको ठहराया और मैं चला गया। जबतक मैं उसको दृष्टि आता रहा तबतक वह देखता रहा और जब मैं न दीखा तब वह अपने स्थान में जा बैठा। मैं सप्तर्षियों के मण्डल में जा पहुँचा और अरुन्धती से पूजित हुआ। हे रामजी! भुशुण्डि के आश्चर्यरूप वचन मैंने तुमको सुनाये हैं। अब भी सुमेरु के श्रृंग पर उस कल्पवृक्ष की लता में वह कल्याणरूप सम स्थित है और शान्तिरूप और मान करने के योग्य है और सदा समाधिमान् है। हे रामजी! यह हमारा और उसका समागम सतयुग के दो सौ वर्ष व्यतीत हुए हुआ था और सतयुग क्षीण हो त्रेतायुग बर्तता है उसमें तुम अपजे हो। हे रामजी! अभी आठ वर्ष बीते हैं कि हमारा उसका फिर मिलाप हुआ था तो वह उसी वृक्ष लता पर है। हे रामजी! यह इतिहास जो मैंने तुमसे कहा है सो परम उत्तम है। जब इसको विचारोगे तब संसारभ्रम निवृत्त हो जावेगा। मुनि वशिष्ठ और भुशुण्डि की कथा को जो निर्मलबुद्धि से विचारेगा वह भवरूप संसार के भय से तरेगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्ड्यु पाख्यानसमाप्तिर्नाम त्रयोविंशतितमस्सर्गः ॥23॥

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

परमार्थयोगोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे अनघ! यह जो मैंने तुमसे भुशुण्डि का वृत्तान्त कहा इसे बोध करके भुशुण्डि महासंकट से तरा है, इस दशा को तुम भी आश्रय करके प्राणों की युक्ति से अभ्यास करो तब तुम भी भुशुण्डि की नाईं भवसमुद्र के पार होगे। जैसे भुशुण्डि ने ज्ञानयोग से पाने के योग्य पद पाया है तैसे ही तुम भी पावो और जैसे प्राण अपान के अभ्यास से भुशुण्डि परमतत्त्व को प्राप्त हुआ है तैसे ही तुम भी अभ्यास करके प्राप्त हो। विज्ञानदृष्टि जो तुमने सुनी है उसकी ओर चित्त को लगाकर आत्मपद को पावो फिर जैसे इच्छा हो तैसे करो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! पृथ्वी में आपके ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों के प्रकाश से मेरे हृदय से अज्ञानरूपी तम दूर हो गया है और अब प्रबुद्ध होकर अपने आनन्दरूप में स्थित हुआ हूँ और जानने योग्य पद को जानता हूँ-मानो दूसरा वशिष्ठ हुआ हुआ। हे भगवन्! यह जो भुशुण्डि का चरित्र आपने परमार्थबोध के निमित्त कहा है उसमें रक्त माँस और अस्थि का शरीररूपी गृह किसने रचा है, कहाँ से उपजा है, कैसे स्थित हुआ है और कौन इसमें स्थित है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! परमार्थतत्त्व के बोध और दुःख के निवृत्ति के अर्थ ये मेरे वचन हैं सो सुनो! अस्थि इस शरीररूपी गृह का थम्भा है और उसके नव द्वार हैं, रक्त माँस से जो यह लेपन किया है सो किसी ने बनाया नहीं आभासमात्र है और मिथ्या भ्रम से भासता है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासता है तैसे ही असत्य रूप शरीर भी भ्रम से भासता है। हे रामजी! जबतक अज्ञान है तबतक देह सत्य भासता है और जब ज्ञान होता है तब देह असत्य भासता है- जैसे स्वप्नकाल में स्वप्न के पदार्थ सत्य भासते हैं और जाग्रत काल में स्वप्न असत्य भासता है तैसे ही अज्ञानकाल में अज्ञान के देहादिक पदार्थ सत्य भासते हैं और ज्ञानकाल में असत्य हो जाते हैं। जैसे जल में बुद्बुदा जल के अज्ञान से सत्य भासता है और जल के जाने से असत्य भासता है, और सूर्य की किरणों में मरुस्थल में नदी भासती है, तैसे ही आत्मा में देह भासती है। हे रामजी! जो कुछ जगत् भासता है वह सब आभासमात्र अज्ञान से भासता है और `अहं' `त्वं' आदिक कल्पना सब मनोमात्र मन में फुरती हैं। तुम जो कहते हो कि देह अस्थि और माँस का गृह रचा है सो अस्थि माँस से नहीं रचा संकल्पमात्र है, संकल्प से भासता है और संकल्प के अभाव हुए देह नहीं पाया जाता। हे रामजी! स्वप्न में जो देह धरकर दिशा, तट, पर्वत इत्यादि तुम देखते फिरते हो जाग्रत में तुम्हारा वह देह कहाँ जाता है? जो देह सत्य होता तो जाग्रत मेंभी रहता और मनोराज से स्वर्ग को जाता है तथा सुमेरु और भूमिलोक में फिरता है। हे रामजी! इन स्थानों में जैसे मन का फुरना देह होकर भासता है सो असत्यरूप है तैसे ही यह शरीर मन के फुरनेमात्र है इससे असत्य जानो। यह मेरा धन है, यह मेरा देह है, यह मेरा देश है इत्यादिक कल्पना मन की रची हुई है-सबका बीज चित्त ही है। हे रामजी! जगत् को दीर्घकाल का स्वप्न जानो वा दीर्घ चित्त का भ्रम जानो अथवा दीर्घ मनोराज जानो, वास्तव में जगत् कुछ नहीं। जब अपने वास्तव परमात्मास्वरूप को अभ्यास करके जानता है तब जगत् असत्यरूप भासता है। हे रामजी! मैंने पूर्व भी तुमको ब्रह्माजी के वचनों से कहा है कि सब जगत् मन का रचा हुआ है-इससे संकल्पमात्र है। चिरकाल का जो अभ्यास हो रहा है इससे सत् भासता है, जब दृढ़ पुरुष प्रयत्न से आत्म अभ्यास हो तब असत्य भासेगा। हे रामजी! जो भावना हृदय में दृढ़ होती है उसका अभाव भी सुगम नहीं होता पर जब उसके विपर्यय भावना का अभ्यास करिये तब उसका अभाव हो जाता है। यह मैं हूँ यह और है इत्यादिक कलना जो हृदय में दृढ़ हो रही है जब इसके विपर्यय आत्मभावना हो तब वह मिटे और सर्व आत्मा ही भासे। हे रामजी! जिसकी तीव्र भावना होती है

www.tantrik-astrologer.in

वही रूप उसका हो जाता है–जैसे कामी पुरुष को सुन्दर स्त्री की कामना रहती है तैसे ही जीव को जब आत्मपद की चिन्ता रहे तब भी वही रूप होता है । जैसे कीटभृंगी हो जाता है और जैसे दिन में व्यापार का अभ्यास होता है तो रात्रि को स्वप्न में भी वही देखता है, तैसे ही जिसका जीव को दृढ़ अभ्यास होता है वही अनुभव होता है । जैसे सूर्य आकाश में तपता है और मरुस्थल में जल होकर भासता है पर वहाँ जल का अभाव है तैसे ही भाव से रहित पृथ्वी आदिक पदार्थ भ्रम से भावरूप भासते हैं । जैसे दृष्टि दोष से आकाश में तरुवरे मोरपुच्छवत् भासते हैं तैसे ही अज्ञान से जगज्जाल भासते हैं । हे रामजी! यह जगत् सब आभासरूप है स्वरूप के प्रमाद से भय और दुःख को प्राप्त होता है पर जब स्वरूप को जानता है तब भ्रम, भय और दुःख से रहित होता है । जैसे स्वप्नपुर में चित्त के भ्रम से सिंहों से भय पाता है और जब जाग्रत स्वरूप में चित्त आता है तब सिंह का भय निवृत्त हो जाता है, तैसे ही आत्मज्ञान से निर्भय होता हे । जब वैराग अभ्यास करके जीव निर्मल आत्मपद को प्राप्त होता है तब फिर क्षोभ को नहीं प्राप्त होता और रागद्वेषरूपी मल उसको नहीं स्पर्श करता । जैसे ताँबा जब पारस के स्पर्श से सुवर्ण होता है तब वह ताँबे भाव को नहीं ग्रहण करता, तैसे ही जीव फिर मलिन नहीं होता । अहं, त्वं आदिक जो कुछ जगत् भासता है वह सब आभासमात्र ही है । हे रामजी! प्रथम सत्य असत्य को जानकर असत्य का निरादर करो और सत्य का अभ्यास करो तब चित्त सर्वकलना से रहित होकर शान्तपद को प्राप्त होता है ।जिस तत्त्वज्ञान से सम्यक दर्शी हुआ है उसको जगत् के इष्ट पदार्थ पाये से हर्ष नहीं होता और अनिष्ट के पाये से शोक नहीं होता, वह न किसी की स्तुति करता है, न किसी की निन्दा करता है और हृदय में शीतल और शान्तरूप हो जाता है । जब कोई बान्धव मृतक हो तब उससे तपायमान क्यों होता है वह तो अवश्य ही मरता । जब अपनी मृत्यु आवे तब अवश्य शरीर छूटता है वृथा क्यों तपायमान होता है । जब सम्पदा प्राप्त होतो उससे हर्षवान् नहीं होता, क्योंकि जो कुछ भोगना था सो भोगा हर्ष किससे हुआ? दुःख आन प्राप्त हो तब शोक क्यों करना शरीर का व्यवहार सुख दुःख आता जाता है और अमिट है और जब अपना किया कर्म उदय होता है तब भी शोक क्यों करता है? हे रामजी! जो सत्य है वह असत्य नहीं और जो असत्य है सो सत्य नहीं फिर रागद्वेष किस निमित्त करना? जिसको ऐसा निश्चय हुआ है कि न मैं हूँ, न जगत् है और न पृथ्वी है तो वह शोक किसका करे और जब देह अन्य है और मैं चैत्य हूँ तो चैत्य हूँ तो चैतन्य का तो नाश नहीं होता तब शोक किसका करना? हे रामजी! दुःख तो किसी प्रकार नहीं है पर जबतक विचार नहीं है पर जबतक विचार नहीं तबतक दुःख होता है और विचार किये से दुःख कोई रहता । सम्यक्‌्दर्शी जो मुनीश्वर है वह सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जानता है इस कारण दुःख नहीं पाता और जो असम्यक्‌्दर्शी है वह अज्ञान से दुःख पाता है । जैसे दिन के अन्त मण्डल शीतल हो जाता है तैसे ही सम्यक्‌्दर्शी का हृदय शीतल होता है । जिसको कर्तव्य में कर्तृत्व का अभिमान नहीं है वही सम्यक्‌्दर्शी है । हे रामजी! जितने जगत् के पदार्थ हैं उनको हृदय से आभासमात्र जानो और बाहर जैसे आचार हो तैसे करो अथवा उसका भी त्याग करो और निराभास होकर स्थित होओ । मैं चिदाकाश, नित्य, सर्वज्ञ और सबसे रहित हूँ , ऐसा अभ्यास करके एकान्त और निर्मल आपको देखोगे । अथवा ऐसी धारणा करो कि न मैं हूँ, न यह भोग है, न अर्थरूप जगत आडम्बर है, अथवा ऐसे धारो कि मैं ही नित्य शुद्ध, चिदात्मा और आकाशरूप सब कुछ हूँ, मेरे से कुछ भिन्न नहीं और मैं अपने आपमें स्थित हूँ । इन दोनों पक्षों में जो इच्छा हो सो ग्रहण करो तो तुमको सिद्धता का कारण होगा । जगत् को आभासमात्र जानो परन्तु यह भी कलंकरूप है इस चिन्तना को भी त्यागकर निराभास हो । तुमचिदाकाश, नित्य, सर्वव्यापी और सबसे रहित हो ,आभास को त्यागकर निर्मल अद्वैत हो रहे

www.tantrikastrologer.in

अथवा विधि निषेध दोनों दृष्टियों का आश्रय करो । हे रामजी! क्रिया को करो परन्तु रागद्वेष से रहित हो । जब रागद्वेष से रहित होगे तब उत्तम पदार्थ ब्रह्मानन्द को प्राप्त होगे । और जो सर्व का अधिष्ठान है उसको पावोगे । हे रामजी! जिसका हृदय रागद्वेषरूपी अग्नि से जलता है उसको सन्तोष, वैराग आदिक गुण नहीं प्राप्त होते । जैसे दग्ध भूतल के वन में हरिण प्रवेश नहीं करते तैसे ही रागद्वेषादिकवाले हृदय में सन्तोषादिक नहीं प्रवेश करते । हे रामजी! हृदयरूपी कल्पतरु है । ऐसा वृक्ष जो रागद्वेषादिक सर्पों से रहित है उससे कौन पदार्थ है जो प्राप्त न हो-शुद्ध हृदय से सब कुछ प्राप्त होता है । हे रामजी! जो बुद्धिमान भी है और शास्त्र का ज्ञाता भी है परन्तु रागद्वेष संयुक्त है वह सियार की नाईं नीच है और उसको धिक्कार है । जिन पदार्थों के पाने के निर्मित्त लोग यत्न करते हैं वे तो आते जाते हैं । धन को इकट्ठा कोई करता है और कोई ले जाता है तब रागद्वेष किसका करिये? जो कुछ प्रारब्ध है सो अवश्य होता है, धन का व्यर्थ यत्न क्या करिये? बान्धव और वस्त्र आते हैं फिर जाते भी हैं । जैसे समुद्र में झष का आश्रय बुद्धिमान नहीं लेते तैसे ही जगत् के पदार्थों का आश्रय ज्ञानवान् नहीं लेते । भाव अभावरूप परमेश्वर की माया है और संसार की रचना स्वप्न की नाईं है, उनमें जो आसक्त होते हैं उनको वे सर्पिणी वत् डसते हैं । धन, बान्धव और जगत् वास्तव में मिथ्या ही हैं अज्ञान से सत्य भासते हैं । हे रामजी! जो आदि न हो और अन्त भी न रहे पर मध्य में भासे उसको भी असत्य जानिये । जैसे आकाश में फूल असत्य हैं तैसे ही संसार-रचना असत्य है और जैसे संकल्प रचना असत्य है, जैसे गन्धर्वनगर सुन्दर भासता है पर नष्ट हो जाता है और जैसे स्वप्न पुर दीर्घकाल को भासता है पर भ्रमरूप है, तैसे ही यह जगत् असत्यरूप और भ्रममात्र है केवल संकल्परूप अभ्यास के वश से दृढ़ता को प्राप्त हुआ है । दीवार जो आकारवान् भासती है सो आकार से रहित प्रकाशरूप है और आत्मपद सुषुप्ति की नाईं अद्वैतरूप है । उस सुषुप्तिरूप पद से जब गिरता है तब दीर्घ स्वप्न को देखता है । हे रामजी! अज्ञान रूपी निद्रा में जो अपने स्वभाव से गिरा है वह संसाररूपी स्वप्न को देखता है । जब अज्ञानरूपी निद्रा का अभाव हो तब अपने आत्मराज और निर्विकल्प मुदित आत्मपद को प्राप्त होता है । जैसे सूर्य को देखकर कमल प्रफुल्लित होते हैं तैसे ही ज्ञान से शुभगुण फूलते हैं । आत्मरूपी सूर्य सब दुःख से रहित है । जो पुरुष निद्रा में होता है वह सूक्ष्म वचनों से नहीं जागता पर बड़े शब्द करने और जल डालने से जागता है सो मैंने तुम पर मेघ की नाईं गर्जकर वचनरूपी जल की वर्षा की है और ज्ञानरूपी शीतलता सहित ये वचन हैं उनसे अब तुम ज्ञानरूपी जाग्रत बोध को प्राप्त हुए । ऐसे ज्ञानरूपी सूर्य से जगत् को भ्रमरूप देखोगे । हे रामजी! तुमको न जन्म है, न मृत्यु है, न कोई दुःख है, न भ्रम है, सर्वकल्पों से रहित आत्मपुरुष अपने आपमें स्थित हो और तुम्हारी वृत्ति सम, शान्त और सुषुप्ति की नाईं है और अति विस्तृत, सम और शुद्ध अपने स्वरूप में स्थित हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशोनाम चतुर्विंशतितमस्सर्गः ।।24।।

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

देहसत्ताविचार

इतना कहकर, वाल्मीकिजी बोले कि इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने वचन कहे तब रामजी सम, शान्त और चेतनतत्त्व में विश्राम पाकर परमानन्द को प्राप्त हुए और समस्त सभा जो बैठी थी वह भी वशिष्ठजी के वचन सुनकर सम और आत्मसमाधि में स्थित हो रही और बोलने का व्यवहार शान्त हो गया । पिंजरे में जो पक्षी बोलते थे वे भी शान्त हो गये, वन के जो वानर थे वे भी वचन सुनकर स्थित हो रहे और सर्व ओर से शान्ति हो गई । जैसे अर्धरात्रि के समय भूमि शान्त हो जाती है तैसे ही सभा के लोग तूष्णीम् हो रहे और वचनों को विचारने लगे कि क्या उपदेश मुनीश्वर ने किया है । एक घड़ी पर्यन्त शान्ति रही उसके अनन्तर फिर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब तुम सम्यक् प्रबुद्ध हुए हो और अपने आप में स्थित हुए हो जो कुछ जाना है उसके अभ्यास का त्याग न करना इसी में दृढ़ रहना । हे रामजी! संसाररूपी चक्र का नाभिस्थान चित्त है । उस चित्त नाभि के स्थिर हुए संसारचक्र भी स्थिर हो जाता है । इस संसाररूपी चक्र का बड़ा तीक्ष्ण वेग है, यद्यपि रोकते हैं तो भी फुरने लगता है, इससे दृढ़ प्रयत्न करके इसको रोकिये । सन्तों के संग और सत््शास्त्रों के वचन युक्तबुद्धि से रुकता है । हे रामजी! अज्ञान से जो दैव कल्पा है उसको त्यागकर अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो, इससे परमशान्तपद प्राप्त होता है । ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यन्त जो सब अज्ञानरूपी है सो असत्यरूप है और भ्रम से सत्य की नाईं भासता है इसको त्याग करो । हे रामजी! असत्यरूप पदार्थों में जो रागद्वेष करते हैं वे मूर्ख हैं उनसे तो चित्र का पुरुष भी श्रेष्ठ है । जब इष्टविषय प्राप्त होता है तब वे हर्ष से प्रफुल्लित होते और अनिष्ट की प्राप्ति से द्वेष करते हैं पर चित्र के पुरुष को रागद्वेष किसी में नहीं होता इस कारण मैं कहता हूँ कि चित्र का पुरुष भी इनसे श्रेष्ठ है । ये आधि व्याधि से जलते हैं पर वह सदा ज्यों का त्यों है । चित्र का पुरुष तब नाश हो जब आधारभूत को नाश करिये, अधिष्ठान के नाश बिना उसका नाश नहीं होता और मनुष्य अविनाश के आधार है उसका नाश नहीं होता पर मूर्खता से आपको नाश होते मानते हैं और रागद्वेष से संयुक्त हैं इससे चित्र के पुरुष से भी तुच्छ हैं । मनोराज संकल्परूप देह भी इस देह से श्रेष्ठ है, क्योंकि जो कुछ दुःख इसको होते हैं वे बड़े कालपर्यन्त रहते हैं पर मनोराज का दुःख और संकल्प के आये से अभाव हो जाता है इससे थोड़ा है । संकल्पदेह से भी स्थूलदेह तुच्छ है । हे रामजी! जो थोड़े काल से देह हुई है उसमें दुःख भी थोड़ा है और जो दीर्घ संकल्परूपी देह है वह दीर्घः दुःख को ग्रहण करती है इससे महा नीच है । हे रामजी! यह देह भी संकल्पमात्र है न सत्य है, न असत्य है, उसके भोग के निमित्त मूर्ख यत्न करते हैं और क्लेश पाते हैं । देह अभिमान करके इसके सुख से वे सुखी होते हैं और दुःख से दुःखी होते हैं और इसके नष्ट हुए आपको नष्ट हुआ मानते हैं । जैसे मनोराज के नाश हुए चन्द्रमा का नाश नहीं होता तैसे ही इस देह के नाश हुए देही पुरुष का नाश नहीं होता जैसे संकल्प पुरुष के नाश हुए पुरुष का नाश नहीं होता और जैसे स्वप्नभ्रम के नाश हुए पुरुष का नाश होता, तैसे ही देह के नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता । जैसे घन धूप के कारण रेणु में जल भासता है और भली प्रकार जा देखिये तब जल का अभाव हो जाता है परन्तु देखनेवाले का अभाव नहीं होता, तैसे ही संकल्प से रचा विनाशरूप जो देह है उसके नाश हुए तुम्हारा नाश तो नहीं होता । हे रामजी! दीर्घकाल का रचा जो स्वप्नमय देह है उसके दुःख और नाश से आत्मा को दुःख और नाश नहीं होता । चैतन्य आत्मसत्ता नष्ट नहीं होती और स्वरूप से चलायमान भी नहीं होती, न विकार को प्राप्त होती है, वह तो सर्वदा शुद्ध और अच्युतरूप अपने आप में स्थित है और देह के नाश हुए उसका नाश नहीं होता । अज्ञान के दृढ़

www.tantrikastrologer.in

अभ्यास से देह के धर्म अपने में भासते लगे हैं, जब आत्मा का दृढ़ अभ्यास हो तो देहाभिमान और देह के धर्मों का अभाव हो जावे । जैसे कोई चक्र पर चढ़कर भ्रमता है तो उतरने पर कुछ काल भ्रमता भासता है पर जब चिरकाल व्यतीत होता हे तब स्थित हो जाता है, इसी प्रकार देह रूपी चक्र को प्राप्त हुआ और अज्ञान से भ्रमा हुआ आपको भ्रमता देखता है और जब अज्ञान का वेग निवृत्त होता है तब भी कोई काल देहभ्रम भासता है जिससे जानता है कि मेरा नाश होता है, मुझको दुःख होता है इत्यादिक । यह कल्पना अज्ञान से भासती है पर जब उस भ्रमदृष्टि को धैर्य से निवृत्त करते हैं तब अभाव हो जाती है । हे रामजी! जैसे भ्रम से रस्सी में सर्प भासता है तैसे ही आत्मा में देह भासती है सो असत्य और जड़ है, न कर्म करती है और न मुक्त होने की इच्छा करती है । दैव परमात्मा भी कुछ नही करता, वह सदा शुद्ध, दृष्टा और प्रकाशक है । जैसे निर्वात् द्वीप अपने आप स्थित होता है तैसे ही तुम भी शुद्ध स्वरूप अपने आपमें स्थित हो । जैसे सूर्य आकाश में स्थित होता है पर सर्व जगत् को प्रकाश करता है और उसके आश्रय लोग चेष्टा करते हैं परन्तु सूर्य कुछ नहीं करता वह केवल सबका साक्षीभूत है तैसे ही आत्मा के आश्रय देहा दिक की चेष्टा होती है परन्तु आत्मा साक्षीरूप है और पापपुण्य से रहित है । हे राम जी! इस देहरूपी शून्य गृह में अहंकाररूपी पिशाच कल्पित है जैसे बालक परछाहीं में वैताल कल्प के भय पाता है तैसे ही अहंकाररूपी पिशाच कल्पकर जीव भय पाता है । वह अहंकाररूपी पिशाच महानीच है और सब सन्तजनों से निन्ध है । जब अहंकाररूपी वैताल निकले तब आनन्द हो । देहरूपी शून्य गृह में इसका निवास है, जो पुरुष इसका टहलुआ हो रहा है उसको यह नरक में ले जाता है इससे तुम टहलुआ न होना । जब इसके नाश का उपाय करोगे तब आनन्द पावोगे । हे रामजी! यह चित्तरूपी उन्मत्त वैताल जिसको स्पर्श करता है उसको अशुद्ध करता है अर्थात् उसका धैर्य और निश्चय विपर्यय करके उसे दुःख देता है और निज स्वरूप से गिरा देता है । जो बड़े बड़े साधु महन्त हैं वे भी इसके भय से समाधि में स्थित होते हैं कि किसी प्रकार अहंकार का अभाव हो । हे रामजी! अहंकाररूपी पिशाच जिसको स्पर्श करता है उसको आप-सा कर लेता है । यह जैसे आप तुच्छ है तैसे ही और को भी तुच्छ करता है । जहाँ सत्संग सत्शास्त्र का विचार और आत्मज्ञान का निवास नहीं होता उस शून्य और उजाड़रूपी देहमन्दिर में यह रहता है और जो कोई ऐसे स्थान में प्रवेश करता है उसमें प्रवेश कर जाता है । हे रामजी! जिसको अहंकाररूपी पिशाच लगा है उसका धन से कल्याण नहीं होता और न मित्र बान्धव से कल्याण होता है । अहंकार पिशाच से मिला हुआ जो कुछ क्रिया कर्म वह करता है सो अपने नाश के निमित्त करता है और बिष की बेलि को उपजाता और बढ़ता है । हे रामजी! जो पुरुष विवेक और धैर्य से रहित है उसको अहंकाररूपी पिशाच शीघ्र ही खा जाता है । वह सर्वरूप है और जिसको स्पर्श करता है उसको शव कर छोड़ता है । जिसको अहंकाररूपी पिशाच लगा है वह नरक रूपी अग्नि में काष्ठ की नाईं जलेगा । अहंकाररूपी सर्प देहरूपी वृक्ष के छिद्र में विष को धारे बैठा है, उसके निकट जो जावेगा उसको मार डालेगा और जिस अहं मम भाव को प्राप्त होगा सो मृतक समान होगा और जन्ममरण पावेगा । अहंकाररूपी पिशाच जिसको लगा है उसे मलिन करता है और स्वरूप से गिराकर संसाररूपी गढ़े में डालता है और बड़ी आपदा को प्राप्त करता है । जिसकी आपदाएँ हैं उन्हें अहंकार प्राप्त करता है । बहुत वर्ष पर्यन्त भी उन आपदाओं का वर्णन न कर सकेगा । हे रामजी! यह जो मलिन कल्पना उठती है कि `मैं हूँ', `मैं मरता हूँ', `मैं दग्ध होता हूँ', `मैं दुःखी हूँ', ` मैं मनुष्य हूँ' इत्यादि सो अहंकाररूपी पिशाच की शक्ति है । आत्मस्वरूप नित्यशुद्ध, चिदाकाश, सर्वगत, सच्चिदानन्द, जो सबका अपना आप है पर अहंकार के वश से जीव आपको परिच्छिन्न और अलेप दुःखी मानता है । जैसे आकाश सर्वगत और

www.tantrik-astrologer.in

अलेप है, तैसे ही आत्मा सबमें अलेप है और सबसे असम्बन्धी है पर अहंकार के सम्बन्ध से रहित है । हे रामजी! ग्रहण, त्याग, चलना बैठना इत्यादिक जो कुछ क्रिया है सो देहरूपी यन्त्र और वायुरूपी रस्सी से अहंकाररूपी यन्त्री कराता है और आत्मा सदा निर्लेप सबका अधिष्ठानरूप कारणकार्यभाव से रहित है । जैसे वृक्ष की ऊँचाई का कारण आकाश निर्लेप है, तैसे ही आत्मा सर्वचेष्टा का कारण अधिष्ठान और निर्लेप है जैसे आकाश और पृथ्वी का सम्बन्ध नहीं तैसे ही आत्मा और अहंकार का सम्बन्ध नहीं है । चित्त को जो आप जानते हैं वे महामूर्ख हैं । आत्मा प्रकाशरूप नित्य और सर्वगत विभु है, चित्त मूर्ख जड़ है और आवरण करता है । हे रामजी! आत्मा सर्वज्ञ और चैतन्यरूप है, चित्त मूढ़ है और पत्थरवत् जड़ है, इसको दूर करो इसका और तुम्हारा कुछ सम्बन्ध नहीं । तुम इस मोह से तरो देहरूपी शून्य गृह में चित्तरूपी वैताल का निवास है, जिसको वह अपने वश करता है उसको बान्धव भी नहीं छुड़ा सकते और शास्त्र भी नहीं छुड़ा सकते जिसका देहाभिमान क्षीण हो गया है उसको गुरु और शास्त्र भी छुड़ा सकते हैं जैसे अल्प कीचड़ से हरिण को निकाल लेते हैं तैसे ही गुरु और शास्त्र निकाल लेते हैं । हे रामजी! जितने देहरूपी शून्य मन्दिर हैं उन सबमें अहंकाररूपी पिशाच रहता है, कोई देहरूपी गृह अहंकार पिशाच से खाली नहीं और भय से मिला हुआ है । जैसे पिशाच अपवित्र स्थान में रहता है, पवित्र स्थान में नहीं रहता तैसे ही जहाँ सन्तोष, विचार, अभ्यास, सत्संग से रहित देह है उस स्थान में अहंकार निवास करता है और जहाँ सन्तोष, विचार अभ्यास और सत्संग होता है वहाँ से मिट जाता है । जितने शरीररूपी श्मशान हैं वे चित्तरूपी वैताल से पूर्ण हैं और अपरिमित मोहरूपी वैताल के वश जगत्‌रूपी महावन में मोह को प्राप्त होते हैं । जैसे बालक मोह पाता है । हे रामजी! तुम आपसे अपना उद्धार करो और सत्य विचार करके धैर्य को प्राप्त हो । इस जगत्‌रूपी पुरातन वन में जीवरूपी मृग बिचरते हैं और भोगरूपी तृण का आश्रय करते हैं पर वे भोगरूपी तृण देखने में तो सुन्दर भासते हैं परन्तु उनके नीचे गड्ढा है । जैसे हरियाली और तृण से ढका हुआ गड्ढा देखके मृग के बालक भोजन करने लगते हैं और गड्ढे में गिर पड़ते हैं तैसे ही जीवरूपी मृग भोगों को रमणीय जानकर भोगने लगते हैं और उनकी तृष्णा से नरक आदिक में गिरते और अग्नि में जलते हैं । हे रामजी! तुम ऐसे न होना । जो कोई भोगों की तृष्णा करेगा वह नरकरूपी गड्ढे में गिरेगा, इससे तुम मृगमति को त्यागकर सिंहवृत्ति को धारो । मोहरूपी हाथी को सिंह होकर अपने नखों से विदारण करो और भोग की तृष्णा से रहित हो । भोग की तृष्णावाले जीव जम्बूद्वीपरूपी जंगल में मृग की नाईं भटकते हैं – उन्हीं की नाईं तुम न बिचरना । हे रामजी! स्त्री जो रमणीय भासती हैं उनका स्पर्श अल्पकाल ही शीतल और सुखदायक भासता है परन्तु कीचड़ की नाईं है । जैसे कीचड़ का लेप भी शीतल भासता है परन्तु तुच्छ है । जैसे हाथी दलदल में फँसा हुआ निकल नहीं सकता, तैसे ही यह भोगरूपी दलदल में फँसा हुआ नहीं निकल सकता । इससे तुम सन्त की वृत्ति को ग्रहण करो । ग्रहण करना किसको कहते हैं और त्याग किसका नाम है ऐसे विचार से असत्‌वृत्ति को त्याग करो और आत्म तत्त्व का आश्रय करो । हे रामजी! यह अपवित्र देह अस्थि, माँस, रुधिर से पूर्ण है और तुच्छ है और इसका दुष्ट आचार है । देह के निमित्त भोग की इच्छा करने से कुछ परमार्थ सिद्ध नहीं होता । देह और ने रची है, चेष्टा और से करती है और ने इसमें प्रवेश किया है, दुःख को ग्रहण करता है जो दुःख का भागी होता है । संकल्प ने देह रची है, प्राण से चेष्टा करता है, अहंकार पिशाच ने इसमें प्रवेश किया है और गर्जता है, मन की वृत्ति सुख दुःख को ग्रहण करती है और जीव दुःखी होता है । इससे आश्चर्य है । हे रामजी! परमार्थसत्ता एक है और सर्व समान है । इससे भिन्न सत्ता नहीं । जैसे पत्थर घन जड़ होता है और उसमें और कुछ नहीं फुरता तैसे ही सत्तामात्र से

www.tantrik-astrologer.in

भिन्न द्वैत सत्ता किसी पदार्थ की नहीं । जैसे पत्थर घनरूप है तैसे ही परमात्मा घनरूप है और जड़ चेतन भिन्न कोई नहीं यह मिथ्या संकल्प की रचना है । जैसे बालक को परछाहीं में बैताल भासता है तैसे ही सब कल्पना मन की है जैसे एक पौंड़े के रस से गुड़, शक्कर इत्यादि होती है तैसे ही एक पुरशोत्तम सत्तासमान सर्व है उसमें जड़ चेतन की कल्पना मिथ्या है, जब तक सम्यक्ृदृष्टि नहीं प्राप्त हुई तबतक जड़ चेतन की दृष्टि होती है और जब यथार्थदृष्टि प्राप्त होती है तब भेदकल्पना सब मिट जाती है । जैसे सीपी में रूपा भासता है सो न सत्य होता है और न असत्य होता है तैसे ही आत्मा में जड़, चेतन,सत्य, असत्य विलक्षण कल्पना है । हे रामजी! जो सत्य है सो असत्य नहीं होता और जो असत्य है सो सत्य नहीं होता । आत्मा सदा सत्यरूप अपने आपमें स्थित है और उसमें द्वैत और एक का अभाव है । जैसे पत्थर में अन्य सत्ता का अभाव है तैसे ही आत्मा में द्वैतसत्ता का अभाव है । नानारूप भासता है तो भी द्वैत कुछ नहीं सदा अनुभवरूप है और उसमें विभाग कल्पना कुछ नहीं-सदा अद्वैतरूप है भेदकल्पना चित्त से भासती है, जब चित्त का अभाव होता है तब जड़ चेतन की कल्पना मिट जाती है जैसे बन्ध्या के पुत्र और आकाश में वृक्ष का अभाव है तैसे ही आत्मा में कल्पना का अभाव है । हे रामजी! यह चेतन है यह जड़ है, यह उपजता है, यह मिट जाता है इत्यादिक कल्पना सब मिथ्या हैं । जैसे रस्सी में सर्प मिथ्या है तैसे ही केवल निर्विकल्प चिन्मात्र आत्मा में कल्पना मिथ्या है गुरु और शास्त्र भी जो आत्मा को चैतन्य कहते हैं और अनात्मा को जड़ कहते हैं वह भी बोध के निमित्त कहते हैं और दृष्टान्त तथा युक्ति से दृश्य को आत्मस्वरूप में स्थित करते हैं । जब स्वरूप में दृढ़ स्थित होगी तब जड़ चेतन की भेद-कल्पना जाती रहेगी केवल अचैत्य चिन्मात्र सत्ता भासेगी जो तत्त्व है । इस प्रकार गुरु जड़ चेतन के विभाग का उपदेश करते हैं तो भी मूर्ख नहीं ग्रहण कर सकते तो जब प्रथम ही अचैत्य-चिन्मात्र-अवाच्यपद का उपदेश करे तब कैसे ग्रहण करें । हे रामजी! और आश्चर्य देखो कि चित्त और है, इन्द्रियाँ और हैं, देह और है, देह का कर्त्ता कोई दृष्टि नहीं आता और अहंकार से वेष्टित की है । यह जीव ऐसा मूर्ख है कि देह को अपना आप जानता है- और दुःख पाता है पर जो विचारवान् पुरुष अत्मपद में स्थित हुए हैं । उन महानुभावों को कोई क्रिया दुःखबन्धन नहीं कर सकती । जैसे मन्त्र जाननेवाले को सर्प दुःख नहीं दे सकता तैसे ही ज्ञानवान् को कर्म बन्धन नहीं करते । हे रामजी! न तुम शीश हो, न नेत्र हो, न रक्त हो, न माँस हो, न अस्थि आदिक हो, न मन हो और न भूतजात हो, तुम चित्त से रहित चैतन्य केवल चिन्मात्र साक्षीरूप हो इसीलिये शरीर से ममता त्याग कर नित्य शुद्ध और सर्वगत आत्मस्वरूप में स्थित हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे देहसत्ताविचारोनाम पञ्चविंशतितमस्सर्गः ।।25।।

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

वशिष्ठाश्रमवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी दृष्टि का ऐसा आश्रय करो और भेदकष्ट दृष्टि का त्याग और नाश करो। जब कष्टदृष्टि नष्ट होगी तब ऐसा आत्मानन्द प्रकट होगा जिस आनन्द के पाये से अष्टसिद्धि का ऐश्वर्य भी अनिष्ट जानकर त्यागोगे। अब और दृष्टि सुनो जो महामोह का नाश करती है और जो आत्मपद पाना कठिन है उसे सुख से प्राप्त कराती है जिसका नाश कदाचित् नहीं होता। यह दृष्टि दुःख से रहित आनन्दरूप शिवजी से मैंने सुनी है जो पूर्वकाल में कैलास की कन्दरा में संसारदुःख की शान्ति के लिये अर्ध चन्द्रधारी सदाशिव ने मुझसे कही थी। हे रामजी! महाचन्द्रमा की नाईं शीतल और प्रकाशमान हिमालय पर्वत का एक शिखर कैलास पर्वत है जहाँ गौरी के रमणीय स्थान और मन्दिर है और गंगा का प्रवाह झरनों से चलता है, पक्षी शब्द करते हैं और मन्द- मन्द सुखदायक पवन चलता है कुबेर के मोर वहाँ बिचरते हैं, कल्पवृक्ष लगे हुए हैं और महाउज्ज्वल, शीतल, सुन्दर कन्दरा पर मन्दार और तमाल वृक्ष लगे हुए हैं जिनमें ऐसे फूल लगे हैं मानो श्वेत मेघ हैं। वहाँ गन्धर्व और किन्नर आते और गाते हैं और देवताओं के रमणीय सुन्दर स्थान हैं। उस पर्वत पर सदाशिव त्रिनेत्र हाथ में त्रिशूल लिये और गणों से वेष्टित अर्धाङ्ग में भगवती को लिये विराजते हैं ऐसे सर्व लोकों के कारण ईश्वर जिन्होंने कामदेव का गर्व नाश किया और षट्मुख सहित स्वामिकार्त्तिक जिनके पास बैठे हैं- और महाभयानक शून्य श्मशानों में जिनका निवास है उस देव की मैंने पूजा की और महापुण्यवान् एक कुटी बनाकर एक कमण्डलु और फूल और माला पूजन के निमित्त रक्खे, यथाशास्त्र पुण्य क्रिया से उसमें तप करने लगा। जल पान करूँ, फल भोजन करूँ, विद्यार्थी जो साथ थे उनको पढ़ाऊँ और शास्त्र का अर्थ विचारूँ। ब्रह्मविद्या की पुस्तकों का समूह आगे था और मृग और उनके बालक बिचरते थे इस प्रकार वेद का पढ़ना, ब्रह्मविद्या को विचारना और शास्त्रानुसार तप करना इन गुणों से कैलास वनकुञ्ज में हम विश्राम करते थे। निदान श्रावण बदी अष्टमी की अर्धरात्रि को जब मैं समाधि से उतरा तो क्या देखता हूँ कि दशोदिशा काष्ठवत् मौन और शान्तरूप हैं, महातम घिरा है और मन्द मन्द पवन चलता है और ओस के कणके गिरते हैं- मानो पवन हँसी करता है। उसी समय महाशीतल अमृतरूपी किरणों से चन्द्रमा प्रकाशित हो ओषधियों को रस से पुष्ट करने लगा, चन्द्रमुखी कमल खिल आये, चकोर अमृत की किरणों को पानकर मानो चन्द्रमारूप हो गये, प्रातःकाल के तारों की नाईं मणि ऊपर आन पड़ने लगीं और सप्तर्षि शिर पर स्थित हुए-मानो मेरे तप को देखने आये हैं। सप्तर्षियों में जो तीन तारे हैं उनके मध्य में मेरा मन्दिर है वहाँ मैं सदा विराजता हूँ। चन्द्रमा से सब स्थान शीतल हो गये और पवन से फूल गिरने लगे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वशिष्ठाश्रमवर्णनन्नाम षड्विंशतितमस्सर्गः ॥26॥

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

रुद्रवशिष्ठसमागम

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तब मुझको तेज का प्रकाश दृष्टि आने लगा । जैसे मन्दराचल पर्वत के पाये से क्षीरसमुद्र उछल आता है । मानो हिमालय पर्वत मूर्ति धरकर स्थित है । मानो माखन का पहाड़ पिण्ड स्थित हुआ है वा सब शंखों की स्पष्टता स्थित हुई है वा मोती का समूह इकट्ठा होकर उड़ने लगा है । महातीक्ष्ण प्रकाश दृष्टि आने लगा मानो गंगा का प्रवाह उछलने लगा है । उस प्रकाश की शीतलता ने सब दिशा और तट पूर्ण कर लिये और मैं देखकर आश्चर्यवान् हुआ कि क्या अकाल ही प्रलय होने लगा तब मैं बोध दृष्टि से मन में विचारने लगा कि यह क्या है- और देखा कि देवताओं के गुरु ईश्वर सदाशिवचन्द्रकला को धारे हुए और गौरी भगवती का हाथ ग्रहण किये गणों के समूह से वेष्टित चले आते हैं । उनके कानों में सर्प पड़े थे कण्ठ में मुण्डों की माला थी, शीश पर जटा थी और उनपर कदम्ब वृक्ष और तमाल वृक्ष के फूल पड़े हुए थे । उनको प्रथम मैंने मन से देखा, मन ही से मन्दार वृक्ष के पुष्प लेकर अर्ध्य पाद्यकिया, मन ही से प्रणाम किया और मन ही से प्रदक्षिणा कर अपने आसन से उठ खड़ा हुआ फिर अपने शिष्य को जगा अर्ध्यपाद्य लेकर चला और त्रिनेत्र शिवजी को पुष्प अज्जली दे और प्रदक्षिणा कर प्रणाम किया तब चन्द्रधारी ने मुझको कृपा दृष्टि से देखा और सुन्दर मधुरवाणी से कहा, हे ब्रह्मण! अर्ध्य पाद्य ले आओ हम तेरे आश्रम में अतिथि आये हैं । हे निष्पाप! तुझको कल्याण तो है? तू मुझको महाशान्तरूप भासता है और महासुन्दर उज्ज्वल तप की लक्ष्मी से तू शोभित है । चलो ,हम तुम्हारे आश्रम को चलें । हे रामजी! फूलों से आच्छादित स्थान में सदाशिव बैठे थे सो ऐसे कह कर उठ खड़े हुए और अपने गणों सहित मेरी कुटीर में आये । वहाँ मैंने पुष्प और अर्ध्य से उनके चरणों की पूजा करके फिर हाथों की पूजा की और इसी प्रकार चरणों से लेकर शीश पर्यन्त सब अंगों की पूजा की । फिर गौरी भगवती का पूजन करके उनकी सखियों और शिव के गणों को पूजा । हे रामजी! इस प्रकार भक्तिपूर्वक जब मैं पार्वती परमेश्वर का पूजन कर चुका तब शशिकला के धारी शिवजी ने शीतल वाणी से मुझसे कहा कि हे ब्राह्मण! नाना प्रकार की चिन्तनेवाली जो चित्तवृत्ति है सो तेरे स्वरूप में विश्रान्ति को प्राप्त हुई है और तेरी संवित आत्मपद में स्थित हुई है । तुम्हारे शिष्यों को कल्याण तो है और तुम्हारे पास जो हरिण विचरते हैं वे भी सुख से हैं? मन्दार वृक्ष तुमको पूजाके निमित्त फूल-फल भली प्रकार देते हैं और गंगाजी तुमको भली प्रकार स्नान कराती हैं? देह के इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में तुम खेदवान् तो नहीं होते? इस पर्वत में कुबेर के अनुचर यक्ष और राक्षस जो रहते हैं वे तुमको दुःख तो नहीं देते और मेरे गण जो निशाचर हैं वे तो तुमको कष्ट नहीं देते? हे रघुनन्दन! इस प्रकार जब देवेश ने मुझसे वाञ्छित प्रश्न किये तब मेंने उनसे कहा, हे कल्याणरूप महेश्वर! जो तुमको सदा स्मरण करते हैं उनको इस लोक में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो पाना कठिन हो और उनको भय भी किसी का नहीं । जिनका चित्त तुम्हारे स्मरण के आनन्दमें सर्व ओर पूर्ण से हुआ है वे जगत् में दीन नहीं होते । वही देश और उन्हीं जनों के चरण और वही दिशा पर्वत वन्दना करने योग्य हैं जहाँ एकान्त बुद्धि बैठकर तुम्हारा स्मरण होता है । हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण पूर्वपुण्य रूपी वृक्ष का फल है और वर्तमान कर्मों से सिंचता है । तुम मन के परम मित्र हो, तुम्हारा स्मरण सर्व आपदा का हरनेवाला है और सर्वसम्पदा रूपी लता को बढ़ानेवाला वसन्तऋतु है । हे प्रभो! बड़ी महिमा और बड़े से बड़े कर्मों के कारण का कारण तुम्हारा स्मरण है । हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण विवेकरूपी समुद्र में परमार्थरूपी रत्न है, अज्ञानरूपी तम का नाशकर्तासूर्य का समूह है, ज्ञान अमृत का कलश धैर्यरूपी चाँदनी का चन्द्रमा और मोक्ष का द्वार है । हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण

www.tantrik-astrologer.in

अपूर्वरूपी उत्तम दीपक है और चित्त का मण्डप जो संसार है उस सबको प्रकाशता है । हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण उदार चिन्ता मणि की नाईं सर्व आपदा को निवृत्त करने वाला और बड़े उत्तम पद को देनेवाला है । हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण एक क्षण भी स्थित हो तो सर्वदुःख और भय नाश करता है और वरदायक है । उसके बल से मैं भी तुम्हारे नाईं सुख से बसता हूँ । बाल्मीकिजी बोले कि इस प्रकार जब मुनीश्वर ने कहा तब दिन का अन्त हुआ, सब सभा परस्पर नमस्कार करके अपने अपने स्थानों को गई और सूर्य की किरणों के साथ फिर सब अपने अपने आसन पर आ बैठे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रुद्रवशिष्ठसमागमो नाम सप्तविंशतितमस्सर्गः ||27||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

जगत्परमात्मरूप वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मैंने इस प्रकार कहा तब गौरी भगवती जगत्माता जैसे माता पुत्र से कहे मुझसे बोलीं, हे वशिष्ठजी! अरुन्धती जो पतिव्रताओं में मुख्य है वह कहाँ है? उसको ले आवो वह मेरी प्यारी सखी है उससे मैं कथा वार्ता करूँगी । हे रामजी! इस प्रकार जब मुझसे पार्वती ने कहा तब मैं शीघ्र ही जाकर अरुन्धती को ले आया और वे दोनों परस्पर कथा वार्ता करने लगीं । मैंने विचारा कि मुझको ईश्वर मिले हैं और पूछने का अवसर भी पाया है इससे सर्व ज्ञान के समुद्र से पूछकर संदेह दूर करूँ । हे रामजी! ऐसे विचार करके मैंने गौरीश से पूछा और जो कुछ चन्द्रकलाधारी ने मुझसे कहा है वह तुझसे कहता हूँ । मैंने पूछा, हे भगवन्! भूत, भविष्यवत् और वर्तमान तीनों कालके ईश्वर और सब कारणों के कारण तुम्हारे प्रसाद से मैं कुछ पूछने को समर्थ हुआ हूँ । हे महादेव! जो कुछ मैं पूछता हूँ उसे प्रसन्नबुद्धि हो उद्वेग को त्यागकर शीघ्र ही कहो । हे सर्व पापों के नाश करने और सर्व कल्याण के वृद्धि करनेवाले! देव अर्चन का विधान मुझसे कहो । ईश्वर बोले, हे ब्राह्मण! जो उत्तम देव अर्चन है और जिसके किये से संसारसमुद्र से तर जाइये सो सुनो । हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! पुण्डरीकाक्ष जो विष्णु है सो देव नहीं और त्रिलोचन जो शिव हैं सो भी देव नहीं, कमल से उपजा ब्रह्मा है सो भी देव नहीं और सहस्त्र नेत्र इन्द्र भी देव नहीं, न देव पवन है, न सूर्य है, न अग्नि है, न चन्द्रमा है, न ब्राह्मण हैं, न क्षत्रिय हैं, न तुम हो, न मैं हूँ, न देह है, न चित्त है और न कलनारूप है, अकृत्रिम, अनादि, अनन्त और संवित्ूरूप देव कहाता है । आकारादिक परिच्छिन्नरूप हैं सो वास्तव में कुछ नहीं । एक अकृत्रिम, अनादि, अनन्त, चैतन्यरूप देव है सो देव शब्द से कहाता है और उसी का पूजन पूजन है । उस देव को जिससे यह सब हुआ है और जो सत्ता शान्त-आत्मरूप है उसको सब ठौर में देखना यही उसका पूजन है पर जो उस संवित् संवित् तत्त्व को नहीं जानते उनको आकार की अर्चना कही है । जैसे जो पुरुष योजनपर्यन्त नहीं चल सकता उसको एक कोस दो कोस का चलना भी भला है, तैसे ही जो पुरुष अकृत्रिम देव की पूजा नहीं कर सकता उसको आकार का पूजना भी भला है । हे ब्राह्मण! जिसकी भावना कोई करता है उसके फल को उसी अनुसार भोगता है । जो परिच्छिन्न की उपासना करता है उसको फल भी परिच्छिन्न प्राप्त होता है और जो अकृत्रिम, आनन्द, अनन्तदेवकी उपासना करता है उसको वही परमात्मारूपी फल प्राप्त होता है । हे साधो! अकृत्रिम फल को त्यागकर जो कृत्रिम को चाहते हैं ऐसे हैं जैसे कोई मन्दार वृक्ष के वन को त्यागकर कंटक के वन को प्राप्त हो । वह देव कैसा है, उसकी पूजा क्या है और क्योंकर होती है सो सुनो! बोध, साम्य और शम ये तीन फूल हैं । बोध सम्यक्ज्ञान का नाम है , अर्थात् आत्मतत्त्व को ज्यों का त्यों जानना, साम्य सबमें पूर्ण देखने को कहते हैं और शम का अर्थ यह है कि चित्त को निवृत्त करना और आत्मतत्त्व से भिन्न कुछ न फुरना इन्हीं तीनों फूलों से शिव चिन्मात्र शुद्ध देव की पूजा होती है और आकार अर्चन से अर्चा नहीं होती । आत्मसंवित् जो चिन्मात्र है उसको त्यागकर और जड़ की जो अर्चना करते हैं वे चिर पर्यन्त क्लेश के भागी होते हैं । हे ब्राह्मण! जो ज्ञात ज्ञेय पुरुष हैं वे आत्मध्यान से भिन्न पूजन अर्चन को बालक की क्रीड़ावत् मानते हैं । आत्मा भगवन् एक देव है सो ही शिव है और परम कारणरूप है, उसका सर्वदा हौ ज्ञान अर्चन से पूजन है और कोई पूजा नहीं है । चैतन्य, आकाश और निरवयव स्वभाव स्वभाव एक आत्मदेव को जान और पूज्यपूजक और पूजा त्रिपुटी से आत्म देव की पूजा नहीं होती । मैंने पूछा, हे भगवन्! चैतन्य आकाशमात्र आत्मा को वैसे जगत् और चैतन्य को कैसे जीव कहते हैं सो कहो । ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर!

www.tantrik-astrologer.in

चैतन्य आकाश प्रसिद्ध है वह प्रकृति से रहित है और जो महाकल्प में शेष रहता है वह आपही किंचनरूप होता हे उस किंचन से यह जगत् होता है । जैसे स्वप्न में चिदात्मा ही सर्व गत जगत्ृरूप होकर भासता है तैसे ही जाग्रत भी चिदाकाशरूप है । आदि सर्ग से लेकर इस काल पर्यन्त आत्मा से भिन्न का अभाव है । जैसे स्वप्न में जो जगत् भासता है सो भी सब चिदाकाशरूप है भिन्न कल्पना कोई नहीं । चिन्मात्र ही पहाड़रूप हैं, चिन्मात्र ही जगत् है, चिन्मात्र ही आकाश है, चिन्मात्र ही सब जीव हैं, और चिन्मात्र ही सब भूत हैं, चिन्मात्र से भिन्न कुछ नहीं । सृष्टि के आदि से अन्त पर्यन्त जो कुछ द्वैत कल्पना भासती है सो भ्रममात्र है । जैसे स्वप्न में कोई किसी के अंग काटे सो काटता तो नहीं निद्रा द्वेष से ऐसे भासता है, तैसे ही यह जाग्रत् भी भ्रममात्र है । हे मुनीश्वर! आकाश, परमाकाश और ब्रह्माकाश तीनों एक ही के पर्याय हैं-जैसे स्वप्न में संकल्परूप माया से अनुभव होता है सो सब चिदाकाश है तैसे ही यह जाग्रत जगत् चिदाकाशरूप है और जैसे स्वप्नपुर आकाश से कुछ भिन्न नहीं होता, तैसे ही जाग्रत् स्वप्ना भी आत्मतत्त्व होकर भासता है, आत्मा से भिन्न वस्तु नहीं । हे मुनीश्वर! जैसे स्वप्न में चिदाकाश ही घट पट आदिक होकर भासता है तैसे ही स्थित प्रलयादि जगत् चिदात्मा से कुछ भिन्न नहीं आत्मा ही ऐसे भासता है । जैसे शुद्ध संवित् मात्र से भिन्न स्वप्न में नगर नहीं पाया जाता तैसे ही जाग्रत में अनुभव से भिन्न कुछ नहीं पाते । हे मुनीश्वर! जगत् तीनों कालों में भाव अभावरूप पदार्थ हो भासता है सो सब चिदाकाशरूप हैं-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं । हे मुनीश्वर! यह देव मैंने तुमको परमार्थ से कहा है । तुममें और सर्वभूत जाति जगत् में सबका जो देव है सो चिदाकाश परमात्मा है-उससे भिन्न कुछ नहीं । जैसे संकल्पपुर में चिदाकाश ही शरीररूप हो भासता है उससे कुछ भिन्न नहीं बना तैसे ही यह सब चिदाकाशरूप है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने जगत्ृपरमात्मरूप वर्णनन्नामाष्टाविंशतितमस्सर्गः ।। ।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

चैतन्योन्मुखत्वविचार

ईश्वर बोले, हे ब्राह्मण! इस प्रकार यह सर्वविश्व केवल परमात्मारूप है । परमात्मा काश ब्रह्म ही एक देव कहाता है, उस ही का पूजन सार है और उसही से सब फल प्राप्त होते हैं वह देव सर्वज्ञ है और सब उसमें स्थित हैं । वह अकृत्रिम देव अज, परमानन्द और अखण्डरूप है, उसको साधन करके पाना चाहिये जिससे परमसुख प्राप्त होता है । हे मुनीश्वर!तू जागा हुआ है इस कारण मैंने तुझसे इस प्रकार की देव अर्चना कही है पर जो असम्यक्‌दर्शी बालक है, जिनको निश्चयात्मक बुद्धि नहीं प्राप्त हुई उनको धूप,दीप पुष्पकर्म आदिक से अर्चना कही है और आकार कल्पित करके देव की मिथ्या कल्पना की है । हे मुनीश्वर! अपने संकल्प से जो देव बनाते हैं और उसको पुष्प, धूप, दीपादिक से पूजते हैं सो भावना मात्र है उससे उनको संकल्परचित फल की प्राप्ति होती है यह बालक बुद्धि की अर्चना है । तुम सरिखे की यही पूजा है जो तुमसे सर्व आत्मभावना से कही है । हे मुनीश्वर! हमारे मत में तो और देव कोई नहीं, एक परमात्मा देव ही तीनों भुवनों में है । वही देव शिव है और सर्वपद से अतीत है । वह सर्वसंकल्पों से रहित है और सर्वसंकल्पों का अधिष्ठान भी वही है । देश काल और वस्तु के परिच्छेद से वह रहित है और सर्व प्रकार शान्तरूप एक चिन्मात्र निर्मल स्वरूप है । वही देव कहाता है । हे मुनीश्वर! जो संवित्सत्ता पञ्चभूतकला से अतीत और सर्व भाव के भीतर स्थित है वही सबको सत्ता देनेवाला देव है और सबकी सत्ता हरनेवाला भी वही है ।हे ब्राह्मण! जो ब्रह्म सत्य-असत्य के मध्य और सत्य-असत्य के परे कहाता है वही देव परमात्मा है । परमस्वतः सत्तास्वभाव से जो सबको प्राप्त हुआ है और महाचित्त कहाता है सो परमात्म देवसत्ता है जैसे सब वृक्षों की लता के भीतर रस स्थित है तैसे ही सत्ता समान रूप से परमचेतन आत्मा सर्व और से स्थित है और जो चैतन्यतत्त्व अरुन्धती का है और जो चैतन्यतत्त्व तुझ निष्पाप का और पार्वती का है वही चैतन्यतत्त्व मेरा है और वही चैतन्यतत्त्व त्रिलोकी मात्र का है सोई देव है और देव कोई नहीं । हाथ पाँव संयुक्त जो देव कल्पते हैं वह चिन्मात्र सार नहीं, चिन्मात्र ही सर्व जगत् का सारभूत है और वही अर्चना करने योग्य है, उससे सब फलों की प्राप्ति होती है वह देव कहीं दूर नहीं और किसी प्रकार किसी को प्राप्त होना भी कठिन नहीं; जो सबकी देह में स्थित और सबका आत्मा है सो दूर कैसे हो और कठिनता से कैसे प्राप्त हो । सब क्रिया वही करता है, भोजन, भरण और पोषण वही करता है, वही श्वास लेता है और सबका ज्ञाता भी वही है जो पुर्यष्टका में प्रतिबिम्बित होकर प्रकाशता है जैसे पर्वत पर जो चर अचर की चेष्टा होती है और चलते बैठते और स्थित होते हैं सो सबका आधारभूत पर्वत है, तैसे ही मन सहित षटइन्द्रियों की चेष्टा आत्मा के आश्रय होती है । उसी की संज्ञा व्यवहार के निमित्त तत्त्ववेत्ताओं ने देव कल्पी है । एक देव, चिन्मात्र, सूक्ष्म, सर्व व्यापी, निरञ्जन, आत्मा, ब्रह्म इत्यादिक नाम ज्ञानवानों ने उपदेशरूप व्यवहार के निमित्त रक्खे हैं । हे मुनीश्वर! जो कुछ विस्तारसहित जगत् भासता है सबका वह प्रकाशक है और सबसे रहित है, नित्य, शुद्ध और अद्वैतरूप है और सब जगत् में अनुस्युत है । जैसे वसन्तऋतु में नाना प्रकार के फूल और वृक्ष भासते हैं पर सबमें एक ही रस व्याप रहा है जो अनेक रूप हो भासता है, तैसे ही एक ही आत्मसत्ता अनेक रूप होकर भासती है । हे मुनीश्वर! जो कुछ जगत् है सो सब आत्मा का चमत्कार है और आत्मतत्त्व में ही स्थित है, कहीं आकाश, कहीं जीव, कहीं चित्त और कहीं अहंकाररूप है, कहीं दिशारूप, कहीं द्रव्य, कहीं भाव-विकार, कहीं तम, कहीं प्रकाश और कहीं सूर्य, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदिक स्थावर जंगमरूप होकर स्थित है । जैसे समुद्र में तरंग और बुद्बुदे होते हैं तैसे ही एक परमात्मा देव में त्रिलोकी है । हे

www.tantrik-astrologer.in

मुनीश्वर! देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक सब एकदेव में बहते हैं । जैसे जल में तृण बहते हैं, तैसे ही परमात्मा में जीव बहते हैं वही चैतन्यतत्त्व चतुर्भुज होकर दैत्यों का नाश करता है जैसे मेघरूप होकर धूप को रोकता है–और वही चैतन्यतत्त्व त्रिनेत्र मस्तक पर चन्द्र धारे और वृषभ पर आरूढ़ पार्वती रूपी कमलिनी के मुख का भँवरा रुद्र होकर स्थित होता है । वही चेतना विष्णुरूपसत्ता है, जिसके नाभिकमल से ब्रह्मा त्रिलोकी वेदत्रयरूप कमलिनी की लता बड़ी होकर स्थित हुआ है । हे मुनीश्वर! इस प्रकार एक ही चैतन्यतत्त्व अनेकरूप होकर स्थित हुआ है जैसे एक ही रस अनेक रूप होकर स्थित होता है और जैसे एक ही सुवर्ण अनेक भूषण रूप होकर स्थित होता है, तैसे ही एक ही चैतन्य अनेकरूप होके स्थित होता है । इससे सर्वदेह एक चैतन्यतत्त्व के हैं । जैसे एक वृक्ष के अनेक पत्र होते हैं तैसे ही एक ही चैतन्य के सर्व देह हैं । वही चैतन्य मस्तक पर चूड़ामणि धारनेवाला त्रिलोकपति इन्द्र होकर स्थित हुआ है । देवतारूप होकर वही स्थित हुआ है और दैत्यरूप होकर भी वही स्थित है और मरने उपजने का रूप भी वही धारता है । जैसे एक समुद्र में तरंग के समूह उपजते और मिट जाते हैं सो सब जलरूप ही हैं तैसे ही उपजना और विनशना चैतन्य में होता है वह चैतन्यतारूप परमात्मा एक ही वस्तु है । हे मुनीश्वर! चैतन्य रूपी आदर्श में जगत्‌रूपी प्रतिबिम्ब होता है और अपनी रची हुई वस्तु को आप ही ग्रहण करके अपने में धरता है । जैसे गर्भिणी स्त्री अपने गर्भ को धारती है तैसे ही चैतन्यतत्त्व जगत्‌रूप प्रतिबिम्ब को धारता है । हे मुनीश्वर! सर्वक्रिया उसी देव से सिद्ध होती हैं और सूर्यादिक उसी से प्रकाशते हैं और उसी से प्रफुल्लित होते हैं तैसे ही आत्मा से अन्धकार और प्रकाश दोनों सिद्ध होते हैं । हे मुनीश्वर! त्रिलोकीरूपी धूलि चेतन रूपी वायु से उड़ती है । जो कुछ जगत् के आरम्भ हैं उन सबको चैतन्यरूपी दीपक प्रकाश करता है । जैसे जल के सींचने से बेलि प्रफुल्लित होती है और फूलफल उत्पन्न करती है, तैसे ही चैतन्यसत्ता सब पदार्थों को प्रकट करती है और सबको सत्ता देकर सिद्ध करती है । हे मुनीश्वर! चैतन्य ही में जड़ की सिद्धता और चेतन ही में जड़ का अभाव होता है जैसे प्रकाश ही से अन्धकार सिद्ध होता है और प्रकाश ही से अन्धकार का अभाव होता है तैसे ही सब देह चैतन्य ही से देहों का अभाव होता है । विष्णु भी उसी से होते हैं और शिवजी भी उसी से होते हैं । हे मुनीश्वर! ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो चैतन्य बिना सिद्ध हो, जो कोई पदार्थ है सो आत्मा ही से सिद्ध होता है हे मुनीश्वर! शरीररूपी सुन्दर वृक्ष बड़ी ऊँची डालों सहित है परन्तु चैतन्यरूपी मञ्जरी बिना नहीं शोभता । जैसे रस बिना वृक्ष नहीं शोभता तैसे ही चैतन्य बिना शरीर नहीं शोभता । बढ़ना, घटना आदिक जो विकार हैं वह एक आत्मा से सिद्ध होते हैं यह जगत् सब चैतन्यरूप है और चैतन्यमात्र ही अपने आपमें स्थित है इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार अमृतरूपी वाणी से त्रिनेत्र ने मुझसे कहा तब मैंने नम्रता से पूछा । हे देव! जब सब जगत् चैतन्य देव व्यापकरूप स्थित है और चैतन्य ही बड़े विस्तार को प्राप्त भया है तब यह प्रथम चेतन था अब यह चेतनता से रहित है इस कल्पना का सब लोकों में प्रत्यक्ष अनुभव कैसे होता है । ईश्वर बोले, हे ब्रह्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ! यह महाप्रश्न तेने किया है उसका उत्तर सुन! इस शरीर में दो चेतन स्थित हैं एक चैतन्योन्मुखत्वरूप है और दूसरा निर्विकल्प आत्मा । जो चेतन चैतन्योन्मुखत्व दृश्य से मिला हुआ है सो जीव संकल्पके फुरने से अन्य की नाईं हो गया है पर वास्तव में और कुछ नहीं हुआ केवल दृश्य संकल्प के अनुभव को ग्रहण करने से जीवरूप हुआ है । जैसे स्त्री अपने शीलधर्म को त्यागकर दुराचारिणी हो जाती है तो उसकी शीलता जाती रहती है परन्तु स्त्री का स्वरूप नहीं जाता तैसे ही चैतन्यो न्मुखत्व से अनुभवरूपी जीवरूप हो जाता है परन्तु चैतन्यरूप का त्याग नहीं करता । जैसे संकल्प के वश से पुरुष एक क्षण में और रूप हो जाता है तैसे

www.tantrikastrologer.in

ही चित्तसत्ता फुरने भाव से अन्यरूप हो जाती है । हे मुनीश्वर! आदि में चित्त स्पन्द चित्कला में हुआ है, तब शब्द के चेतने से आकाश हुआ, फिर स्पर्श तन्मात्रा का चेतना हुआ तब वायु प्रकट हुआ, इसी प्रकार पाँचों तन्मात्रा के फुरने से पञ्चतत्त्व हुए । फिर देश आदिक का विभाग हुआ उसमें जीव प्रतिबिम्बित हुआ, फिर निश्चय वृत्ति हुई उसका नाम बुद्धि हुआ, फिर अहंवृत्ति फुरी उसका नाम अहंकार हुआ, फिर संकल्प विकल्प वृत्ति फुरी उसका नाम मन हुआ, चिन्तना से चित्त हुआ, फिर संसार की भावना हुई तब संसार का अनुभव हुआ और अभ्यास के वश से संसार भासने लगा जैसे विपर्यय भावना करके ब्राह्मण आपको चाण्डाल जाने, तैसे ही भावना के विपर्यय होने से वही चैतन्य आपको जीव मानने लगा है, संकल्प की दृढ़ता से चेतनरूपी जीव को ग्रहण कर संकल्प में वर्तता है और अनन्त संकल्पों से जड़ता तीव्रता को प्राप्त होकर जड़भाव को ग्रहण कर देहभाव को प्राप्त होता है । जैसे जल दृढ़ जड़ता से बरफरूप हो जाता है तैसे ही चैतन्य जब अनन्त संकल्पों से जड़ देहभाव को प्राप्त होता है तब चित्त मन मोहित हुआ जड़ता का आश्रय करके संसार में जन्म लेता है और मोह को प्राप्त हुआ तृष्णा से पीड़ित होता और काम, क्रोध संयुक्त भाव-अभाव में प्राप्त होता है । एवं अपनी अनन्तता को त्यागकर परिच्छिन्न व्यवहार में वर्तता है, दुःखदायक अग्नि से तप्त हुआ शून्यभाव को प्राप्त होता है और भेद को ग्रहण करके महादीन हो जाता है । हे मुनीश्वर! मोहरूपी गड्ढे में जीवरूपी हाथी फँसा है और भाव अभाव से सदा डोलायमान होता है । जैसे जल में तृण भासता है तैसे ही असाररूप संसार में विकारसंयुक्त रागद्वेष से जीव तपता रहता है शान्ति को कदाचित् नहीं पाता और जैसे यूथ से बिछुरा मृग कष्टवान् होता है तैसे ही आवरण भाव जन्ममरण से जीव कष्टवान् होता है और अपने संकल्प से आप ही भय पाता है । जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पकर आप ही भय पाता है तैसे ही जीव अपने संकल्प से आप ही भयभीत होता है और संकट पाता है, आशारूपी फाँसी से बँधा हुआ कष्ट से कष्ट पाता है और कर्मों को करके तपायमान हुआ अनेक जन्म पाता है और भय में रहता है । बालक होता है तब महादीन और परवश होता है, यौवन अवस्था में कामादिक के वश हुआ स्त्री में रत रहता है और वृद्ध अवस्था में चिन्ता से मग्न होता है । जब मृतक होता है तब कर्मों के वश फिर जन्मता है और गर्भ में दुःख पाता है और फिर बालक, यौवन, वृद्ध और मृतक अवस्था को पाता है । स्वरूप से गिरा हुआ इसी प्रकार भटकता है, कदाचित स्थिर नहीं होता । हे मुनीश्वर! एक चित्सत्ता स्पन्दभाव से अनेक भाव को प्राप्त होती है, कहीं दुःख से रुदन करती है, कहीं दुःख भोगती है, कहीं स्वर्ग में देवाङ्ना होती है, पाताल में नागिनी, असुरो में असुरी, राक्षसों में राक्षसी, वनकोट में वानरी, सिंहों में सिंही किन्नरों में किन्नरी, हरिणों में हरिणी, विद्याधरों, में विद्याधरी, गन्धर्वों में गन्धर्वी, देवताओं में देवी इत्यादिक जो रूप धारती है सो चैतन्योन्मुखत्व जीवकला है क्षीरसमुद्र में वह विष्णुरूप होकर स्थित होती है, ब्रह्मपुरी में ब्रह्मारूप होती है, पञ्चमुख होकर रुद्र होती है और स्वर्ग में इन्द्र होती है । तीक्ष्णकला से सूर्य दिन का कर्त्ता होती है और क्षण, दिन, मास,वर्ष करती है । चन्द्रमा होकर वही रात्रि करती और काल होकर नक्षत्र फेरती है । कहीं प्रकाश, कहीं तम, कहीं बीज, कहीं पाषाण, कहीं मन होती है और कहीं नदी होकर बहती है, कहीं फूल होकर फूलती है, कहीं भँवर होकर सुगन्ध लेती है, कहीं फल होकर दीखती है, कहीं वायु होकर चलती है, कहीं अग्नि होकर जलाती है, कहीं बरफ होती है और कहीं आकाश होकर दीखती है । हे मुनीश्वर! इसी प्रकार सर्वगत सर्वात्मा सर्वशक्तिता से एक ही रूप चित्ःशक्ति आकाश से भी निर्मल है । जैसे चेतता है तैसे ही होकर स्थित हुई है । जैसे जैसी भावना करती है शीघ्र ही तैसा रूप हो जाता है परन्तु स्वरूप से भिन्न नहीं होती । जैसे समुद्र में फेन तरंग होकर भासते हैं परन्तु जल से भिन्न नहीं-

www.tantrik-astrologer.in

जल ही जल है तैसे ही चित्‌शक्ति अनेक रूपों को धारती है परन्तु चैतन्य से भिन्न नहीं होती । चित्‌शक्ति ही कहीं हंस, काक, कहीं, शूकर, कहीं मक्खी, चिड़िया इत्यादिक रूप धारकर संसार में प्रवर्तती है जैसे जल में आया तृण भ्रमता है तैसे ही भ्रमती है और अपने संकल्प से आप ही भय पाती है और जैसे गधा अपना शब्द सुन आप ही दौड़ता है और भय पाता है तैसे ही जीव अपने संकल्प से आप ही भय पाता है । हे मुनीश्वर! यह मैंने जीवशक्ति का आचार तुझसे कहा, इसी आचार को ग्रहण करके बुद्धि नीच पशुधर्मिणी हुई है और स्वरूप के प्रमाद से जैसा जैसा संकल्प करती है तैसी ही तैसी कर्मगति को प्राप्त हो शोकवान् होती है, अनन्त दुःख पाती है और अपनी चैत्यता से ही मलिन होती है । जैसे तुष से ढपा चावल बड़े संताप को प्राप्त होता है, फिर फिर बोया जाता है, फिर फिर उगता है, और काटा जाता है, तैसे स्वरूप के आवरण से जीवकला दुर्भाग्य से जन्म मरण दुःख को प्राप्त होती है । जैसे भर्त्तार से रहित स्त्री शोकवान् होती है तैसे ही जीवकला कष्ट पाती है । हे मुनीश्वर! जड़दृश्य और अनात्मरूप की प्रीति करने और निज स्वरूप के विस्मरण करने से आशारूपी फाँसी से बँधा हुआ चित्त, जीव को नीच योनि में प्राप्त करता है जैसे घटीयन्त्र कभी नीचे जाता है और कभी ऊर्ध्व को जाता है तैसे ही जीव आशा के वश हुआ कभी पाताल और कभी आकाश को जाता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वशिष्ठेश्वर संवादे चैतन्योन्मुखत्वविचारो नामैकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥29॥

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

मनप्राणोक्त प्रतिपादन

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! स्वरूप का विस्मरणजो इस प्रकार होता है कि मैं हन्ता हूँ, मैं दुःखी हूँ, सो अनात्मा में अहं प्रतीति करके ही दुःख का अनुभव करता है । जैसे स्वप्न में पुरुष आपको पर्वत से गिरता देख के दुःखी होता है और आपको मृतक हुआ देखता है तैसे ही स्वरूप के प्रमाद से अनात्म में आत्म अभिमान करके आपको दुःखी देखता है । हे मुनीश्वर! शुद्ध चैतन्यतत्त्व में जो चित्तभाव हुआ है सो चित्तकला फुरने से जगत् का कारण हुआ है परन्तु वास्तव में स्वरूप से भिन्न नहीं । जैसे जैसे चित्कला चेतती गई है तैसे ही जगत् होता गया है । वह चित्त का कारण भी नहीं हुआ और जब कारण ही नहीं हुआ तब कार्य किसको? हे मुनीश्वर! न वह है, न चेतन है, न चेतनेवाली है, न द्रष्टा है, न दृश्य है और न दर्शन है जैसे पत्थर में तेल नहीं होता न कारण है, न कर्म है और न कारण इन्द्रियाँ है, जैसे चन्द्रमा में श्यामता नहीं होती । न वह मन है और न मानने योग्य दृश्य वस्तु है-जैसे आकाश में अंकुर नहीं होता । न वह अहन्ता है, न तम है और न दृश्य है-जैसे शंख को श्यामता नहीं होती । हे मुनीश्वर! न वह नाना है,न अनाना है-जैसे अणु में सुमेरु नहीं होता। न वह शब्द है, न स्पर्श का अर्थ है-जैसे मरुस्थल में बेलि नहीं होती । न वस्तु है, न अवस्तु है-जैसे बरफ में उष्णता नहीं होती । न शून्य है न अशून्य है, न जड़ है न चेतन है । जैसे सूर्यमण्डल में अन्धकार नहीं होता । हे मुनीश्वर! शब्द और अर्थ इत्यादिक की कल्पना भी उसमें कुछ नहीं-जैसे अग्नि में शीतलता नहीं होती । वह तो केवल केवलीभाव अद्वैत चिन्मात्र तत्त्व है स्वरूप से किसी को कुछ भी दुःख नहीं होता हे मुनीश्वर! जगत् को असत् जानकर अभावना करना और आत्मा को सत् जानकर भावना करना इस भावना से सर्व अनर्थ निवृत्त हो जाते हैं पर यह और किसी से प्राप्त नहीं होता अपने आप ही से प्राप्त होता है और अनादि ही सिद्ध है । जब उसकी ओर भावना होती है तब सब भ्रम मिट जाते हैं और जब अनात्मभावना होती है तब उसका पाना कठिन होता है । जो यत्नके साथ है सो यत्न बिना नहीं पाया जाता, आत्मा निर्विकल्प, अद्वैत और सबसे अतीत है, उसे अभ्यास बिना कैसे पाइये? आत्मतत्त्व परम, एक, स्वच्छ, तेज का भी प्रकाशक, सर्वगत, निर्मल, नित्य, सदा उदित, शक्तिरूप, निर्विकार और निरञ्जन है । घट,पट, वट, वृक्ष, गादी, वानर दैत्य, देवता, समुद्र , हाथी इत्यादिक स्थावर-जंगमरूप जो कुछ जगत् है सबका साक्षीरूप होकर आत्मतत्त्व स्थित है और दीपकवत् सबको प्रकाशता है । आप सर्वक्रिया से अतीत है पर उसी से सर्वकार्य सिद्ध होते हैं, सर्वक्रिया संयुक्त भासता है और सर्वविकल्प से रहित जड़वत् भी भासता है परन्तु परम चैतन्य है । आत्मतत्त्व सब चेतन का सार चेतन, निर्विकल्प और परमसूक्ष्म है और अपने आपमें किञ्चन हो भासता है । अपने ही प्रमाद से रूप, अवलोक और नमस्कार त्रिपुटी भासती है, जब बोध होता है तब ज्यों का त्यों आत्मा भासता है । नित्य, शुद्ध, निर्मल और परमा नन्दरूप के प्रमाद से चैतन्य चित्तभाव को प्राप्त होता जैसे साधु भौ दुर्जन के संग से असाधु हो जाते हैं तैसे ही अनात्मा के संग से यह नीचता को प्राप्त होता है । जैसे सोना दूसरी धातु की मिलौनी से खोटा हो जाता है और जब शोधा जाता है तब शुद्धता को प्राप्त होता है तैसे ही अनात्म के संग से यह जीव दुःखी होता है और जब अभ्यास और यत्न करके अपने शुद्धरूप को पाता है तब वही रूप हो जाता है । जैसे मुख के श्वाश से दर्पण मलीन हो जाता है तो उसमें मुख नहीं भासता पर जब मलिनता निवृत्त होती है तब शुद्ध होता है और उसमें मुख स्पष्ट भासा है, तैसे ही चित संवेदन के प्रमाद से फुरने के कारण जगत् भ्रम भासने लगता है और आत्मस्वरूप नहीं भासता । जब यह जगत् सत्ता फुरने सहित दूर होगी तब आत्मतत्त्व

www.tantrikastrologer.in

भासेगा और जगत् की असत्यता भासेगी । हे मुनीश्वर! जब शुद्ध संवित् में चेतनता का फुरना निवृत्त होता है तब जीव अहंताभाव को प्राप्त होने से अविनाशीरूप को विनाशी जानता है । हे मुनीश्वर! स्वरूप से कुछ भी उत्थान होता है तो उससे स्वरूप से गिरकर कष्ट पाता है । जैसे पहाड़ से गिरा नीचे चला जाता है और चूर्ण होता है तैसे ही जीव स्वरूप से उत्थान होता है और अनात्मा में अभिमान और अहंप्रतीति होती है तब अनेक दुःखों को प्राप्त होता है । हे मुनीश्वर! सब पदार्थों का सत्ता रूप आत्मा है, उसके अज्ञान से दैवत्वभाव को प्राप्त होता है जब उसका बोध हो तब दैवत्वभाव निवृत्त हो जावेगा वह आत्मा शुद्ध और चिन्मात्रस्वरूप है उसी की सत्ता से देह इन्द्रियादिक भी चेतन होते हैं और अपने अपने विषय को ग्रहण करते हैं जैसे सूर्य के प्रकाश से सब जगत् का व्यवहार होता है और प्रकाश बिना कोई व्यवहार नहीं होता, तैसे आत्मा की सत्ता से ही देह, इन्द्रिया दिक का व्यवहार होता है और है और अपने अपने विषय को ग्रहण करती हैं । हे मुनीश्वर जो नेत्र में मुख्य श्यामता है वह अपने आपमें रूप को ग्रहण करती है उसका बाहर के विषय से संयोग होता है और उस रूप का जिसमें अनुभव होता है वह परम चैतन्य सत्ता है । त्वचा इन्द्रियाँ और स्पर्श का जब संयोग होता है तो इन जड़ों का जिससे अनुभव होता है वह साक्षीभूत परम चैतन्यसत्ता है और नासिका इन्द्रिय का जब गन्ध तन्मात्र से संयोग होता है तो उसके संयोग में जो अनुभवसत्ता है सो परम चैतन्य है । इसी प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पाँचों विषयों को श्रोत्र, नेत्र, त्वचा, रसना, नासिका पाँचों इन्दियों से मिलकर जानने वाला साक्षीभूत परम चैतन्य आत्मतत्त्व है । वह मुख्य संवित् परम चैतन्य कहाता है और जो बहिर्मुख फुरकर दृश्य से मिला है वह मलीन चित्त कहाता है जब वही मलीनरूप अपने शुद्धस्वरूप में स्थित होता है तब शुद्ध होता है । हे मुनीश्वर! यह जगत् सब आत्मस्वरूप है और शिलाधन की नाईं अद्वैत और सर्व विकारों से रहित है, न उदय होता है और न अस्त होता है संकल्प के वश से जीव भाव को प्राप्त होता है और संकल्प के निवृत्त हुए परमात्मारूप हो जाता है । हे मुनीश्वर! आदि चित्तकला जीवरूपी रथ पर आरूढ़ हुई है, जीव अहंकाररूपी रथ पर आरूढ़ हुआ है, अहंकार बुद्धिरूपी रथ पर आरूढ़ है, बुद्धि मनरूपी रथ पर आरूढ़ है, मन प्राण रूपी रथ पर चढ़ा है और प्राण इन्द्रियाँरूपी रथ पर चढ़े हैं । इन्द्रियों का रथ देह का रथ पदार्थ है । जो कर्म इन्द्रियाँ करती हैं उसी के वश जरामरणरूपी संसारपिंजरे में भ्रमती हैं । इस प्रकार यह चक्र चलता है और उसमें प्रमाद करके जीव भटकता है । हे मुनीश्वर! यह चक्र आत्मा का आभास विरूप है । जैसे स्वप्नपुर में नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं सो वास्तव में कुछ नहीं हैं, तैसे ही यह जगत् वास्तव में कुछ नहीं है और जैसे मृगतृष्णा की नदी भ्रम करके भासती है, तैसे ही यह जगत् भ्रम से भासता है । हे मुनीश्वर! मन का रथ प्राण है, जब प्राणकला फुरने से रहित होती है तब मन भी स्थित हो जाता है और मन के स्थित हुए मन का मनन भी शान्त हो जाता है । जब प्राण कला फुरती है तब मन का मनन भी फुरता है और जब प्राणकला स्थित होती है तब मनन निवृत्त हो जाता है । जैसे प्रकाश बिना पदार्थ नहीं भासते और वायु के शान्त हुए धूर नहीं उड़ती तैसे प्राण के फुरने से रहित मन शान्त होता है जैसे जहाँ पुष्प होते हैं वहाँ गन्ध भी होती है और जहाँ अग्नि है वहाँ उष्णता भी होती है, तैसे ही जहाँ प्राणस्पन्द होता है वहाँ मन भी होता है । हृदय में जो नाड़ी है उसमें प्राण स्वतः फुरते हैं और उसी से मनन होता है संवित् जो स्वच्छरूप है सो जड़ अजड़ सर्वत्र भासती है और संवेदन प्राणकला में फुरती है । हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता सर्वत्र अनुस्यूत है परन्तु जहाँ प्राणकला होती है वहाँ भासती है और जहाँ प्राणकला नहीं होती वहाँ नहीं भासती । जैसे सूर्य का प्रकाश सब ठौर में होता है परन्तु जहाँ उज्ज्वल स्थान, जल अथवा दर्पण होता है वहाँ प्रतिबिम्ब भासता है और ठौर नहीं भासता, तैसे ही

www.tantrik-astrologer.in

आत्मसत्ता सर्वत्र है परन्तु जहाँ प्राणकला पुर्यष्टका होती है वहाँ भासती है और ठौर नहीं भासती । जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब भासता है और शिला में नहीं भासता तैसे ही पुर्यष्टका जो मनरूप है सो सबका कारण है और अहंकार, बुद्धि, इन्द्रियाँ उसी के भेद हैं, जो आपही से कल्पित है, सब दृश्यजाल उसही से उदय होता है और कोई वस्तु नहीं । यह भली प्रकार अनुभव किया है । इससे मन ही देहादिक हो प्रवर्तता है । और सब वस्तु उसही से भासती हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने मनप्राणोक्त प्रतिपादनन्नाम त्रिंशत्तमस्सर्गः ||30||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

देहपातविचार

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता बिना जीव कन्धवत् होता है और आत्म सत्ता से चेतन होकर चेष्टा करता है । जैसे चुम्बक पाषाण की सत्ता से जड़ लोहा चेष्टा करता है तैसे ही सर्वगत आत्मा की सत्ता से जीव फुरता है और आत्मसत्ता भी जीवकला में भासती है ठौर नहीं भासती जैसे मुख का प्रतिबिम्ब दर्पण में भासता है और ठौर नहीं भासता तैसे ही परमात्मा सर्वगत और सर्वशक्त भी है परन्तु जीवकला ही में है । हे मुनीश्वर शुद्ध वास्तव स्वरूप से जो इस जीवकला का उत्थान दृश्य की ओर हुआ है इससे चित्भाव को प्राप्त हुआ है । जैसे शूद्र की संगति करके ब्राह्म भी आपको शूद्र मानने लगता है, तैसे ही स्वरूप के प्रमाद से जीवकला आपको चित्त जानने लगी है । अज्ञान से घेरा हुआ जीव महादीनभाव को प्राप्त होता है, जड़ देह के अभ्यास से कष्ट पाता है और काम, क्रोध, वात, पित्तादिक से जलता है । जैसी जैसी भावना होती है तैसा ही तैसा कर्म करता है और उन कर्मों की भावना से मिला हुआ भटकता है । जैसे रथ पर आरूढ़ होकर रथी चलता है तैसे ही जीव आत्मा मन प्राण और कर्मों से चलता है । हे मुनीश्वर । चैतन्य ही जड़ दृश्य को अंगीकार करके जीवत्वभाव को प्राप्त है और मन प्राणरूपी रथ पर चढ़कर पदार्थ की भावना से नाना प्रकार के भेद को प्राप्त हुए की नाईं स्थित होता है । जैसे जल ही तरंगभाव को प्राप्त होता है, तैसे ही चैतन्य ही नाना प्रकार होकर स्थित होता है । निदान यह जीवकला आत्मा की सत्ता को पाकर वृत्ति में फुरनरूप होती है । जैसे सूर्य की सत्ता को पाकर नेत्र रूप को ग्रहण करते हैं तैसे ही परमात्मा की सत्ता पाकर जीव वृत्ति में फुरता है और परमात्मा चित्त में स्थित हुआ फुरणरूप जीता है । जैसे घर में दीपक होता है तब प्रकाश होता है, दीपक बिना प्रकाश नहीं होता । अपने स्वरूप को भुलाकर जीव दृश्य की ओर लगा है इस कारण आधि व्याधि से दुःखी होता है । जैसे जब कमल डोडी के साथ लगता है तब उस पर भ्रमरे आन स्थित होते हैं, तैसे ही जब जीव दृश्य की ओर लगता है तब दुःख होता है और उससे जीव दीन हो जाता है । जैसे जल तरंगभाव को प्राप्त होता है- तैसे ही जीव अपनी क्रिया से बन्धायमान होता है । जैसे बालक अपनी परछाहीं को देखकर आपही अविचार से भय पाता है तैसे ही अपने स्वरूप के प्रमाद से जीव आपही दुःख पाता है और दीनता को प्राप्त होता है । हे मुनीश्वर! चिद्शक्ति सर्वगत अपना आप है । उसकी अभावना करके जीव दीनता को प्राप्त होता है । जैसे सूर्य बादल से घिर जाता है तैसे ही मूढ़ता से आत्मा का आवरण होता है पर जब प्राणों का अभ्यास करे तब जड़ता निवृत्त हो और अपना आप आत्मा स्मरण हो । जिनकी वासना निर्मल हुई है तो वह स्थिर हुई एकरूप हो जाती है और वे जीव जीवन्मुक्त होकर चिरपर्यन्त जीते हैं और हृदयकमल में प्राणों को रोककर शान्ति को प्राप्त होते हैं । जब काष्ठलोष्टवत् देह गिर पड़ती है तब पुर्यष्टका आकाश में लीन हो जाती है । जैसे आकाश में पवन लीन होता है तैसे ही उनका मन पुर्यष्टका वहाँ ही लीन हो जाती है । हे मुनीश्वर! जिनकी वासना शुद्ध नहीं हुई उनकी मृत्युकाल में आकाश में स्थित होती है और उसके अनन्तर फिर फुर आती तब उस वासना के अनुसार स्वर्ग नरक को देखने लगता है । जब शरीर मन और प्राण से रहित होता है तब शून्यरूप हो जाता है । जैसे पुरुष घर को त्यागकर दूर जा रहता है तैसे ही शरीर को त्यागकर मन और प्राण और ठौर जा रहते हैं और शरीर शून्य हो जाता है । हे मुनीश्वर! चिद्सत्ता सर्वत्र है परन्तु जहाँ पुर्यष्टका होती है वहाँ ही भासती है और चेतन का अनुभव होता है और ठौर नहीं होता । हे मुनीश्वर! जब यह जीव शरीर को त्यागता है तब पञ्चतन्मात्रा को ग्रहण करके संग ले जाता है और जहाँ इसकी वासना होती है वहाँ ही प्राप्त होता है । प्रथम इसका अन्तवाहक शरीर होता है, फिर दृश्य के दृढ़ अभ्यास से स्थूलभाव को प्राप्त हो जाता है और अन्तवाहकता विस्मरण

www.tantrik-astrologer.in

हो जाती है । जैसे स्वप्न में भ्रम से स्थूल आकार देखता है, तैसे ही मोह करके मरता है तब अपने साथ स्थूल आकार देखता है । फिर स्थूल देह में अहं प्रतीति करता है और उससे मिलकर क्रिया करता है तब असत्य को सत्य मानता है और सत्य को असत्य जानता है । इस प्रकार भ्रम को प्राप्त होता है । जब सर्वगत चिदंश से जीव मनरूप होता है तब जगत् भाव को प्राप्त होता है । जब देह से पुर्यष्टका निकल जाती है तब आकाश में जा लीन होती है और देह फुरने से रहित होती तब उसको मृतक कहते हैं और अपने स्वरूप शक्ति को विस्मरण करके जर्जरीभाव को प्राप्त होता है । जब जीव शक्ति हृदयकमल में मूर्छित होती है और प्राण रोके जाते हैं तब यह मृतक होता है । एवम् फिर जन्म लेता है और फिर मर जाता है । हे मुनीश्वर! जैसे वृक्ष में पत्र लगते हैं, और काल पाकर नष्ट हो जाते हैं और फिर नूतन लगते हैं, तैसे ही यह जीव शरीर को धारता है और नष्ट हो जाता है, फिर शरीर धारता है और वह भी नष्ट हो जाता है । जो वृक्ष के पत्र की नाईं उपजते और नष्ट होते हैं उनका शोक करना व्यर्थ है । हे मुनीश्वर! चैतन्यरूपी समुद्र में शरीररूपी अनेक तरंग बुद्बुदे उपजते हैं और नष्ट होते हैं उनका शोक करना व्यर्थ है । जैसे दर्पण में जो अनेक पदार्थ का प्रतिबिम्ब होता है सो दर्पण से भिन्न नहीं होता तैसे ही चैतन्य में अनेक पदार्थ भासते हैं । वह चैतन्य निर्मल आकाश की नाईं विस्तीर्णरूप है, उसमें जो पदार्थ फुरते हैं वे अनन्यरूप है और विधि शरीर भी वही रूप है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देहपातविचारो नामैकत्रिंशत्तमस्सर्गः ||31||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

दैवप्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे अर्द्धचन्द्रधारी! जो चैतन्यतत्त्व परमात्मा पुरुष है वह अनन्त और एक रूप है उसको यह द्वैत कहाँ से प्राप्त हुआ? भूत और भविष्यकाल कहाँ से दृढ़ हो रहे हैं? एक में अनेकता कहाँ से प्राप्त हुई है? बुद्धिमान दुःख को कैसे निवृत्त करते हैं और वह कैसे निवृत्त होता है? ईश्वर बोले, हे ब्राह्मण! ब्रह्म चैतन्य सर्वशक्त है । जब वह एक ही अद्वैत होता है तब निर्मलता को प्राप्त होता है । एक के भाव से द्वैत कहाता है और द्वैत की अपेक्षा से एक कहाता है पर यह दोनों कल्पनामात्र हैं । जब चित्त फुरता है तब एक और दो की कल्पना होती है और चित्त स्पन्द के अभाव हुए दोनों की कल्पना मिट जाती है और कारण से जो कार्य भासता है सो भी एकरूप है । जैसे बीज से लेकर फल पर्यन्त वृक्ष का विस्तार है सो एक ही रूप है और बढ़ना घटना उसमें कल्पना होती है, तैसे ही चैतन्य में चित्तकल्पना होती है तब जगत्ःरूप हो भासता है परन्तु उस काल में भी वही रूप है । हे मुनीश्वर! वृक्ष के समेत भी बीज एक वस्तुरूप है और कुछ नहीं हुआ परन्तु बीज फुरता है तब वृक्ष हो भासता है, तैसे ही जब शुद्ध चैतन्य में चेतन कलना फुरती है तब जगत्ःरूप हो भासता है । हे मुनीश्वर! कारण-कार्य विकाररूप जगत् असम्यक्ःदृष्टि से भासता है । जैसे जल में तरंग भासते हैं सो जलरूप है-जल से भिन्न नहीं, जैसे शश के सींग असत् हैं और जल में द्वैततरंग कलना असत् है-अज्ञान से भासती है, तैसे ही आत्मा में अज्ञान से जगत् भासता है । जैसे द्रवता से जल ही तरंगरूप हो भासता है तैसे ही फुरने से आत्मतत्त्व जगत्ःरूप हो भासता है और द्वैत नहीं । चैतन्य रूपी बेलि फैली है और उसमें पत्र, फल और फल एक ही रूप है । जैसे एक बेलि अनेकरूप हो भासती है तैसे ही एक ही चैतन्य जो अहं, त्वं, देश, काल आदिक विकार होकर भासता है सो वही रूप है । हे मुनीश्वर! जब सब ही एक चैतन्य है तब तेरे प्रश्न का अवसर कहाँ हो? देश, काल, क्रिया नीति, आदिक जो शक्ति-पदार्थ हैं सो एक ही चिदात्मा है । जैसे जल में जब द्रवता होती है तब तरंगरूप हो भासता है और उसका नाम तरंग होता है, तैसे ही ब्रह्ममें जगत् फुरता है तब अहं, त्वं आदिक नाना प्रकार के नाम होते हैं पर वह ब्रह्म, शिव, परमात्मा, चैतन्यसत्ता, द्वैत, अद्वैत आदिक नामों से अतीत है, वाणी का विषय नहीं । ऐसा निर्विकल्प निर्विषय तत्त्व सदा अपने आप में स्थित है । यह जगत् जो कुछ भासता है सो भी वही चैतन्यतत्त्व है । जैसे बेलि फूल और पत्र होकर फैलती है तैसे ही चैतन्य सर्वरूप होकर फैलता है । हे मुनीश्वर! महा चैतन्य में जब किंचन होता है तब जीवरूप होकर स्थित होता है और फिर द्वैतकलना को देखता है । जैसे स्वप्न स्वरूप त्यागकर परिच्छिन्न वपुको धारण करता है और द्वैतरूप जगत् देखता है पर जब जागता है तब अपने अद्वैतरूप को देखता है परन्तु जागे बिना भी द्वैत कुछ नहीं हुआ तैसे ही यह जाग्रत् जगत् भी कुछ है नहीं भ्रम से भासता है । जब यह जीव अपने वास्तवरूप की ओर सावधान होता है तब उसके अभ्यास से वही रूप हो जाता है । हे मुनीश्वर! इस जीव का आदि वपु अन्तवाहक है और संकल्प ही उसका रूप है, जब उसमें अहं भावना तीव्र होती है तब वही आधिभौतिक होकर भासता है । जब उसमें सत्यता दृढ़ हो जाती है तो उसकी भावना करके रागद्वेष से क्षोभायमान होता है । पर जब काकतालीयवत् अकस्मात् से हृदय में विचार उपजता है तब संकल्परूपी आवरण दूर हो जाता है और अपने वास्तवस्वरूप को प्राप्त होता है । जैसे बालक अपनी परछाहीं में वेताल कल्पकर भय पाता है तैसे ही जीव अपने संकल्प से आप ही भय पाता है । हे मुनीश्वर! यह जो कुछ जगत् भासता है सो सब संकल्पमात्र है, जैसे संकल्प हृदय में दृढ़ होता है तैसा ही भासने लगता है । प्रत्यक्ष देखो कि जो पुरुष कुछ कार्य करता है तो कर्तृत्वभाव

www.tantrikastrologer.in

उसके हृदय में दृढ़ होता है और कहता है कि यह कार्य मैं न करूँ, जब यही संकल्प दृढ़ होता है तब उस कार्य से आपको अकर्ता जानता है, तैसे ही दृश्य की भावना से जगत् सत्य दृढ़ हो गया है । जब दृश्य का संकल्प निवृत्त होता है और आत्मभावना में लगता है तब जगत्‍्भ्रम निवृत्त हो जाता है और आत्मा ही भासता है । हे मुनीश्वर परमार्थ से द्वैत कुछ है ही नहीं, सब संकल्प रचना है । संकल्प से रचा जो दृश्य है सो संकल्प के अभाव से अभाव हो जाता है जैसे मनोराज और गन्धर्वनगर मन से रचित होता है और जब संकल्प के अभाव हुए से अभाव होता है तब क्लेश कुछ नहीं रहता । हे मुनीश्वर! जगत् संकल्प की तुष्टता से जीव दुःख का भागी होता है । जैसे स्वप्न में संकल्प करके जीव दुःखी होता है । इस संकल्पमात्र की इच्छा त्यागने में क्या कृपणता है? जैसे स्वप्न में जो भोगता है सो सुख भी कुछ वस्तु नहीं भ्रममात्र है तैसे यह सुख भी भ्रममात्र है । हे मुनीश्वर! संकल्प विकल्प ने जीव को दीन किया है । जब संकल्प विकल्प को त्याग करता है तब चित्त अचित्त हो जाता है और ऊँचे पद में विराजमान होता है । जिस पुरुष ने विवेकरूपी वायु से संकल्परूपी मेघ को दूर किया है वह परम निर्मलता को प्राप्त होता है । जैसे शरत्‍्काल का आकाश निर्मल होता है तैसे ही संकल्प विकल्परूपी मल से रहित जीव उज्ज्वलभाव को प्राप्त होता है । संकल्प के त्यागे से जो शेष रहता है सो सत्तामात्र परमानन्द तेरा स्वरूप है । हे मुनीश्वर! आत्मा सर्वशक्तिरूप है, जैसी भावना होती है तैसा ही उसे अपनी भावना से देखता है इससे सब संकल्पमात्र है, भ्रम से उदय हुआ है और संकल्प के लीन हुए सब लीन हो जाता है । हे मुनीश्वर! संकल्परूपी लकड़ी और तृष्णारूपी घृत से जन्मरूपी अग्नि को यह जीव बढ़ाता है और फिर अन्त कदाचित नहीं होता । जब असंकल्प रूपी वायु और जल से इसका अभाव करे तब शान्त हो जाता है । जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है तैसे ही जन्मरूपी अग्नि का अभाव हो जाता है और संकल्परूपी वायु से तृण की नाईं भ्रमता है । हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी कंज की बेलि को जीव संकल्परूपी जल से सींचता है, असंकल्परूपी शोषता और विचाररूपी खड्ग से काटे तब उसका अभाव होता है । जो अभावमात्र है सो आभास के क्षय हुए अभाव हो जाता है । जैसे गन्धर्वनगर होता है तैसे ही यह जगत् असम्यक्ज्ञान से भासता है और सम्यक्‍्ज्ञान से लीन हो जाता है । जैसे कोई राजा स्वप्न में अपने को रंग देखे और पूर्व का स्वरूप विस्मरण करके दीनता को प्राप्त हो पर जब पूर्व का स्वरूप स्मरण आवे तब आपको राजा जाने और दुःख मिट जावे तैसे ही जीव को जब अपने पूर्व का वास्तव स्वरूप विस्मरण हो जाता है तब आपको परि च्छिन्न दीन और दुःखी जानता है पर जब स्वरूप का ज्ञान होता है तब सब दुःख का अभाव हो जाता है और जैसे शरत्‍्काल का आकाश निर्मल होता है तैसे ही निर्मल हो जाता है । जैसे वर्षाकाल के मेघ गये से आकाश निर्मल होता है तैसे ही अज्ञानरूपी मल से रहित जीव निर्मल होकर शुद्धपद को प्राप्त होता है । जो ऐसी युक्ति से भावना करता है कि मैं एक आत्मा और द्वैत से रहित हूँ तो वही होता है और द्वैत का अभाव हो जाता है और उत्तमपद ब्रह्मदेव पूज्य, पूजक और पूजा, किञ्चित निष्किंचन की नाईं चित्त एकरूप हो जाता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यान् दैवप्रतिपादनन्नाम द्वात्रिंशत्तमस्सर्गः ।।32।।

अनुक्रम

परमेश्वरोपदेश

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह देव निरन्तर स्थित है, द्वैत और एक पद से रहित है और द्वैत और एक संयुक्त भी वही है । संकल्प से मिलकर चेतनरूप संसार को प्राप्त हुआ है और जो संकल्प मल से रहित है वह संसार से रहित है । जब ऐसे जानता है कि `मैं हूँ इसी संकल्प से बन्धवान् होता है और जब इसके भाव से मुक्त होता है तब सुख दुःख का अभाव हो जाता है और शुद्ध निरञ्जन एकसत्ता सर्वात्मा आकाशवत् होता है इसी का नाम मुक्ति है । आकाशवत् व्यापक ब्रह्म होता है । वशिष्ठजी बोले हे प्रभो! जब मन में मन क्षीण होता है और इन्द्रियाँ मन में लीन होती हैं वह द्वितीय और तृतीयपद किसकी नाईं शेष रहता है? जो महासत्ता आत्मसत्ता सबको लीन करती है सो किसकी नाईं? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जब मन से मन को जिसके अंग इन्द्रियाँ हैं विचार करके छेदता है अथवा उपासना करके आत्मबोध प्राप्त होता है तब द्वैत एक की कल्पना नष्ट हो जाती है और जगज्जाल की सत्यता नष्ट हो जाती है उसके पीछे जो शेष रहता है सो आत्मतत्त्व प्रकाशता है । जैसे भूने बीज से अंकुर नहीं उपजता तैसे ही जब मन उपशम होता है तब उसमें जगत् सत्ता का अभाव हो जाता है और चैतन्यसत्ता चित्तसत्ता को भक्षण कर लेती है । जब मनरूपी मेघ की सत्ता नष्ट होती है तब शरत्ःकाल के आकाशवत् निर्मल आत्मसत्ता भासती है । जब चित्त की चपलता मिट जाती है तब परम निर्मल पावन चिन्मात्रतत्त्व प्राप्त होता है, एक द्वैत-और भाव-अभावरूपी संसार कल्पना मिट जाती है और समसत्तारूप तत्त्व जो सर्वव्यापक और संसारसमुद्र से पार करनेवाला प्राप्त होता है तब सुषुप्त की नाईं निर्भय बोध हो जाता है और शान्तिरूप आत्मा को पाकर शान्तरूप हो जाता है । हे मुनीश्वर! मन की क्षीणता का यह प्रथमपद तुमसे कहा है अब द्वितीयपद सुनो । जब चित्तशक्ति मन के मनन से मुक्त होती है तब चन्द्रमा के प्रकाश वत् शीतल हो जाता है, आकाशवत् विस्तृतरूप अपना आप भासता है और घन सुषुप्तरूप हो जाता है । जैसे पत्थर की शिलापोल से रहित होती है तैसे ही वह दृश्य से रहित घन सुषुप्त उसका रूप होता है और नमक के सदृश रसमय ब्रह्म हो जाता है जैसे आकाश में शब्द लीन हो जाता है तैसे ही वह चित्त आत्मा में लीन हो जाता है और जैसे वायु चलने से रहित अचल होता है तैसे ही चित्त अचल हो जाता है । जैसे गन्ध पुष्प में स्थित होती है तैसे ही चित्तवृत्ति आत्मतत्त्व में विश्राम को पाती है । वह आत्मसत्ता न जड़ है, न चेतन है, सर्व कल्पना से रहित अचैत्य चिन्मात्र बीजरूप सब सत्ताओं को धारण करनेवाली और देशकालके परिच्छेद से रहित है जिसको वह प्राप्त होती है उसको तुरीयापद भी कहते हैं । वह सर्वदुःख कलंक से रहित पद है । उस सत्ता को पाकर साक्षी की नाई स्थित होता है और सर्वत्र, सर्वदा सम स्थित होता है । सर्वप्रकाश वही है और शान्तिरूप है । उस आत्मसत्ता का जिसको आत्मतत्त्व से अनुभव होता है उसको द्वितीय पद प्राप्त होता है । हे मुनीश्वर! यह द्वितीयपद भी तुझसे कहा अब तृतीयपद सुन । जब आत्मतत्त्व में वृत्ति का अत्यन्त परिणाम होता है तब ब्रह्म, आत्मा आदिक नामों की भी निवृत्ति हो जाती है, भाव अभाव की कल्पना कोई नहीं फुरती और स्थान की नाईं अचल वृत्ति होकर परमशान्त और निष्कलंक सबसे उल्लंघित तुरीयातीतपद को प्राप्त होता है । जो सबका अन्त और सबका आधाररूप एक, अद्वैत, नित्य, चिन्मात्रतत्त्व है और तुरीया से भी आगे है जिसमें वाणी की गति नहीं । हे मुनीश्वर! सर्वकल्पना से रहित अतीतपद जो मैंने तुमसे कहा है उसमें स्थित हो । वही सनातनदेव है और विश्व भी वही रूप है । वही तत्त्व संवेदन के वश से ऐसा रूप होकर भासता है पर वास्तव में न कुछ प्रवृत्त है और न कुछ निवृत्त है,आकाशरूप समसत्ता अद्वैततत्त्व अपने आपमें स्थित और आकाशवत् निर्मल है और उसमें

www.tantrikastrologer.in

द्वैतभ्रम का अभाव है । एक चिद्घनसत्ता पाषाणवत् अपने आपमें स्थित है उसमें और जगत् में रञ्चक भी भेद नहीं । जैसे जल और तरंग में कुछ भेद नहीं होता तैसे ही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं । सम सत्ता शिव शान्तिरूप और सर्ववाणी के विलास से अतीत है इसकी चतुर्मात्रा है और तुरीया परमशान्त है । इतना कह बाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! इस प्रकार जब ईश्वर ने कहा और परम शान्ति रूप आत्मतत्व का प्रसंग वशिष्ठजी ने सुना तब दोनों की वृत्ति आत्मतत्त्व में स्थित हो गई और तूष्णीम हो गये मानो चित्र लिखे हैं-और मुहूर्त पर्यन्त चित्त की वृत्ति ऐसे ही रही । फिर ईश्वर जागे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने परमेश्वरोपदेशोनाम त्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ||33||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

देवनिर्णयो

बाल्मीकिजी बोले, कि एक मुहूर्त्त उपरान्त सदाशिवजी ने तीनों नेत्र खोले तो जैसे पृथ्वीरूपी डब्बे से सूर्य निकले तैसे ही उनके नेत्र निकले और जैसे द्वादश सूर्य का प्रकाश इकट्ठा हो तैसे ही उनका प्रकाश हुआ । उन्होंने देखा कि वशिष्ठजी के नेत्र मूँदे हुए हैं,तब कहा कि हे मुनीश्वर! जागो, अब नेत्र क्यों मूँदे हो? जो कुछ देखना था सो तुमने देखा अब समाधि लगाने का श्रम किस निमित्त करते हो? तुम सरीखे तत्त्ववेत्ताओं को किसी में हेयोपादेय नहीं होता । तुम जैसे बुद्धिमान हो तैसे ही आत्मदर्शी भी हो । जो कुछ पाने योग्य था सो तुमने पाया है और जानने योग्य जाना है । बालकों के बोध के निमित्त जो तुमने मुझसे पूछा था सो मैंने कहा है अब तुमको तूष्णीम रहने से क्या प्रयोजन है? हे रामजी! इस प्रकार कहकर सदाशिव ने मेरे भीतर प्रवेश करके चित्त की वृत्ति से जगाया और जब मैं जागा तब फिर ईश्वर ने कहा, हे वशिष्ठजी इस शरीर की क्रिया का कारण प्राणस्पन्द है । प्राणों से ही शरीर की चेष्टा होती है और उसमें आत्मा उदासीन की नाईं स्थित है वह न कुछ करता है, न भोगता है । जब जीव को अपने स्वरूप का प्रमाद होता है तब देह में अभिमान होता है और क्रिया करता और भोगता आपको मानता है इससे दुःख पाता है और इस लोक परलोक में भटकता है । जब आत्मविचार उपजता है तब आत्मा का अभ्यास होता है, देह अभिमान मिट जाता है और दुःख से मुक्त होता है । शरीर के नष्ट हुए आत्मा का नाश नहीं होता । शरीर चेतन होकर प्राणों से फुरता है, जब प्राण निकल जाते हैं तब शरीर मूक जड़रूप हो जाता है । चलाने और पवित्र करनेवाली जो संवित्‌शक्ति है वह आकाश से भी सूक्ष्म है । वह शरीर के नाश हुए नाश नहीं होती और जो नाश नहीं होती तो नाश का भ्रम कैसे हो? हे मुनीश्वर! आत्मतत्व ब्रह्मसत्ता सर्वत्र है परन्तु वहीं भासती है जहाँ सात्त्विकगुण का अंश मन होता है और प्राण होते हैं । मन और प्राणों सहित देह में भासती है । जैसे निर्मल दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब भासता है और आदर्श मलीन होता है तब मुख विद्यमान भी होता है परन्तु नहीं भासता है, तैसे ही मन और प्राण जब देह में होते हैं तब आत्मा भासता है और जब मन और प्राण निकल जाते हैं तब मलीन शरीर में आत्मसत्ता नहीं भासती । हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है परन्तु भासती नहीं जब उसका अभ्यास हो तब सर्वात्मरूप होकर भासती है । सर्वकलना से रहित शुद्ध शिवरूप सर्व की सत्तारूप वही है । शिव, ब्रह्मा, देवता, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, सूर्यादिक सब जगत् का आदि वपु वही है । वह एक देव शुद्ध चैतन्यरूप सब देवों का देव है, सब उसके नौकर हैं और सब उसके चित्त उल्लास हैं । हे मुनीश्वर! इस जगत् में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र जो बड़े हैं सो उसही तत्व से प्रकट हुए हैं जैसे अग्नि से चिनगारे उपजते हैं और समुद्र से तरंग प्रकट होते हैं तैसे ही हम उससे प्रकट हुए हैं यह अविद्या भी उसही से प्रकट हो अनेक शाखाओं को प्राप्त हुई है । देव, अदेव, वेद और वेद के अर्थ और जीव सब उस अविद्या की जटा हैं और अनन्तभाव को प्राप्त हुई हैं जो फिर-फिर उपजती और मिटती हैं । देश, काल, पृथिव्यादिक भी सब उसी से उत्पन्न हैं और सर्वसत्तारूप वही आत्मदेव है । हम जो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हैं सो हमारा परमपिता आत्मा ही है, सर्व का मूल बीज वही देव है और सब उससे पूजे हैं । जैसे वृक्ष से पत्र उपजते हैं तैसे ही सब उसी महादेव से उपजते हैं, सबका अनुभवकर्त्ता वही है और सबको सत्ता देनेवाला और सब प्रकाशों का प्रकाशक वही है । वह तत्त्ववेत्ताओं से पूजने योग्य है, सबमें प्रत्यक्ष है और सर्वदा सर्व प्रकार सबमें उदित आकार चैतन्य अनुभव रूप है । उसके आवाहन में मन्त्र, आसन आदिक सामग्री न चाहिये, क्योंकि वह सर्वदा अनुभवरूप से प्रत्यक्ष है और सर्व प्रकार सर्व ठौर में विद्यमान है ।

www.tantrikastrologer.in

जहाँ-जहाँ उसके पाने का यत्न करिये वहाँ-वहाँ आगे ही विद्यमान है । वह शिवतत्त्व आदि ही से सिद्ध है और मन वाणी में तीनोंरूप वही हो भासता है । सबकी आदि और पूज्य और नमस्कार करने योग्य है और जानने योग्य भी वही है । हे मुनीश्वर! ऐसा जो आत्मतत्त्व जरा, मृत्यु शोक और भय का काटनेवाला है उसको जीव आपसे आपही देखता है और उसके साक्षात्कार हुए चित्त बीज की नाईं हो जाता है फिर नहीं उगता । वह शिव तत्त्व जीव का भी बीज है और सर्वपद का पद वही है । अनुभवरूप आत्मा परमपद है, भिन्न दृष्टि का त्याग करो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देवनिर्णयो नाम चतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ||34||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

महेश्वरवर्णन

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह चिद्ॣरूप तत्त्व सबके भीतर स्थित है । अनुभवमय शुद्ध देव ईश्वर और सब बीज वही है । सर्व सारों का सार, कर्मों का कर्म और धर्मों का धर्म चैतन्यधातु निर्मलरूप सब कारणों का कारण और आप अपना कारण है । वह सर्व भाव अभाव का प्रकाशक और सर्व चेतनों की चैतन्यसत्ता परम प्रकाशरूप है । भौतिक प्रकाश से रहित और अलौकिक प्रकाश सब जीवों का जीव वही है । चैतन्य घन निर्मल आत्मा अस्ति तन्मयरूप है और सत् असत्ॣ से रहित महासत्ॣरूप है । सर्वसत्ता की सत्ता वही है । वही चिन्मात्रतत्त्व नाना रूप हो रहा है । जैसे एक ही आत्मसत्ता स्वप्न में आकाश, कन्ध, पहाड़ आदिक होकर भासती है तैसे ही नाना रंग रञ्जना होकर वही भासता है । जैसे सूर्य की किरणों में मरुस्थल की नदी अनेक कोटि किरणों से अनेक तरंग संयुक्त हो भासती है तैसे ही यह जगत् उसमें भासता है । हे मुनीश्वर! उसी आत्मतत्त्व का यह आभास प्रकाश है, उससे भिन्न कुछ नहीं । जैसे अग्नि से उष्णता भिन्न नहीं–वही रूप है, तैसे ही आत्मा से जगत् कुछ भिन्न नहीं– वही स्वरूप है । सुमेरु भी उसके आगे परमाणुरूप है; संपूर्ण काल उसका एक निमेषरूप है, कल्प भी निमेष और उन्मेषवत उदय और लय होते हैं और सप्त समुद्र संयुक्त पृथ्वी उसके रोम के अग्रवत् तुच्छ है । ऐसा वह देव है । वह संसाररचना को नहीं करता और कर्तृत्वभाव को प्राप्त होता है, बड़े कर्मों को करता भासता है तो भी कुछ नहीं करता, द्रव्यरूप दृष्टि आता है तो भी द्रव्य से रहित है तो भी द्रव्यवान् है, देहवान् नहीं तो भी देहवान् है और बड़ा देहवान् है तो भी अदेह है । सर्वका सत्तारूप वही देव है । ठंडी, भोलि, घले, मतचुल, पिंडली, माँगले, बेल,विलिमिला, लोबलाग, बुगुल, सभस इत्यादि वाक्य निर्थक हैं इनका अर्थ कुछ नहीं तो भी उस देव से सिद्ध होते हैं । ऐसा कुछ नहीं जो उस देव में असत् नहीं और ऐसा भी कुछ नहीं जो उस देव से सत् नहीं । हे मुनीश्वर! जिससे यह सर्व है, जो यह सर्व है और सर्व में नित्य है उस सर्वात्मा को मेरा नमस्कार है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे महेश्वरवर्णनन्नाम पञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः||35||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

नीतिनृत्यवर्णन

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! शब्द की सत्तारूप वही है, सर्व सत्तारूप रत्नों का डब्बा वही है और वही तत्त्व चमत्कार करके फुरता है । जैसे जल ही तरंग, फेन, बुदबुदे आदिक आकार हो करके फुरता है तैसे ही वह देव नाना प्रकार के आकार होकर फुरता है । वही फल और गुच्छेरूप होकर स्थित होता है और वही उनमें सुगन्धित होता है घ्राण इन्द्रिय में स्थित होकर आपही उसे सूँघता है, आपही त्वचा इन्द्रिय होता है, आपही पवन होकर चलता है, आपही ग्रहण करता है, आपही जलरूप होता है, आपही वायु होकर सुखाता है, आपही श्रवणेन्द्रिय और आपही शब्द होकर ग्रहण करता है । इसी प्रकार जिह्वा, त्वचा, नासिका, कर्ण और नेत्र होकर आपही स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और शब्द को ग्रहण करता है । उसी ने सब पदार्थ रचे हैं और उसी ने नीति रची है । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव और पञ्चम ईश्वर सदाशिव पर्यन्त वही देव इस प्रकार हुआ है और आपही साक्षीवत् स्थित होता है। जैसे दीपक के प्रकाश से मन्दिर की सर्वक्रिया होती हैं तैसे ही संसाररूपी मण्डप की सब क्रिया उसी साक्षी से होती हैं उसमें उसकी शक्ति नृत्य करती है और आप साक्षी रूप होकर देखता है । वशिष्ठजी बोले कि फिर मैंने पूछा, हे जगत्‌नाथ! शिव की शक्ति क्या है, कैसे स्थित है, देव को साक्षात् कैसे है और उसका नृत्य कैसे होता है? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! आत्मतत्त्व स्वभाव से अचल और शान्तरूप है । शिव परमात्मा निर्मल चिन्मात्ररूप और निराकार है । उसकी शक्ति इच्छा और काल, नीति, मोह, ज्ञान, क्रियाकर्त्रादि शक्ति हैं । उन शक्तियों का अन्त नहीं । वह अनन्तरूप चिन्मात्र देव है । यह जो मैंने तुझसे शक्ति कही है सो भी शिवरूप है भिन्न नहीं शिव और शक्ति एक रूप है और बहुत भासती है । जैसे पदार्थों में अर्थ शक्ति और आत्मा में साक्षी शक्ति कल्पित है तैसे ही कालशक्ति नृत्यक की नाईं ब्रह्माण्डरूपी नृत्यमण्डल में नृत्य करती है और क्रियाशक्ति भी कर्तृत्व से नृत्य करती है सो शक्ति कहाती है । जैसे आदिनीति हुई है ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त तैसे ही स्थित है-अन्यथा नहीं होती । हे मुनीश्वर! यह सम्पूर्ण जगत् नृत्य करता है । संसाररूपी नटिनी के प्रेरनेवाली नीति है और परमेश्वर परमात्मा साक्षीरूप है । वह सदा उदित प्रकाशरूप है और एकरस स्थित है नीति आदिक शक्ति भी उससे भिन्न नहीं वे वही रूप हैं-इससे सर्वदेव ही जानो द्वैत नहीं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने नीतिनृत्यवर्णनन्नाम षट्‌त्रिंशत्तमस्सर्गः ।।36।।

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

अन्तर्बाह्यपूजावर्णन

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह एक देव परमात्मा सन्तों से पूजने योग्य है । वह चिन्मात्र अनुभव आत्मा घटपटादिक सर्व में स्थित है और ब्रह्मादिक देवता और जीव सबके भीतर बाहर भी वही स्थित है । उस सर्वात्मा शान्तरूप देव का पूजन दो प्रकार से होता है । उस इष्टदेव का पूजन ध्यान है और ध्यान ही पूजन है । जहाँ जहाँ मन जावे वहाँ- वहाँ लक्ष्यरूप आत्मा का ध्यान करो । सबका प्रकाशक आत्मा ही है, चिद्रूप अनुभव से भीतर स्थित है और अहंता से सिद्ध है । वही सबका साररूप है और सबका आश्रयरूप है । उसका जो विराट्ूरूप है सो सुनो । वह अनन्त है, परमाकाश उसकी ग्रीवा है, अनेक पाताल उसके चरण हैं, अनेक दिशायें उसकी भुजा हैं, सर्व प्रकाश उसके शस्त्र हैं हृदयकोश कोण में स्थित है और ब्रह्माण्ड समूहों को परंपरा से प्रकाशता है । परमाकाश अपाररूप है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि देवता और जीव उसकी रोमावली हैं, त्रिलोकी में जो देहरूपी यन्त्र हैं उनमें इच्छादिक शक्तिरूप सूत्र व्यापा है जिससे सब चेष्टा करते हैं । वह देव एक ही है और अनन्त है । सत्तामात्र उसका स्वरूप है, सब जगज्जाल उसका विवृत्त है, काल उसका द्वारपाल है और पर्वतादिक ब्रह्माण्ड जगत् उसकी देह के किसी कोण में स्थित है । उस देव की चिन्तना करो । उसके सहस्त्र चरण हैं और सहस्त्र ही नेत्र, शीश और भुजा और भुजाओं के विभूषण हैं । सर्वत्र उसकी नासिका इन्द्रिय है, सर्वत्र त्वचा इन्द्रिय है और सर्व ओर मन है पर सर्व मननकला से अतीत है । सर्व ओर वही शिवरूप सर्वदा सर्व का कर्त्ता है, सर्व संकल्पों के अर्थ का फल दायक है और सर्वभूत के भीतर स्थित और सब साधनों को सिद्ध करता है । ऐसा देव सबमें सब प्रकार और सर्वदा काल स्थित है । उसी देव की चिन्तना करो और उसी देव के ध्यान में सावधान रहो । सदा उस ही के आकार रहना उस देव का बाहरी पूजन है । अब भीतर का पूजन सुनो ।हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! संवित्तमात्र जो देव है सो सदा अनुभव से प्रकाशता है । उसका पूजन दीपक करके नहीं होता और न धूप, पुष्प, दान, लेप और केशर से होता है । अर्घ्य, पाद्यादिक जो पूजा की सामग्री हैं उनसे भी देव का पूजन नहीं होता । उसका पूजन तो क्लेश बिना नित्य ही होता है । हे मुनीश्वर! एक अमृतरूपी जो बोध है उससे उस देव का सजातीय प्रत्यय ध्यान करना उसका परम पूजन है । हे मुनीश्वर! शुद्ध चिन्मात्र देव अनुभवरूप है उसका सर्वदाकाल और सर्व प्रकार पूजन करो, अर्थात् देखते, स्पर्श करते, सूँघते, सुनते, बोलते, देते, लेते, चलते, बैठते और इससे लेकर जो कुछ क्रिया हैं सब प्रत्येक चैतन्य साक्षी में अर्पण करो और उसी के परायण हो । इस प्रकार आत्मदेव का पूजन करो । हे मुनीश्वर! आत्मदेव का ध्यान करना ही धूप दीप है और सर्वसामग्री पूजन की यही है । ध्यान ही उस देव को प्रसन्न करता है और उससे परमानन्द प्राप्त होता है और किसी प्रकार से उस देव की प्राप्ति नहीं होती । हे मुनीश्वर! मूढ़ भी इस प्रकार ध्यान से उस ईश्वर की पूजा करे तो त्रयोदश निमेष में जगत् उदान के फल को पाता है और सत्रह निमेष के ध्यान से प्रभु को पूजे तो अश्व मेधयज्ञ के फल को पावे और केवल ध्यान से आत्मा का एक घड़ी पर्यन्त पूजन करे तो राजसूययज्ञ किये के फल को पावे । जो दो प्रहर पर्यन्त ध्यान करे तो लक्ष राजसूययज्ञ के फल को पावे और जो दिन पर्यन्त ध्यान करे तो असंख्य फल पावे । हे मुनीश्वर! यह परम योग है, यही परमक्रिया है और यही परम प्रयोजन है । हे मुनीश्वर! दोनों पूजा मैंने तुमसे कही । जिसको ये परमपूजा प्राप्त होती है वह परमपद को प्राप्त होता है, उसको सब देवता नमस्कार करते हैं और सब करके वह पुरुष पूजने योग्य होताहै ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने अन्तर्बाह्यपूजावर्णनन्नाम सप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः ||37||

www.tantrikastrologer.in

अनुक्रम

देवार्चनाविधान

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! अब तुम अभ्यन्तर का पूजन सुनो जो सर्वत्र पवित्र करने वाले को पवित्र करता है और सब तम और अज्ञान का नाश करता है । वह आत्मपूजन मैं तुमसे कहता हूँ जो सर्व प्रकार से सर्वदा काल में उस देव का पूजन होता है और व्यव धान कभी नहीं पड़ता, चलते, बैठते, जागते, सोते सर्व व्यवहार में नित्य ध्यान में रहता है । हे मुनीश्वर! इस संसार में संवित्ॎरूप चिन्मात्र नित्य स्थित है उसका पूजन करो । जो सब प्रत्ययों का कर्त्ता और सदा अनुभव से प्रकाशता है उसका आपसे आप पूजन करो । उठते चलते, खाते, पीते जो कुछ बाहर के अर्थ त्याग, ग्रहण और भोग हैं सबको करते भी उस देव की पूजा करो । हे मुनीश्वर! शरीर में-शिवलिंग चिह्न से रहित बोधरूप देव है, यथाप्राप्त में सम रहना उस देव का पूजन है । यथाप्राप्ति के समभाव में स्नान करके शुद्ध होकर बोधरूप लिंग का पूजन करो जो कुछ प्राप्त हो उसमें राग द्वेष से रहित होना और सर्वदा साक्षीरूप अनुभव में स्थित रहना यही उसका पूजन है । हे मुनीश्वर! सूर्य के भुवन आकाश में यही सूर्य होकर प्रकाशता है और चन्द्रमा के भुवन में चन्द्रमा होकर स्थित होता है । इनसे आदि लेकर जो पदार्थ के समूह हैं जैसी जैसी भावना से उनमें फुरना हुआ है वही रूप होकर वह देव स्थित है । हे मुनीश्वर! जो नित्य, शुद्ध, बोधरूप और अद्वैत है उसको देखना और किसी में वृत्ति न लगाना यही उस देव का पूजन है । प्राण अपानरूपी रथ पर आरूढ़ हुआ जो हृदय में स्थित है उसका ज्ञान ही पूजन है । वही सब कर्म कर्त्ता है, सब भोगों का भोक्ता और सब शब्दों का स्मरण करनेवाला और भागवतरूप है और सबकी भावना करनेवाला परम प्रकाश रूप है । ऐसा जो संवित् तत्त्व है उसको सर्वज्ञ जानकर चिन्तना करना वही उसका पूजन है । वह देव सब देहों में स्थित है तो भी आकाशवत् निर्मल है वह जाता भी है और नहीं जाता । प्राणरूपी आलय में प्रकाशता है, हृदय, कण्ठ, तालु, जिह्वा, नासिका और पीठ में व्यापक है शब्द आदिक विषयों को करता और मन को प्रेरता है । जैसे तिलों के आश्रय तेल है तैसे ही आत्मा सबका आश्रय है । वह कलनारूपी कलंक से रहित है और कलनागण से संयुक्त भी है । सम्पूर्ण देहों में वही एकदेव व्याप रहा है परन्तु प्रत्यक्ष हृदय में जो होता है सो निर्मल चिन्मात्र प्रकाशरूप है और कलनारूपी कलंक से रहित सदा प्रत्यक्ष है और अपने आपही से अनुभव होता है । सर्वदा सर्व पदार्थों का प्रकाशक प्रत्येक चैतन्य आत्मतत्त्व जो अपने आपमें स्थित है सो अपने फुरने से शीघ्र ही द्वैत की नाईं हो जाता है । हे मुनीश्वर! जो कुछ साकाररूप जगत् दृष्ट आता है सो सब विराट् आत्मा है । इससे आपको विराट् की भावना करो कि हाथ, पाँव, नख, केश यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरा देह है, मैं ही प्रकाशरूप एक देव हूँ नीति इच्छादिक मेरी शक्ति हैं और सब मेरी उपासना करते हैं । जैसे स्त्री श्रेष्ठ भर्तार की सेवा करती है तैसे ही शक्ति मेरी उपासना करती है, मन मेरा द्वारपाल है जो त्रिलोकी का निवेदन करनेवाला है, चिन्तना मेरी आने जानेवाली प्रतिहारी है नाना प्रकार के ज्ञान मेरे अंग के भूषण हैं, कर्म इन्द्रियाँ मेरे द्वार हैं और ज्ञानइन्द्रियाँ मेरे गण हैं । ऐसा मैं एक अनन्त आत्मा अखण्डरूप भेद से रहित अपने आपमें स्थित सबमें परिपूर्ण हूँ । हे मुनीश्वर! इसी भावना से जो एक देव की पूजा करता है वह परमात्मा देव को प्राप्त होता है । दीनता आदिक उसके क्लेश सब नष्ट हो जाते हैं, अनिष्ट की प्राप्ति में उसे शोक नहीं उपजता और इष्ट की प्राप्ति में हर्ष नहीं उप जता, न तोषवान होता है और न कोपवान् होता है, विषय की प्राप्ति से

www.tantrik-astrologer.in

न तृप्ति मानता है और न इनके वियोग से खेद मानता है, और न अप्राप्त की वाच्छा करता है, न प्राप्त के त्याग की इच्छा करता है, सर्वपदार्थ में समभाव रहता है । ऐसा पुरुष उस देव का परम उपासक है । ग्रहण त्याग से रहित सबमें तुल्य रहना और भेदभाव को प्राप्त न होना उस देव का उत्तम अर्चन है । हे मुनीश्वर! चैतन्य तत्त्व देव मैंने तुमसे कहा है जो देहों में स्थित है । जो वस्तु प्राप्त हो उसको अर्चन करके उसी के आगे रखना, सबका साक्षी आत्मा को देखना और किसी से खेदवान् न होना और उसमें अहंप्रतीति रखकर भिन्न दृश्यों की भावना न करना, यही उस देव की अर्चना है । हे मुनीश्वर! जो कुछ हो प्राप्त हो उसमें यत्न बिनातुल्य रहना जो भक्ष्य, लेह्य, चोष्य भोजन प्राप्त हो उसे देव के आगे रखके ग्रहण त्याग की बुद्धि उसमें न करना, यह उस देव का पूजना है । सब पदार्थों की प्राप्ति में देव की पूजा करने से अनिष्ट भी इष्ट हो जाता है । मृत्यु आवे तो देव की पूजा, जन्म हो तब देव की पूजा, दरिद्र आवे तब देव की पूजा, राग प्राप्त हो तो देव की पूजा और नाना प्रकार की विचित्र चेष्टा करनी सो सब देव के आगे पुष्प हैं, रागद्वेष में सम रहना ही उस देव की पूजा है सन्तों के हृदय में रहनेवाली जो मैत्री है कि सम्पूर्ण विश्व का मित्र होना उससे भी उस देव का पूजन है और भोग, त्याग, राग से जो कुछ प्राप्त हो उससे उस देव का पूजन करो । जो नष्ट हुआ सो हुआ और जो प्राप्त हुआ सो हुआ दोनों में निर्विकार रहना इससे उस देव का अर्चन करो । ये भोग आपातरमणीय हैं, होते भी हैं और नष्ट भी हो जाते हैं इनकी इच्छा न करना, सदा सन्तुष्ट रहना जैसे आनि प्राप्त हो उसमें राग द्वेष से रहित होना सो देव का अर्चन है । हे मुनीश्वर! जो कुछ प्रारब्ध से प्राप्त हो उससे आत्मा का अर्चन करो और इच्छा अनिच्छा को त्यागकर जो प्राप्त हो उससे उस देव का अर्चन करो हे मुनीश्वर! ज्ञानवान् न किसी की इच्छा करता है और न त्याग करता है जो अनिच्छित प्राप्त हो उसको भोगता है । जैसे समुद्र में नदी प्राप्त होती है और वह उससे न कुछ हर्ष मानता है न शोक करता है तैसे ही ज्ञानवान् इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में राग द्वेष से रहित यथाप्राप्त को भोगता है सो ही उस देव का पूजन है, देश, काल, क्रिया, शुभ अथवा अशुभ प्राप्त हो उसमें संसरण विकार को प्राप्त न होना उस देव की अर्चना है यदि द्रव्य अनर्थरूप हो तो भी समरस से मिला हुआ अमृत हो जाता है । जैसे षट्‍्रसस्वाद शक्कर से मिले हुए मधुर हो जाते हैं तैसे ही अनर्थरूपी रस समरस से मिले हुए अमृत हो जाते हैं, खेद नहीं करते और अनन्त रूप हो जाते हैं । चन्द्रमा की नाईं सब भावना अमृतमय हो जाती है । जैसे आकाश निर्लेप है तैसे ही समताभाव करके चित्त राग द्वेष से रहित निर्मल हो जाता है । द्रष्टा को दृश्य से मिला न देखना साक्षीरूप रहना ही देवकी अर्चना है । जैसे पत्थर की शिला निस्स्पन्द होती है तैसे ही विकल्प से रहित चित्त अचल होता है, सो ही देव की अर्चना है । हे मुनीश्वर! भीतर से आकाशवत् असंग रहना और बाहर से प्रकृति आचार में रहना, किसी का संग हृदय में स्पर्श न करना और सदा समभाव विज्ञान से पूर्ण रहना ही उस देव की उपासना है । जिसके हृदयरूपी आकाश से अज्ञानरूपी मेघ नष्ट हो गया है उसको स्वप्न में भी विकार नहीं प्राप्त होता और जिसके हृदयरूपी आकाश से अहंतारूपी कुहिरा शान्त हो गया है वह शरत्‍्काल के आकाशवत् उज्ज्वल होता है । हे मुनीश्वर! जिसको समभाव प्राप्त हुआ है और उससे उसने देव को पाया है वह पुरुष ऐसा हो जाता है जैसा नूतन बालक राग द्वेष से रहित होता है । जीवरूपी चेतना को उल्लंघ कर परम चैतन्यतत्त्व को प्राप्त होता है और सकल इच्छा और सुख दुःख भ्रम से मुक्तशरीर का नायक प्रतिष्ठित होता है सोही देव अर्चना है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे देवार्चनाविधानन्नामाष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः ||38||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

देवपूजाविचार

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जैसी कामना हो और जो कुछ आरम्भ करो अथवा न करो सो अपने आपसे चिन्मात्र संवित्ःतत्त्व की अर्चना करो इससे वह देव प्रसन्न होता है और जब देव प्रसन्न हुआ तब प्रकट होता है । जब उसको पाया और स्थित हुआ तब राग द्वेषादिक शब्दों का अर्थ नहीं पाया जाता । जैसे अग्नि में बर्फ का कणका नहीं पाया जाता तैसे ही फिर उसमें रागद्वेषादिक नहीं पाये जाते इससे उस देव की अर्चना करनी योग्य है । यदि राज्य अथवा दरिद्र व सुख दुःख प्राप्त हो उसमें सम रहना ही देव अर्चना करनी है । हे मुनीश्वर! शुद्धचिन्मात्र से प्रमादी न होना इसी का नाम अर्चना है । जो कुछ घटपट आदिक जगत् भासता है सो सब आत्मरूप है उससे भिन्न कुछ नहीं । वह आत्मा शिव शान्तिरूप अनाभास है और एक ही प्रकाशरूप है । सम्पूर्ण जगत् प्रतीतिमात्र है और आत्मा से भिन्न कुछ द्वैत वस्तु आभास नहीं । सर्वात्मा रूप अद्वैततत्त्व जब भासता है तब उसमें प्राप्त हुआ जानता है कि बड़ा आश्चर्य है, घटपटादिक सब वही रूप है और तो कुछ नहीं । हे मुनीश्वर यह सब सर्वात्मा अनन्त शिवतत्त्व है, जिसको ऐसे निश्चय प्राप्त हुआ है उसने देव की पूजा जानी है । घटपट आदिक जो पदार्थ हैं और पूज्य-पूजा-पूजक भाव सो सब ब्रह्मरूप है, निर्मलदेव आत्मा में कुछ भेद भाव नहीं है । हे मुनीश्वर! आत्मदेव सर्वशक्त और अनन्तरूप है जगत् में उससे भिन्न कुछ नहीं । निर्मल प्रकाश संवित्ःरूप आत्मा स्थित है, हमको तो ईश्वरदेव से भिन्न कुछ नहीं भासता और सर्वत्र, सर्व प्रकार वही सर्वात्मा सम्पूर्ण दृष्ट आता है । जिसको देश काल के परिच्छेद सहित ईश्वर भासता है वे हमारे उपदेश के पात्र नहीं, व ज्ञानबन्ध नीच हैं । उनकी दृष्टि को त्यागकर मेरी दृष्टि का आश्रय ले तो स्वस्थ, बीतराग और निरामय हो और यथाप्रारब्ध जो कुछ सुख दुःख आन प्राप्त हो खेद से रहित होकर उस देव का अर्चन करे तब शान्ति प्राप्त हो । हे मुनीश्वर! उस देव की सब प्रकार सर्वात्मा करके भावना करो-वही उसका पूजन है । वृत्ति का सदा अनुभवरूप में स्थित रहना और यथाप्राप्त में खेद से रहित विचरना यही उस देव की अर्चना है । जैसे स्फटिक के मन्दिर में प्रतिबिम्ब भासते हैं सो और कुछ नहीं निष्कलंक स्फटिक ही है, तैसे ही सब ओर से रहित और जन्मादिक दुःख से रहित निष्कलंक आत्मा है उसकी प्राप्ति से तेरे में जन्मादिक कलंक दुःख कुछ न रहेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देवपूजाविचारो नामैकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||39||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे देव! शिव किसको कहते हैं और ब्रह्म, आत्म, परमात्म, तत्सत्, निष्किञ्चन, शून्य, विज्ञान इत्यादिक किसको कहते हैं और ये भेदसंज्ञा किस निमित्त हुई हैं कृपा करके कहो? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जब सबका अभाव होता है तब अनादि अनन्त अनाभास सत्तामात्र शेष रहता है जो इन्द्रियों का विषय नहीं उसको निष्किञ्चन कहते हैं । फिर मैंने पूछा, हे ईश्वर! जो इन्द्रियाँ बुद्धि आदिक का विषय नहीं उसको क्योंकर पा सकते हैं? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जो मुमुक्षु हैं और जिनको वेद के आश्रयसंयुक्त सात्त्विकी वृत्ति प्राप्त हुई है उनको सात्त्विकीरूप जो गुरु शास्त्रनाम्नी विद्या प्राप्त होती है उससे अविद्या नष्ट हो जाती है और आत्मतत्त्व प्रकाश हो आता है । जैसे साबुन से धोबी वस्त्र का मल उतारता है तैसे ही गुरु और शास्त्र अविद्या को दूर करते हैं । जब कुछ काल में अविद्या नष्ट होती है तब अपना आप ही दिखता है । हे मुनीश्वर! जब गुरु और शास्त्रों का मिलकर विचार प्राप्त होता है, तब स्वरूप की प्राप्ति होती है द्वैतभ्रम मिट जाता है और सर्व आत्मा ही प्रकाशता है और जब विचार द्वारा आत्मतत्त्व निश्चय हुआ कि सर्व आत्मा ही है उससे कुछ भिन्न नहीं तो अविद्या जाती रहती है । हे मुनीश्वर! आत्मा की प्राप्ति में गुरु और शास्त्र प्रत्यक्ष कारण नहीं क्योंकि जिनके क्षय हुए से वस्तु पाइये उनके विद्यमान हुए कैसे पाइये? देह इन्द्रियों सहित गुरु होता है और ब्रह्म सर्व इन्द्रियों से अतीत है, इनसे कैसे पाइये? अकारण है परन्तु कारण भी है, क्योंकि गुरु और शास्त्र के क्रम से ज्ञान की सिद्धता होती है और गुरु और शास्त्र बिना बोध की सिद्धता नहीं होती । आत्मा निर्देश और अदृश्य है तो भी गुरु और शास्त्र से मिलता है और गुरु और शास्त्र से भी मिलता नहीं अपने आप ही से आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है । जैसे अन्धकार में पदार्थ हो और दीपक के प्रकाश से दीखे तो दीपक से नहीं पाया अपने आपसे पाया है । तैसे ही गुरु और शास्त्र भी है । यदि दीपक हो और नेत्र न हों तब कैसे पाइये और नेत्र हों और दीपक न हो तो भी नहीं पाया जाता जब दोनों हों तब पदार्थ पाया जाता है, तैसे ही गुरु और शास्त्र भी हों और अपना पुरुषार्थ और तीक्ष्णबुद्धि हो तब आत्मतत्त्व मिलता है अन्यथा नहीं पाया जाता । जब गुरु, शास्त्र और शिष्य की शुद्ध बुद्धि तीनों इकट्ठे मिलते हैं तब संसार के सुख दुःख दूर होते हैं और आत्मपद की प्राप्ति होती है । जब गुरु और शास्त्र आवरण को दूर कर देते हैं तब आपसे आप ही आत्मपद मिलता है । जैसे जब वायु बादल को दूर करती है तब नेत्रों से सूर्य दीखता है । अब नाम के भेद सुनो । जब बोध के वश से कर्म इन्द्रियाँ और ज्ञान इन्द्रियाँ क्षय हो जाती हैं उसके पीछे जो शेष रहता है उसका नाम संवित्ृतत्त्व आत्मसत्ता आदिक हैं । जहाँ ये सम्पूर्ण नहीं और इनकी वृत्ति भी नहीं उसके पीछे जो सत्ता शेष रहती है सो आकाश से भी सूक्ष्म और निर्मल अनन्त परमशून्यरूप है- कहाँ शून्य का भी अभाव है । हे मुनीश्वर! जो शान्तरूप मुमुक्षु मनन कलना से संयुक्त है उनको जीवन्मुक्त पद के बोध के निमित्त शास्त्र मोक्ष उपाय, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, लोकपाल, पण्डित, पुराण, वेद शास्त्र और सिद्धान्त रचे हैं और शास्त्रों ने चैतन्य ब्रह्म, शिव, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, सत्, चित्, आनन्द आदिक भिन्न भिन्न अनेक संज्ञा कही हैं पर ज्ञानी को कुछ भेद नहीं । हे मुनीश्वर! ऐसा जो देव है, उसका ज्ञानवान् इस प्रकार अर्चन करते हैं और जिस पद के हम आदिक टहलुये हैं उस परमपद को वे प्राप्त होते हैं । फिर मैंने पूछा, हे भगवन्! यह सब जगत् अविद्यमान है और विद्यमान की नाईं स्थित है सो कैसे हुआ है । समस्त कहने को तुमहीं योग्य हो? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जो ब्रह्म आदिक नाम से कहाता है वह केवल शुद्ध संवित्मात्र है और आकाश से भी सूक्ष्म है । उसके आगे आकाश भी ऐसा स्थूल है जैसा अणु के

www.tantrik-astrologer.in

आगे सुमेरु होता है । उसमें जब वेदनाशक्ति आभास होकर फुरती है तब उसका नाम चेतन होता है । फिर जब अहन्तभाव को प्राप्त हुआ-जैसे स्वप्न में पुरुष आपको हाथी देखने लगे तैसे आपको अहं मानने लगा, फिर देशकाल आकाश आदिक देखने लगा तब चेतन कला जीव अवस्था को प्राप्त हुई और वासना करनेवाली हुई, जब जीवभाव हुआ तब बुद्धि निश्चयात्मक होकर स्थित हुई और शब्द और क्रियाज्ञान संयुक्त हुई और जब इनसे मिलकर कल्पना हुई तब मन हुआ जो संकल्प का बीज है । तब अन्तवाहक शरीर में अहंरूप होकर ब्रह्मसत्ता स्थित हुई । इस प्रकार यह उत्पन्न हुई है । फिर वायुसत्ता स्पन्द हुई जिससे स्पर्श सत्ता त्वचा प्रकट हुई, फिर तेजसत्ता हुई प्रकाश सत्ता हुई और प्रकाश से नेत्रसत्ता प्रकट हुई, फिर जलसत्ता हुई जिससे स्वादरूप-रससत्ता हुई और उससे जिह्वा प्रकट हुई, फिर गन्धसत्ता से भूमि, भूमि से घ्राणसत्ता और उससे पिण्डसत्ता प्रकट हुई । फिर देशसत्ता, कालसत्ता और सर्व सत्ता हुईं जिनको इकट्ठा करके अहंसत्ता फुरी । जैसे बीज, पत्र, फूल, फलादिक के आश्रय होता है तैसे ही इस पुर्यष्टका को जानो । यही अन्तवाहक देह है । इन सबका आश्रय ब्रह्मसत्ता है । वास्तव में कुछ उपजा नहीं केवल परमात्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । जैसे तरंगादि में जल स्थित है तैसे ही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । हे मुनीश्वर! संवित् में जो संवेदन पृथकरूप होकर फुरे उसे निस्स्पन्द करके जब स्वरूप को जाने तब वह नष्ट हो जाती है । जैसे संकल्प का रचा नगर संकल्प के अभाव हो जाता है, तैसे ही आत्मा के ज्ञान से संवेदन का अभाव हो जाता है । हे मुनीश्वर! संवेदन तबतक भासता है जबतक उसको जाना नहीं, जब जानता है तब संवेदन का अभाव हो जाता है और संवित् में लीन हो जाता है, भिन्नसत्ता इसकी कुछ नहीं रहती । हे मुनीश्वर! जो प्रथम अणु तन्मात्रा थी सो भावना के वश से स्थूल देह को प्राप्त हुई और स्थूल देह होकर भासने लगी, आगे जैसे जैसे देशकाल पदार्थ की भावना होती गई तैसे तैसे भासने लगी और जैसे गन्धर्वनगर और स्वप्नपुर भासता है तैसे ही भावना के वश से ये पदार्थ भासने लगे हैं मैंने पूछा, हे भगवन्! गन्धर्वनगर और स्वप्नपुर के समान इसको कैसे कहते हो? यह जगत् तो प्रत्यक्ष दीखता है? वासना के वश से दीखता है कि अविद्यमान में स्वरूप के प्रमाद करके विद्यमान बुद्धि हुई है और जगत् के पदार्थों को सत् जानकर जो वासना फुरती है उससे दुःख होता है । हे मुनीश्वर! यह जगत् अविद्यमान है । जैसे मृगतृष्णा का जल असत्य होता है तैसे ही यह जगत् असत्य है उसमें वासना, वासक और वास्य तीनों मिथ्या हैं जैसे मृगतृष्णा का जल पान करके कोई तृप्त नहीं होता, क्योंकि जल ही असत् है, तैसे ही यह जगत् ही असत् है इसके पदार्थों की वासना करनी वृथा है । ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सब जगत मिथ्यारूप है । वासना, वासक और वास्य पदार्थों के अभाव हुए केवल आत्मतत्त्व रहता है और सब भ्रम शान्त हो जाता है । हे मुनीश्वर! यह जगत् भ्रममात्र है-वास्तव में कुछ नहीं जैसे बालक को अज्ञान से अपनी परछाहीं में वैताल भासता है और जब विचार करके देखे तब वैताल का अभाव हो जाता है तैसे ही अज्ञान से यह जगत् भासता है और आत्म विचार से इसका अभाव हो जाता है । जैसे मृगतृष्णा की नदी भासती है और आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासता है, तैसे ही आत्मा में अज्ञान से देह भासता है । जिसकी बुद्धि देहादिक में स्थिर है वह हमारे उपदेश के योग्य नहीं है । जो विचारवान् है उसको उपदेश करना योग्य है और जो मूर्ख भ्रमी और असत्ृवादी सत्ृकर्म से रहित अनार्य है उसको ज्ञानवान् उपदेश न करे । जिनमें विचार, वैराग्य, कोमलता और शुभ आचार हों उनको उपदेश करना योग्य है और जो इन गुणों से रहितृ हों उनको उपदेश करना ऐसे होता है जैसे कोई महासुन्दर और सुवर्णवत् कान्तिवाली कन्या को नपुंसक को विवाह देने की इच्छा करे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनन्नाम चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥40॥

www.tantrik-astrologer.in

अनुक्रम

परमार्थविचार

वशिष्ठजी बोले,हे भगवन्! वह जीव जो आदि में उत्पन्न हुआ और अपने साथ देहभ्रम देखने लगा उसके अनन्तर वह कैसे स्थित हुआ? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह जीव स्वप्न की नाईं सर्वगत चिद्घन आत्मा के आश्रय उपजकर अपने शरीर को देखता भया । हे मुनीश्वर! आदि जो जीव फुरकर प्रमाद को न प्राप्त हुआ और अपने स्वरूप ही में अहं प्रत्यय रहा, इस कारण ईश्वर होकर स्थित हुआ । उसको यह निश्चय रहा कि मैं सनातन नित्, शुद्ध, परमानन्द और अव्यक्तरूप परमपुरुष हूँ आत्मा की अपेक्षा से उसको जीव कहा है और सृष्टि जगत् की अपेक्षा करके उसको ईश्वर कहा । हे मुनीश्वर! वह जो आदि जीव है सो कभी विष्णुरूप होकर ब्रह्मा को नाभिकमल से उत्पन्न करता है, किसी सृष्टि में प्रथम ब्रह्मा हुआ है और विष्णु और रुद्र उससे हुए हैं । किसी सृष्टि में प्रथम रुद्र हुआ उससे विष्णु और ब्रह्मा हुए । चैतन्य आकाश में जैसा-जैसा संकल्प फुरा है तैसा ही तैसा होकर स्थित हुआ है । आदि जीव ने उपजकर जिस-जिस प्रकार का संकल्प किया है तैसा-तैसा होकर स्थित हुआ है वास्तव में सब असत्‌रूप है और अज्ञानरूप भ्रम करके हुआ है । जैसे परछाहीं में वैताल होता है तैसे ही अज्ञान करके सत्‌रूप हो भासता है । आदि पुरुष से लेकर जो सृष्टि है सो परमाकाश के एक निमेष में हुई है और उन्मेष में लय हो जाती है । एक निमेष के प्रमाद से कल्प के समूह व्यतीत हो जाते हैं और परमाणु परमाणु में सृष्टियाँ फुरती हैं उनमें कल्प और महाकल्प भासते हैं । कई सृष्टियाँ परस्पर दिखती हैं और कई अन्योन्य अदृश्यरूप हैं । इसी प्रकार सृष्टियाँ उसके स्पन्दकला में फुरी हैं और चमत्कार होता है और जब स्पन्दकला स्वरूप की ओर आती है तब लीन हो जाती है । जैसे स्वप्न का पर्वत जागे से लीन हो जाता है तैसे ही जाग्रत की सृष्टि अफुर हुए लीन हो जाती है । हे मुनीश्वर! जीव-जीव प्रति अपनी-अपनी सृष्टियों को कोई देशकाल रोक नहीं सकता, क्योंकि वे अपने-अपने संकल्प में स्थित हैं और आत्मा का चमत्कार है । जैसा फुरना फुरता है तैसा चमत्कार भासता है । हे मुनीश्वर न कुछ उपजा है, न कुछ नाश होता है, स्वतः चैतन्यतत्त्व अपने आपमें चमकता है । जैसे स्वप्ननगर उपजकर नष्ट हो जाता है और संकल्प का पहाड़ उपजकर मिट जाता है, तैसे ही जगत् उपजकर नष्ट हो जाता है । जैसे स्वप्न और संकल्प के पहाड़ को कोई रोक नहीं सकता तैसे ही अपनी-अपनी सृष्टि को देशकाल रोक नहीं सकता क्योंकि और ठौर में इनका सद्भाव नहीं । इससे यह जगत् अपने-अपने काल में सत्‌रूप है, आत्मा में सद्भाव नहीं संकल्परूप है । हे मुनीश्वर! जैसे आदितत्त्व से जीव ईश्वर फुरे हैं तैसे ही कर्‌म फुरे हैं । रुद्र से लेकर वृक्ष पर्यन्त सब एक क्षण में उसी तत्त्व से फुर आये हैं । सुमेरु आदिक भी अपने स्थित में रोकते हैं अन्य अणु को नहीं रोक सकते क्योंकि वहाँ है ही नहीं ।इससे आत्मा में सृष्टि आभासरूप है । हे मुनीश्वर! इस प्रकार सब जगत् मायामात्र है और भावना से भासता है, जब आत्मा का अभ्यास होता है, तब भेदकल्पना मिट जाती है और केवल उपशमरूप शिवतत्त्व भासता है । हे मुनीश्वर! निमेष का जो शत भाग है उसके अर्द्धभाग प्रमाद होने से नाना प्रकार का जगत् हो भासता है । सत् असत्‌रूप जगत् मन रूपी विश्वकर्मा बनाता है । आत्मतत्त्व न दूर है, न निकट है न नीचे है, न पूर्व में है और न पश्चिम में है सत् असत् के मध्य अनुभवरूप सर्व का ज्ञाता है । उसको प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण विषय नहीं कर सकते-जैसे जल से अग्नि नहीं निकलती । हे मुनीश्वर! जो कुछ तुमने पूछा था सो मैंने कहा उसमें चित्त के लगाने से

www.tantrik-astrologer.in

तुम्हारा कल्याण होगा । इतना कह सदाशिव बोले कि अब हम अपने वाञ्छित स्थान को जाते हैं, चलो पार्वती अपने स्थान को चलें । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार ईश्वर ने कहा तब मैंने अर्घ्यपाद्य से उनका पूजन किया और ईश्वर पार्वती और गणों को लेकर आकाशमार्ग को चले । जब तक मुझको दृष्टि आते रहे तबतक मैं उनकी ओर देखता रहा फिर अपने कुश के स्थान पर आन बैठा और जो कुछ ईश्वर ने उपदेश किया था वह मैं अपनी सुध बुध से विचारने लगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थविचारोनामैकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||41||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

विश्रान्ति आगम

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ ईश्वर ने मुझसे कहा सो मैं आप भी जानता था और तुम भी जानते हो! यह जगत् भी असत् है और देखनेवाला भी असत् है उस मायारूप जगत् में मैं तुमसे सत् क्या कहूँ और असत् क्या कहूँ? जैसे जल में द्रवता होती है तैसे ही आत्मा में जगत् है और जैसे पवन में स्पन्द और आकाश में शून्यता होती है तैसे ही आत्मा में जगत् है । हे रामजी! जोकुछ पतित प्रवाह से प्राप्त होता है उसी से मैं देवअर्चन करता हूँ । इस क्रम से मैं निर्वा सनिक हूँ और जगत् की क्रिया में भी निर्दुःख होकर चेष्टा करता हूँ, व्यवहार करता दृष्टि आता हूँ तो भी सदा शान्तिरूप हूँ और यथाप्राप्त आचाररूपी फूल से आत्मदेव की अर्चना करता हूँ-छेद भेद मुझको कोई नहीं होता है । हे रामजी! विषय और इन्द्रियों का सम्बन्ध सब जीवों को तुल्य है पर जो ज्ञानवान् हैं वे सावधान रहते हैं औरजो कुछ देखते, सुनते, बोलते, खाते सूँघते और स्पर्श करते हैं वह सब आत्मत्त्व में अर्चन करते हैं और आत्मा से भिन्न नहीं जानते । अज्ञानियों को कर्तृत्व-भोक्तृत्व का अभि मान होता है और उसमें वे दुःखी होते हैं । हे रामजी! तुम भी ऐसी दृष्टि का आश्रय करके संसाररूपी वन में निःसंग विचरो तो तुमको कुछ खेद न होगा । जिसकी वृत्ति इस प्रकार समान हो गई है उसको बड़ा प्राप्त हो व धन बाँधवों का वियोग हो तो भी उसको खेद नहीं होता । यह जो दृष्टि मैंने तुमसे कही है जब उसका आश्रय करोगे तब तुमको कोई दुःख न होगा । हे रामजी! सुख,दुःख, धन और बान्धवों का वियोग ये सब पदार्थ अनित्य हैं ये आते भी हैं और जाते भी हैं इनको आगमापायी जानकर बिचरो । यह संसार विषमरूप है, एकरस कदाचित नहीं रहता, इसको स्थित जानकर दुःखी न होना । हे रामजी! पदार्थ और काल जैसे जावे तैसे जावे और जैसे सुख दुःख आवे तैसे आवे ये सब आग मापायी पदार्थ हैं, आते भी हैं और जाते भी हैं । इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट की निवृत्ति में हर्षवान् न होना और अनिष्ट की प्राप्ति और इष्ट के वियोग से खेदवान् न होना, जैसे आवे तैसे जावे, जैसे जावे तैसे आवे, जिसको आना है वह आवेगा और जिसको जाना है वह जावेगा, ये सुख दुःख प्रवाहरूप हैं इनमें आस्था करके तपायमान न होना । हे रामजी! यह सब जगत् तुमही हो और तुमही जगत्रूप हो और चिन्मात्र विस्तृत आकार भी तुमही हो यदि सब तुमही हो तो हर्ष शोक किस निमित्त करते हो? इसी दृष्टि का आश्रय करके जगत् में सुषुप्त होकर विचरो तो तुरीयातीत अवस्था को प्राप्त होगे जो सम प्रकाशरूप है । हे रामजी! जो कुछ मुझे तुमसे कहना था सो कहा है आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो । पीछे तुमने पूछा था कि अनन्तरूप ब्रह्म में कलंक कैसे प्राप्त हुआ है? सो अब फिर प्रश्न करो कि मैं उत्तर दूँ । रामजी ने कहा, हे ब्रह्मन्! अब मुझको कुछ संशय नहीं रहा, मेरे सब संशय नष्ट हो गये हैं और जो कुछ जानना था सो मैंने जाना है । अब मैं परम अकृत्रिम को प्राप्त हुआ हूँ । हे मुनीश्वर आत्मा में न मैल है, न द्वैत है और न एक आदि कोई कल्पना है । पहिले मुझको अज्ञानता थी तब मैंने पूछा था, अब तुम्हारे वचनों से मेरी अज्ञानता नष्ट हुई इससे कुछ कलंक नहीं भासता । आत्मा में न जन्म है, न मरण है, सर्व ब्रह्म ही है । हे मुनीश्वर । प्रश्न संशय से उपजता है सो संशय मेरा नष्ट हो गया है । जैसे यन्त्री की पुतली हिलाने से रहित अचल होती है तैसे ही मैं संशय से रहित अचल स्थित हूँ और सर्व सारों का सार मुझको प्राप्त हुआ है । जैसे सुमेरु अचल होता है तैसे ही मैं अचल हूँ और कोई क्षोभ मुझको नहीं । ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो मुझको त्यागने योग्य हो और ऐसा भी कोई पदार्थ नहीं जो ग्रहण करने योग्य हो, न किसी पदार्थ की मुझको इच्छा है और न अनिच्छा है मैं शांतरूप स्थित हूँ, न स्वर्ग की मुझको इच्छा है न नरक से द्वेष है, सर्व ब्रह्मरूप मुझको

www.tantrik-astrologer.in

भासता है और मन्दराचल पर्वत की नाईं आत्मतत्त्व में स्थित हूँ । हे मुनीश्वर! जिसको अवस्तु में वस्तुबुद्धि होती हैऔर कलना हृदय में स्थित होती है वह किसी को ग्रहण करता है, किसी को त्याग करता है और दीनता को प्राप्त होता है । हे मुनीश्वर! यह संसार महासमुद्र है, उसमें रागद्वेषरूपी कलोलें हैं और शुभ अशुभ रूपी मच्छ रहते हैं । ऐसे भयानक संसारसमुद्र से अब मैं आपके प्रसाद से तर गया हूँ और सब सम्पदा के अन्त को प्राप्त होकर मेरे दुःख नष्ट हो गये हैं । सबके सार को प्राप्त होकर मैं पूर्ण आत्मा हूँ और अदीन पद और परम शान्त अभेदसत्ता को प्राप्त हुआ हूँ । आशारूपी हाथी को मैंने सिंह बनकर मारा है अब मुझको आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता । मेरे सब विकल्पजाल कट गये है, इच्छादिक विकार नष्ट हो गये हैं और दीनता जाती रही है । तीनों जगत् में मेरी जय है और मैं सदा उदितरूप हूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्रान्ति आगमनन्नाम द्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||42||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

चितसतासूचन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो केवल देह इन्द्रियों से करता है और मन से नहीं करता वह जो कुछ करता है सो कुछ नहीं करता। जो कुछ इन्द्रियों से इष्ट प्राप्त होता है उससे क्षणमात्र सुख प्राप्त होता है, उस क्षण की प्रसन्नता में जो बन्धवान् होता है वह बालकवत् मूर्ख है। जो ज्ञानवान् है वह उसमें बन्धवान् नहीं होता। हे रामजी! वाञ्छा ही इसको दुःखी करती है। जो सुन्दर विषयों की वाञ्छा होती है तो जब जीव यत्न से उनको प्राप्त करता है तो क्षण भर सुख होता है और जब वियोग होता है तब दुःखी होता है। इस कारण इनकी वाञ्छा त्यागना ही योग्य है। इनकी वाञ्छा तब होती हे जब स्वरूप का ज्ञान होता है और देहादिक में सद्भाव होता है जब देहादिक में अहंभाव होता है तब अनेक अनर्थ की प्राप्ति होती है, इससे हे रामजी! ज्ञानरूपी पहाड़ पर चढ़े रहना और अहन्तारूपी गढ़े में न गिरना। हे रामजी! आत्मज्ञानरूपी सुमेरु पर्वत पर चढ़कर फिर अहन्ता (अभिमान) करके गढ़े में गिरना बड़ी मूर्खता है। जब दृश्यभाव को त्यागोगे तब अपने स्वभावसत्ता को प्राप्त होगे, जो सम और शान्तरूप है और जिससे विकल्पजाल सब मिट जावेगा, समुद्रवत् पूर्ण होगे और द्वैतरूप न फुरेगा। हे रामजी! जब हृदय में विषय को विष जाने तब मन भी निरस हो जाता है और चित्त निसंग होता है। वास्तव में देखो तो सबमें सत्ता समानरूप ब्रह्म चिद्घन स्थित है पर अद्वैतरूप के प्रमाद से नहीं भासता। हे रामजी! आत्मा का अज्ञान ही बन्धनरूप है और आत्मा का बोध मुक्तरूप है, इससे बल करके आपही जागो तब इस बन्धन से मुक्त होगे। हे रामजी! जिसमें विषय का स्वाद नहीं और जिसमें उनका अनुभव होता है वह तत्त्व आकाशवत् निर्मलसत्ता वासना से रहित है। वासना से रहित होकर जो पुरुष कुछ क्रिया करता है वह विकार को नहीं प्राप्त होता। यदि अनेक क्षोभ आदि प्राप्त हों तो भी उसको विकार कुछ नहीं होता। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय ये तीनों आत्मरूप भासते हैं, जब ऐसे जाने तब किसी का भय नहीं रहता। चित्त के फुरने से जगत् उत्पन्न होता है और चित्त के अफुर हुए लीन हो जाता है। जब वासना सहित प्राण उदय होते हैं तब जगत् उदय होता है और जब वासना सहित प्राण लीन होते हैं तब जगत् भी लीन होता है। अभ्यास करके वासना और प्राणों को स्थित करो। जब मूर्खता उदय होती है तब कर्म उदय होते हैं और मूर्खता के लीन हुए कर्म भी लीन होते हैं, इससे सत्संग और सत्शास्त्रों के विचार से मूर्खता को क्षय करो। जैसे वायु के संग से धूलि उड़के बादल का आकार होती है तैसे ही चित्त के फुरने से जगत् स्थित होता है। हे रामजी! जब चित्त फुरता है तब नाना प्रकार का जगत् फुर आता है और चित्त के अफुर हुए जगत् लीन हो जाते है। हे रामजी! वासना शान्त हो अथवा प्राणों का निरोध हो तब चित्त अचित्त हो जाता है और जब चित्त अचित्त हुआ तब परमपद को प्राप्त होता है। हे रामजी! दृश्य और दर्शन सम्बन्ध के मध्य में जो परमात्मसुख है और जो एकान्तसुख है सो संवित् ब्रह्मरूप है, उसके साक्षात्कार हुए मन क्षय होता है। जहाँ चित्त नहीं उपजता सो चित्त से रहित अकृत्रिम सुख है। ऐसा सुख स्वर्ग में भी नहीं होता। जैसे मरुस्थल में वृक्ष नहीं होता तैसे ही चित्त सहित विषयों से सुख नहीं होता। चित्त के उपशम में जो सुख है सो वाणी से कहा नहीं जाता, उसके समान और कोई सुख नहीं और उससे अतिशय सुख भी नहीं। और सुख नाश हो जाता है पर आत्म सुख नाश नहीं होता–अविनाशी है और उपजने विनशने से रहित है। हे रामजी! अबोध से चित्त उदय होता है और आत्मबोध से शान्त हो जाता है। जैसे मोह से बालक को वैताल दिखाई देता है और मोह के नष्ट हुए नष्ट हो जाता है, तैसे ही अज्ञान से चित्त उदय होता है और अज्ञान के नष्ट हुए नष्ट होता है। यदि चित्त विद्यमान भी भासता है

www.tantrik-astrologer.in

तब भी बोध से निर्बीज होता है । जैसे पारस के साथ मिलकर ताँबा सुवर्ण होता है तो आकार तो वही दृष्टि आता है परन्तु ताँबे भाव का अभाव हो जाता है, तैसे ही अज्ञान से जगत् भासता है और ज्ञान से चित्त अचित्त हो जाता है, जड़ जगत् नहीं भासता, ब्राह्मसत्ता ही भासती है और सत्पद को प्राप्त होता है परन्तु नामरूप तैसे ही भासता है । हे रामजी! ज्ञानी का चित्त भी क्रिया करता दृष्टि आता है परन्तु चित्त अचित्त हो जाता है । जो अज्ञान करके भासता है सो ज्ञान करके शून्य हो जाता है । जो कुछ जगत् अबोध से भासता था सो बोध से शान्त हो जाता है फिर नहीं उपजता । वह चित्त शान्तपद को प्राप्त होता है । कुछ काल तो वह भी तुरीया अवस्था में स्थित हुआ बिचरता है फिर तुरीयातीत पद को प्राप्त होता हे । अधः, ऊर्ध्व, मध्य सर्वब्रह्म ही इस प्रकार अनेक होकर स्थित हुआ है । अनेक भ्रम करके भी एक ही है और सर्वात्मा ही है-चित्तादिक कुछ नहीं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तसत्तासूचनन्नाम त्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥43॥

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

विल्वोपाख्यान

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब तुम संक्षेप से एक अपूर्व और आश्चर्य बोध का कारण दृष्टान्त सुनो । एक वेलफल है जिसका अनन्त योजन पर्यन्त विस्तार है और जिसे अनन्त युग व्यतीत हो गये हैं जर्जरीभाव को कदाचित् नहीं प्राप्त होता । वह अनादि है उसमें अविनाशी रस है इससे कभी नाश नहीं होता और चन्द्रमा की नाईं सुन्दर है । सुमेरु आदिक जो बड़े पहाड़ हैं उनको महाप्रलय का पवन तृणों की नाई उड़ाता है पर वह पवन भी उसको नहीं हिला सकता । हे रामजी! योजनों की अनन्त कोटानिकोट संख्या है पर उसकी संख्या नहीं की जाती । ऐसा वह बेलफल है और बहुत बड़ा है । जैसे सुमेरु के निकट राई का दाना सूक्ष्म और तुच्छ भासता है तैसे ही उस बेलफल के आगे ब्रह्माण्ड सूक्ष्म और तुच्छ भासता है । यह बेल रस से पूर्ण है, कभी गिरता नहीं और पुरातन है । उसका आदि, अन्त और मध्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादिक भी नहीं जान सकते और न उसके मूल को कोई जान सकता है, न मध्य को कोई जान सकता है । उसका अदृष्ट आकार है और अदृष्ट फल है, अपने प्रकाश से प्रकाशता है, उसका धन आकार है, सदा अचल है किसी विकार को नहीं प्राप्त होता और सत्, निर्मल, निर्विकार, निरन्तररूप निरन्ध्र और चन्द्रमा की नाईं शीतल, सुन्दर है । उसमें ज्ञान संवित् रूपी रस है सो अपना रस आपही लेता है और सबको देता है और सबको प्रकाशकर्ता भी वही है । उसमें अनेक चित्ररेखों ने निवास किया है परन्तु वह अपने स्वरूप को नहीं त्यागता अनेकरूप होकर भासता है और उसमें स्पन्दरूपी रस फुरता है । तत्त्वं, इदं, देश, काल, क्रिया, नीति, राग, द्वेष, हेयोपादेय, भूत, भविष्यत, काल, प्रकाश, तम, विद्या, अविद्या इत्यादि कलना जाल उस रस के फुरने से फुरते हैं । वह बेल आत्मरूप है और अनुभवरूपी उसमें रस है । वह सदा अपने आपमें स्थित और नित्य शान्तरूप है । उसको जानकर पुरुष कृतकृत्य होता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विल्वोपाख्यानन्नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ।।44।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

शिलाकोशउपदेश

रामजी बोले, हे भगवन्! सर्वधर्मों के वेत्ता आपने यह बेलरूपी महाचिद्घन सत्ता कही सो मुझे ऐसे निश्चय हुआ कि चैतन्य ही अहंतादिक जगत् हो भासता है भेद रंचक भी नहीं एक द्वैत कलना सर्व वही है । वशिष्ठजी बोले हे रामजी! जैसे ब्रह्माण्ड की मज्जा सुमेरु आदिक पृथ्वी है तैसे ही चैतन्य बेल की मज्जा यह ब्रहमाण्ड है । सब जगत् चैतन्य बेलरूप है-भिन्न नहीं और उस चैतन्य का विनाश नहीं हो सकता । हे रामजी! चैतन्यरूपी मिरचे के बीज में जगत्ूरूपी चमत्कार तीक्ष्णता है सो सुषुप्तवत् निर्मल है और शिला के अन्तरवत् अमिश्रित है । हे रामजी! अब और आश्चर्यरूप एक आख्यान सुनो कि महासुन्दर प्रकाशसंयुक्त स्निग्ध और शीतल स्पर्श है और विस्तृतरूप एक शिला है सो महानिरन्ध्र और घनरूप है । उसमें कमल उपजते है और उसकी ऊर्ध्व बेल है अधः मूल है और अनेक शाखाएँ हैं । रामजी बोले, हे भगवन्! सत्य कहते हो यह शिला मैंने भी देखी है कि नदी में विष्णु की मूर्ति शालग्राम है । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे तो तुम जानते हो और देखा भी है परन्तु जो शिला मैं कहता हूँ वह अपूर्व शिला है और उसके भीतर ब्रह्माण्ड के समूह हैं और कुछ भी नहीं । हे रामजी! चैतन्यरूपी शिला जो मैंने तुमसे कही है उसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हैं, उस घन चैतन्यता से शिला वर्णन की है । वह अनन्तघन और निरन्ध्र है और आकाश, पृथ्वी पर्वत, देश, नदियाँ, समुद्र इत्यादिक सबही विश्व उस शिला के भीतर स्थित है और कुछ नहीं । जैसे शिला के ऊपर कमल लिखे होते हैं सो शिलारूप हैं, शिला से भिन्न नहीं, तैसे ही यह जगत् आत्मरूपी शिला में है, आत्मा से भिन्न नहीं । हे रामजी! भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों काल उस शिला की पुतलियाँ हैं । जैसे शिल्पीपुतलियाँ कल्पता है तैसे ही यह जगत् आत्मा में है उपजा नहीं, क्योंकि मनरूपी शिल्पी कल्पता है और उससे नाना प्रकार जगत् भासता है, आत्मा में कुछ उपजा नहीं । जैसे सुषुप्तरूप शिला के ऊपर कमल रेखा लिखी होती है वह शिला से भिन्न नहीं, तैसे ही यह जगत् आत्मा में है आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे शिला में पुतली होती हैं सो उदय अस्त नहीं होतीं शिला ज्यों की त्यों है, तैसे ही आत्मा में जगत उदय अस्त नहीं होता, क्योंकि वास्तव में कुछ नहीं है । आत्मा में द्वैत कल्पना अज्ञान से भासती है जब बोध होता हैं तब शान्त हो जाती है । जैसे समुद्र में पड़ी जल की बूँद समुद्ररूप हो जाती है तैसे ही बोध से कल्पना आत्मा में लीन हो जाती है । हे रामजी! चैतन्यआत्मा अनन्त है और उसमें कोई विकार और कल्पना नहीं है पर अज्ञान से कल्पना भासती है और ज्ञान से लीन हो जाती है । विकार भी आत्मा के आश्रय भासते हैं पर आत्मविकार से रहित है । ब्रह्म से विकार उत्पन्न होते हैं और ब्रह्म ही में स्थित हैं पर वास्तव में कुछ हुए नहीं, सब आभासमात्र हैं । जैसे किरणों में जलाभास होता है तैसे ही ब्रह्म में जगत् विकार आभास होता है । जैसे बीज में पत्र, डाल, फूल और फल का विस्तार होता है और बीजसत्ता सब में मिली होती है बीज से कुछ भिन्न नहीं होता, तैसे ही चिद्घन आत्मा के भीतर जगत् विस्तार है सो चिद्घन आत्मा से भिन्न नहीं, वही अपने आपमें स्थित है और जगत् भी वही रूप है । यदि एक मानिये तो द्वैत भी होता है- और यदि एक नहीं कहा जाता तो द्वैत कहाँ हो? जगत् और आत्मा में कुछ भेद नहीं अद्वैत आत्मा ही अपने आप में स्थित है । जैसे शिला में मूर्ति लिखी होती है सो शिला रूप है, तैसे ही जगत् आत्मारूप है और जैसे शिला में भिन्न-भिन्न विषममूर्ति होती हैं और आधाररूप शिला अभेद है तैसे ही आत्मा में जगन्मूर्ति भिन्न भिन्न विषमरूप भासती है और चैतन्यरूप आधार अभेद है । ब्रह्मसत्ता समान सुषुप्तवत् सम स्थित है बड़े विकार भी उसमें दृष्टि आते हैं परन्तु वास्तव सुषुप्तवत् विकार से रहित स्थित है और फुरने से रहित चैतन्यरूप

www.tantrik-astrologer.in

शिला स्थित है उस नित्य शान्त चिद्घनरूप सत्ता में यह जगत् कल्पित है अधिष्ठान सत्ता सदा सर्वदा शान्तरूप है भेद कदाचित नहीं जैसे जल में तरंग अभेदरूप है और सुवर्ण भूषण अभिन्नरूप है तैसे आत्मा में जगत् अभिन्नरूप है

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिलाकोशउपदेशोनाम पञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||45||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

सत्ताउपदेश

वशिष्ठजी बोले हे रामजी! जैसे बीज के भीतर फूल, फल और सम्पूर्ण वृक्ष होता है सो आदि भी बीज है और अन्त भी बीज है जब फल परिपक्व होता है तब बीज ही होता है तैसे आत्मा भी जगत् में है परन्तु सदा अच्युत और सम है कदाचित् भेद विकार और परिणाम को प्राप्त नहीं हुआ अपनी सत्ता से स्थित है जगत् के आदि, मध्य, अन्त में वही है कुछ और भाव को प्राप्त नहीं हुआ देशकाल कर्म आदिक जो कुछ कलना भासती है सो वही रूप है जो कुछ शब्द और अर्थ है वह आत्मा से भिन्न नहीं जैसे वृक्ष के आदि भी बीज है और अन्त भी बीज है और जो कुछ मध्य में विस्तार भासता है वह भी वही रूप है भिन्न कुछ नहीं तैसे जगत् के आदि भी आत्मसत्ता है अन्त भी आत्मसत्ता है जो कुछ मध्य में भासता है वह भी वही रूप है । हे रामजी! चैतन्यरूपी महाआदर्श में सम्पूर्ण जगत् प्रति बिम्ब होता है और सम्पूर्ण जगत् संकल्पमात्र है जैसा जैसा किसी में फुरना दृढ़ होता है तैसे ही आत्मसत्ता के आश्रित होकर भासता है जैसे चिन्तामणि में जैसा कोई संकल्प धारता है तैसा ही प्रकट हो जाता है सो संकल्पमात्र ही होता है, तैसे जैसी जैसी भावना कोई करता है तैसी तैसी आत्मा के आश्रित होकर भासती है । अनन्त जगत् आत्मरूपी मणि के आश्रित स्थित होते हैं जैसी कोई भावना करता है तैसी उसको हो भासती है । हे रामजी! आत्मरूपी डब्बे से जगत्ूरूपी रत्न निकलते हैं । जैसा फुरना होता है तैसा ही जगत भासि आता है । जैसे शिला के ऊपर रेखा होती है और नाना प्रकार के चित्र भासते हैं सो अनन्यरूप है । तैसे ही आत्मा में जगत् अनन्यरूप है । और जैसे शिला के ऊपर शंखचक्रादिक रेखा भासती हैं तैसे ही आत्मा में यह जगत् भासता है सो आत्मरूप है । आत्मारूपी शिला निरन्ध्र है, उसमें छिद्र कोई नहीं जैसे जल में तरंग जलरूप होते हैं तैसे ही ब्रह्म में जगत् ब्रह्मरूप है । वह ब्रह्म सम, शान्त रूप और सुषुप्तवत् स्थित है उसमें जगत् कुछ फुरा नहीं शिला की रेखावत् है । जैसे बेल के भीतर मज्जा होती है, तैसे ही ब्रह्म में जगत् स्थित है और जैसे आकाश में शून्यता, जल में द्रवता और वायु में स्पन्दता होती है, तैसे ही ब्रह्म में जगत् है ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं । जैसे तरु और वृक्ष में कुछ भेद नहीं तैसे ही ब्र ह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं-ब्रह्म ही जगत् है और जगत् ही ब्रह्म है । हे रामजी! इसमें भाव-अभाव भेद कल्पना कोई नहीं ब्रह्मसत्ता ही प्रकाशती है और ब्रह्म ही जगत्ूरूप होकर भासता है । जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणें जलरूप होकर भासती है, तैसे ही ब्रह्म जगत्ूरूप होकर भासता है । हे रामजी! सुमेरु आदिक पर्वत और तृण, वन और चित्त जगत् परिणाम से लेकर भूतों को विचार देखिये तो परमसत्ता हो भासती है और सब पदार्थों में सूक्ष्मभाव से वही सत्ता व्यापी है! जैसे जल का रस वनस्पति में व्यापा हुआ है, तैसे ही सब जगत् में सूक्ष्मता में सूक्ष्मता करके आत्मसत्ता व्यापी हुई है । जैसे एक ही रस सत्ता, वृक्ष, तृण और गुच्छों में व्यापी हुई है और एक ही अनेकरूप होकर भासती है, तैसे ही एक ही ब्रह्मसत्ता अनेकरूप होकर भासती है । हे रामजी! जैसे मोर के अण्डे में अनेक रंग होते हैं और जब अण्डा फूट जाता है तब उससे शनैः शनैः अनेक रंग प्रकट होते हैं सो एक ही रस अनेक रूप हो भासता है, तैसे ही एक ही आत्मा अनेकरूप से जगत् आकार होकर भासता है । जैसे मोर के अण्डे में एक ही रस होता है परन्तु जो दीर्घसूत्री अज्ञानी है उनको भविष्य के अनेक रंग उसमें भासते हैं सो अनउपजे ही उपजे भासते हैं, तैसे ही यह जगत् अनउपजा ही नानात्व अज्ञानी के हृदय में स्थित होता है और जो ज्ञानवान् हैं उनको एक रस ब्रह्मसत्ता ही भासती है । जैसे मोर का रस परिणाम को नहीं प्राप्त हुआ एकरस है और जब परिणाम को प्राप्त होकर नानारूप हुआ तब भी एक रस है, तैसे ही यह जगत् परमात्मा में भासता है

www.tantrikastrologer.in

तो भी परमात्मा ही है और जब नानारूप होकर भासता है तो भी भेद नहीं है परिणाम को नहीं प्राप्त हुआ परन्तु अज्ञानी को नानात्व भासता है और यह है कि जैसे मोर के अण्डे में नानात्व कुछ हुआ नहीं पर जिसकी दुर्दृष्टि है उसको उसमें अनउपजी नानात्व भासती है और जिसकी दुर्दृष्टि नहीं उसको बीज ही भासता है, नानात्व नहीं भासता, तैसे ही जिनको अज्ञानरूपी दुर्दृष्टि है उनको अनउपजा ही जगत नानात्व हो भासता है और जो अज्ञान दृष्टि से रहित हैं उनको एक ही ब्रह्म भासता है और कुछ नहीं भासता । हे रामजी! नानात्व भासता है तो भी कुछ नहीं , जैसे मोर के अण्डे में नानारंग भासते हैं तो भी एक रूप है, तैसे ही इस जगत् में भिन्न-भिन्न पदार्थ भासते हैं तो भी एक ब्रह्मसत्ता है, द्वैत कुछ नहीं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सत्ताउपदेशो नाम षटचत्वारिंत्तमस्सर्गः ||46||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

ब्रह्मएकताप्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे अनउपजे कान्तिरंग मयूर के अण्डे में होते हैं सो बीज से भिन्न कुछ नहीं, तैसे ही अहं त्वं आदिक जगत् आत्मा में अनउदय ही उदयरूपी भासता है । जैसे बीज में उन रंगों की उदय भी इनउदयरूप है, तैसे ही आत्मा में जगत् की उदय भी अनउदयरूप है । आत्मसत्ता अशब्दपद है वाणी से कुछ कहा नहीं जाता ऐसा सुख तथा और किसी स्थान में भी नहीं है जैसा सुख आत्मा में स्थित हुए पाया जाता है । हे रामजी! आत्मसुख में विश्रान्ति पाने के निमित्त मुनीश्वर, देवता, सिद्ध और महाऋषि दृश्यदर्शन का सम्बन्ध फुरने को त्यागकर स्थित होते हैं इससे वह उत्तम सुख है । संवित् में संवेदन का फुरना जिनको निवृत्त हुआ है उन पुरुषों को दृश्यभावना कोई नही फुरती और न कोई कर्म उनको स्पर्श करता है, प्राण भी उनके निस्स्पन्द होते हैं,चित चेतन के सम्बन्ध से रहित चित्र की मूर्तिवत् स्थित होते हैं और शान्तरूप स्थित होते हैं । हे रामजी! जब चित्तकला फुरती है तब संसारभ्रम प्राप्त होता है और जब चित्त का फुरना मिट जाता है तब शान्तरूप अद्वैत स्थित होता है । जैसे युद्ध राजा की सेना करती है और जीत हार राजा की होती है तैसे ही चित्त के फुरने के द्वारा आत्मा में बन्ध होता है । यद्यपि आत्मा सत्‌्रूप और अच्युत है परन्तु मन, बुद्धि और अन्तःकरण के द्वारा आत्मा में बन्ध मोक्ष भासता है । आत्मा सबका प्रकाशक है-जैसे चन्द्रमा की चाँदनी वृक्षादिकों को प्रकाशती है, तैसे ही आत्मा सब पदार्थों को प्रकाशता है । वह आत्मा न दृश्य है, न उपदेश का विषय है, न विस्ताररूप है, न दूर है, केवल चैतन्यरूप अनुभव आत्मा है, वह न देह है, न इन्द्रिय है, न गुण है, न चित्त है, न वासना है, न जीव है, न स्पन्द है, न और को स्पर्श करता है, न आकाश है, न सत् है, न असत् है, न मध्य है, न शून्य है, न अशून्य है, न देश, काल, वस्तु है, न अहं है, न इतर इत्या दिक है, सर्व शब्दों से रहित प्रकाशता है और केवल अनुभवरूप है । उसका न आदि है, न अन्त है, न उसे शस्त्र काटते हैं, न उसे अग्नि जला सकती है, न जल गला सकता है, न यह है, न वह है, न उसे वायु सोख सकती है और न किसी की सामर्थ्य उसपर चलती है । वह चित्‌्रूपी आत्मतत्त्व है न जन्मता है और न मरता है ।देहरूपी घट कई बार उपजते हैं और कई बार नष्ट होते हैं और आत्मरूपी आकाश सबके भीतर बाहर अखण्ड अविनाशी है । जैसे अनेक घटोंमें एकही आकाश स्थित होता है तैसे ही अनेक पदार्थों में एकही ब्रह्म सत्ता आत्मरूप से स्थित है । हे रामजी! जो कुछ स्थावर-जंगम जगत् दृष्ट आता है सो सब ब्रह्मरूप है जो निर्धर्म, निर्गुणम निरवयव निराकार, निर्मल, निर्विकार है और आदि अन्त से रहित, सम और शान्तरूप है । ऐसी दृष्टि का आश्रय करके स्थित हो । हे रामजी! इस दृष्टि का आश्रय करोगे तो बड़े कार्य भी तुमको स्पर्श न करेंगे । जैसे आकाश को बादल स्पर्श नहीं करते तैसे ही तुमको कर्म स्पर्श न करेंगे । काल, क्रिया, कारण, कार्य, जन्म, स्थिति, संहार आदिक जो संसरणरूप संसार है सो सब ब्रह्मरूप है । इसी दृष्टि का आश्रय करके बिचरो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मएकताप्रतिपादनन्नाम सप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||47||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

स्मृतिविचारयोग

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यदि ब्रह्म में कोई विकार नहीं तो भाव अभावरूप जगत् किससे भासता है? प्रथम तो यह सुनो । जो वस्तु अपने पूर्वरूप को त्यागकर विपर्ययरूप को प्राप्त हो और फिर पूर्व के स्वरूप को न प्राप्त हो उसके विकार कहते हैं । जैसे दूध से दही होकर फिर दूध नहीं होता जैसे बालक अवस्था बीत जाती है तो फिर नहीं आती और जैसे युवा अवस्था गई हुई फिर नहीं आती इसका नाम विकार है परब्रह्म निर्मल है, आदि भी निर्विकार है अन्त भी निर्विकार है और मध्य में जो उसमें कुछ विकार मल भासता है सो अज्ञान से भासता है । मध्य में भी ब्रह्म अविकारी ज्यों का त्यों है । हे राम जी! जो पदार्थ विपर्ययरूप हो जाता है वह फिर अपने स्वरूप को नहीं प्राप्त होता और ब्रह्मसत्ता सदा ज्योंकी त्यों अद्वैतरूप है और आत्मअनुभव से प्रकाशती है । जो कभी अन्यथारूप को प्राप्त न हो उसको विकार कैसे कहिये? हे रामजी! जो वस्तु विचार और ज्ञान से निवृत्त हो जाय उसको भ्रममात्र जानिये वह वास्तव में कुछ नहीं । जो कुछ विकार है सो अज्ञान से भासता है और जब आत्मबोध होता है तब निवृत्त हो जाता है । जिसके बोध से विकार नष्ट हो जाय उसे विकार कैसे कहिये? जो ब्रह्म शब्द शब्द से कहता है सो निर्वेदरूप आत्मा है । जो आदि अन्त में सत् हो उसे मध्य में भी सत् जानिये और इससे भिन्न हो सो अज्ञान से जानिये । आत्मरूप सदा सर्वदा समरूप है । आकाश और पवन भी अन्यभाव को प्राप्त हो जाते हैं परन्तु आत्मतत्त्व कदाचित् अन्य भाव को नहीं प्राप्त होता । वह तो प्रकाशरूप एक नित्य और निर्विकार ईश्वर है, भाव अभाव विकार को कदाचित नहीं प्राप्त होता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! एकतत्त्व विद्यमान है सो ब्रह्म सदा सर्वदा निर्मलरूप है तो उस संवित ब्रह्म में यह अविद्या कहाँ से आई है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह सर्वब्रह्म है, आगे भी ब्रह्म था और पीछे भी ब्रह्म होगा । उस निर्विकार और आदि, अन्त, मध्य से रहित ब्रह्म में अविद्या कोई नहीं-यह निश्चय है । जो वाच्य-वाचक शब्द से उपदेश के निमित्त ब्रह्म कहता है उसमें अविद्या कहाँ है? हे रामजी! `अहं' `त्वं' आदिक जगत् भ्रम और अग्नि, वायु आदिक सर्व ब्रह्मसत्ता है और अविद्या रञ्चकमात्र भी नहीं । जिसका नाम ही अविद्या है उसे भ्रममात्र और असत् जानो । जो विद्यमान ही नहीं है उसका नाम क्या कहिये? फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! उपशम प्रकरण में आपने क्यों कहा था कि अविद्या है और इस प्रकार कैसे कहते हो कि विद्यमान नहीं है । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इतने कालपर्यन्त तुम अबोध थे इस निमित्त मैंने तुम्हारे जागने के निमित्त युक्ति कल्प कर कही थी और अब तुम प्रबुद्ध हुए हो तब मैंने कहा है कि अविद्या अविद्यामान है । हे रामजी! अविद्या, जीव जगत् आदिक का क्रम अप्रबोध को जगाने के निमित्त वेदवादी ने वर्णन किया है । जब तक मन अप्रबोध होता है तबतक अविद्या भ्रम है और युक्ति बिना अनेक उपायों से भी बोधवान् नहीं होता । जब बोधवान् होता है तब सिद्धान्त को उपदेश की युक्ति बिना भी पाता है और अबोध मन युक्ति बिना नहीं पा सकता । हे रामजी! जो कार्य युक्ति से सिद्ध होता है वह और यत्न से नहीं साधा जाता । जैसे युक्तिरूपी दीपक से अन्धकार दूर होता है और बल यत्न से निवृत नहीं होता, तैसे ही युक्ति बिना और यत्न से अज्ञान की निद्रा निवृत् नहीं होती । यदि अप्रबोध को सर्वब्रह्म सिद्धान्त का उपदेश कीजिये तो वह उपदेश व्यर्थ होता है-जैसे कोई दुःखी अपना दुःख दीवाल के आगे जा कहे तो उसका कहा वह नहीं सुनती और उसका कहना भी वृथा होता है, तैसे ही अप्रबुद्ध को सर्व ब्रह्म का उपदेश व्यर्थ होता है । मूढ़ युक्ति से जगता है और बोधवान् को प्रत्यक्ष तत्त्व का उपदेश होता है । हे राम जी अब तुम यह धारणा करो कि ब्रह्म तीनों जगत् और अहं, त्वं आदिक सब ब्रह्म है द्वैत

www.tantrik-astrologer.in

कल्पना कोई नहीं, फिर जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो और दृश्य संवेदन न फुरे सदा आत्मा में स्थित रहो । इस प्रकार अनेक कार्य में भी लेप न होगा । हे रामजी! जो चैतन्यवपु परमात्मा प्रकाशरूप है सो सदा अहंभाव से फुरता है । ऐसा जो अनुभवरूप है उसी में चलते, बैठते, खाते, पीते चेष्टा करते स्थित रहो तब तुम्हारा अहं मम भाव निवृत्त हो जावेगा और जो शान्तरूप ब्रह्म सर्वभूतों में स्थित है उसको तुम प्राप्त होगे और आदि अन्त से रहित शुद्ध संवित्मात्र प्रकाशरूप आत्मा को देखोगे । जैसे मृत्तिका के पात्र घट आदिक सब मृत्तिका के ही हैं तैसे ही तुमसर्वभूत आत्मा को देखोगे । जैसे मृत्तिका से घट भिन्न नहीं तैसे ही आत्मा से जगत् भी भिन्न नहीं जैसे वायु से स्पन्द और जल से तरंग भिन्न नहीं तैसे ही आत्मा से प्रकृति भिन्न नहीं । जैसे जल और तरंग शब्दमात्र दो हैं तैसे ही आत्मा और प्रकृति शब्दमात्र दो हैं पर भेद कुछ नहीं केवल अज्ञान से भेद भासता है और ज्ञान से नष्ट हो जाता है । जैसे रस्सी में सर्प भासता है तैसे ही आत्मा में प्रकृति है । हे रामजी! चित्तरूपी वृक्ष है और कल्पनारूपी बीज है, जब कल्पनारूपी बीज बोया जाता है तब चित्तरूपी अंकुर उत्पन्न होता है और उससे जब भावरूप संसार उत्पन्न होता है तब आत्मज्ञान करके कल्पनारूपी बीज दग्ध होता है और चित्तरूपी अंकुर नष्ट हो जाता है । हे रामजी! चित्ृरूपी अंकुर से सुखदुःखरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है । जब चित्ृरूपी अंकुर नष्ट हो तब सुखदुःखरूपी वृक्ष कहाँ उपजे? हे रामजी! जो कुछ द्वैतभ्रम है सो अबोध से उप जता है और बोध से नष्ट हो जाता है । आत्मा जो परमार्थसार है उसकी भावना करो तब संसारभ्रम से मुक्त होगे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्मृतिविचारयोगोनामाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||48||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

संवेदनविचार

रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! जो कुछ जानने योग्य था सो मैंने जाना और जो कुछ देखने योग्य था सो देखा, अब मैं आपके ज्ञानरूपी अमृत के सींचने से परमपद में पूर्णात्मा हुआ । हे मुनीश्वर! पूर्ण ने सब विश्व पूर्ण किया है, पूर्ण से पूर्ण प्रतीत है और पूर्ण में पूर्ण ही स्थित है-द्वैत कुछ नहीं, यह अब मुझको अनुभव हुआ है । हे मुनीश्वर ऐसे जानकर भी मैं लीला और बोध की वृद्धि के निमित्त आपसे पूछता हूँ । जैसे बालक पिता से पूछता है तो पिता उद्वेग नहीं करता, तैसे ही आप उद्वेगवान न होना । हे मुनीश्वर! श्रवण, नेत्र, त्वचा, रसना और प्राण ये पाँचों इन्द्रियाँ प्रत्यक्ष दृष्टि आती हैं पर मरे पर विषय को क्यों नहीं ग्रहण करतीं और जीते कैसे ग्रहण करती है? घटादिक की नाईं बाहर से ये जड़ स्थित हैं पर हृदय में अनुभव कैसे होता है? और लोहे की शलाकावत् ये भिन्न भिन्न हैं पर इकट्ठी कैसे हुई हैं? परस्पर जो एक आत्मा में अनुभव होता है कि मैं देखता, मैं सुनता हूँ इनसे आदि लेकर वृत्ति क्योंकर इकट्ठी हुई है? मैं सामान्य भाव से जानता भी हूँ परन्तु विशेष करके आपसे पूछता हूँ! वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इन्द्रियाँ, चित्त और घट, पट आदिक पदार्थ निर्मल चैतन्यरूप आत्मा से भिन्न नहीं, आत्मतत्त्व आकाश से भी सूक्ष्म और स्वच्छ है । हे रामजी! जब चैतन्यतत्त्व से पुर्यष्टका (चैतत्यता) की भावना फुरी तो उसने आगे इन्द्रियगणों को देखा और इन्द्रियगण चित्त के आगे हुए हैं । इनकी घनता से चैत न्यतत्त्व पुर्यष्टका को प्राप्त हुआ है । उसी में सब घटादिक पदार्थ प्रतिबिम्बित हुए हैं और पुर्यष्टका में भासे हैं । रामजी ने पूछा हे मुनीश्वर! अनन्त जगत् जो रचे हैं और महाआदर्श में प्रतिबिम्बित है उस पुर्यष्टका का रूप क्या है और कैसे हुई है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आदि अन्त से रहित जगत् का बीजरूप जो अनादि ब्रह्म है सो निरामय और प्रकाशरूप है और कल्पना और कलना से रहित, शुद्ध, चिन्मात्र और अचेतन जगत् का बीज वही अनादि ब्रह्म है । वह जब कलना के सम्मुख हुआ तब उसका नाम जीव हुआ उस जीव ने जब देह को चेता और अहंभाव फुरा तब अहंकार हुआ, जब मनन करने लगा तब मन हुआ, जब निश्चय करने लगा तब बुद्धि हुई, जब पदार्थों के देखने वाली इन्द्रियों की भावना हुई, इन्द्रियाँ हुईं जब देह की भावना करने लगा- तब देह हुई और जब घट पट की भावना हुई तब घट पट हुए, इसी प्रकार जैसी जैसी भावना होती गई तैसे ही पदार्थ होते गये । हे रामजी! यही स्वभाव जिसका है उसको पुर्यष्टका कहते हैं । स्वरूप से विपर्ययरूपी दृश्य की ओर भावना होने और कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख, दुख आदिक की भावना कलना और अभिमान जो चित्तकला में हुआ है इससे उसको जीव कहते हैं । निदान जैसी जैसी भावना का आकार हुआ तैसी ही तैसी वासना को करता भया । जैसे जल से सींचा हुआ बीज डाल, पत्र, फूल, और फलभाव को प्राप्त होता है तैसे ही वासना से सींचा हुआ जीव स्वरूप ले प्रमाद से महाभ्रमजाल में गिरता है और ऐसे जानता है कि मैं मनुष्य देह सहित हूँ अथवा देवता व स्थावर हूँ पर ऐसे नहीं जानता कि मैं चिदात्मा हूँ । वह देह से मिला हुआ परिच्छिन्न और तुच्छ रूप आपको देखता है । इस मिथ्याज्ञान से डूबता है और देह में अभिमान से वासना के वश हुआ चिरपर्यन्त ऊँचे नीचे और बीज में भ्रमता है जैसे समुद्र में आया हुआ काष्ठ तरंगों से उछलता है और घटीयन्त्र का बर्तन नीचे ऊपर जाता है तैसे जीव वासना के वश से नीचे और ऊपर भ्रमता है । जब विचार और अभ्यास करके आत्मबोध को प्राप्त होता है तब संसारबन्धन से मुक्त होता है और आदि अन्त से रहित आत्मपद को प्राप्त होता है । बहुत काल योनिरेखा को भोग के आत्मज्ञान के वश से परमपद को प्राप्त होता है । हे राम जी । स्वरूप से गिरे हुए जीव इस प्रकार भ्रमते हैं और शरीर पाते है । अब यह सुनो

www.tantrikastrologer.in

कि इन्द्रियाँ मृतक हुए विषय को किस निमित्त ग्रहण नहीं करतीं । हे रामजी! जब शुद्ध तत्त्व में चित्तकलना फुरती है तब वह जीवरूप होती है और मन सहित षटइन्द्रियों को लेकर देहरूपी गृह में स्थित हो बाहर के विषय को ग्रहण करती है । मनसहित षट् इन्द्रियों के सम्बन्ध से विषय का ग्रहण होता है, इनसे रहित विषयों को कदाचित नहीं ग्रहण करती । इस प्रकार इनमें स्थित होकर जीवकला विषय का ग्रहण करती है । यद्यपि इन्द्रियाँ भिन्न-भिन्न है तो भी इनको एकता कर लेती हैं और ये अहंकाररूपी तागे से इकट्ठी होती हैं । देह और इन्द्रियाँ माणिक्य की नाईं हैं, इनको इकट्ठे करके जीव कहता है कि मैं देखता, सूँघता, सुनता, फिरता, बोलता हूँ और इन्हीं के अभिमान से विषय को ग्रहण करता है । हे रामजी! देह इन्द्रियाँ मन आदिक जड़ हैं परन्तु आत्मा की सत्ता पाकर अपने विषय को ग्रहण करती हैं । जबतक पुर्यष्टका देह में होती है तबतक इन्द्रियाँ विषय को ग्रहण करती हैं और जब पुर्यष्टका देह से निकल जाती है तब इन्द्रियाँ विषय को नहीं ग्रहण करतीं । हे रामजी! ये जो प्रत्यक्ष नेत्र, नासिका, कान, जिह्वा और त्वचा भासते हैं सो ये इन्द्रियाँ नहीं हैं इन्द्रियाँ तो सूक्ष्म तन्मात्रा हैं, ये उनके रहने के स्थान है । जैसे गृह में झरोखे होते हैं तैसे ही ये स्थान है । हे रामजी! अब जीव का रूप सुनो आत्मतत्त्व सब ठौर में पूर्ण है परन्तु उसका प्रतिबिम्ब वहाँ ही भासता है जहाँ निर्मल ठौर होता है । जैसे निर्मल जल में प्रतिबिम्ब होता है और जैसे दो कुण्ड हों एक जल से पूर्ण हो और दूसरा जल से रहित हो तो सूर्य का प्रकाश तो दोनों में तुल्य होता है परन्तु जिसमें जल है उसमें प्रतिबिम्बित होता है और जल के डोलने से प्रतिबिम्ब भी हिलता दृष्ट आता है पर जहाँ जल नहीं है वहाँ प्रतिबिम्ब भी नहीं, तैसे ही जहाँ सात्त्विक अंश अन्तःकरण होता है वहाँ आत्मा का प्रतिबिम्ब जीव भी होता है और जबतक शरीर में होता है तबतक शरीर चेतन भासता है, पर जब वह जीवकला पुर्यष्टकारूप शरीर को त्याग जाती है तब शरीर जड़ भासता है । जैसे कुण्ड जल से निकल जाय तो कुण्ड सूर्य के प्रतिबिम्ब से हीन हो जाता है, तैसे ही अन्तःकरण और तन्मात्रा पुर्यष्टका में आत्मा का प्रतिबिम्ब होता है । जब पुर्यष्टका शरीर को त्याग जाती है तब शरीर जड़ भासता है । हे रामजी! जैस झरोखे के आगे कोई पदार्थ रखिये तो झरोखे को पदार्थ का ज्ञान नहीं होता और जब उसका स्वामी देखता है तब पदार्थ को ग्रहण करता है, तैसे ही इन्द्रियों के स्थानों में जो सूक्ष्मतन्मात्रा ग्रहण करनेवाली होती है वही विषयों को ग्रहण करती है और जब तन्मात्रा नहीं होती तब इन्द्रियाँ ग्रहण नहीं कर सकती । हे रामजी! प्रत्यक्ष देखो कि कथा का श्रोता पुरुष कथा में बैठा होता है पर यदि उसका चित्त और ठौर निकल जाता है तब प्रत्यक्ष बैठा रहता है- परन्तु कुछ नहीं सुनता, क्योंकि उसकी श्रवण इन्द्रिय मन के साथ गई है, तैसे ही जब पुर्यष्टका निकल जाती है तब मृतक होता है और इन्द्रियाँ भी विषयों को ग्रहण नहीं करतीं । हे रामजी! अहं मम आदि जो दृश्य है सो भी सर्ग के आदि में आत्मरूपी समुद्र से तरंगवत् फुरा है, उसके पश्चात् दृश्यकलना हुई है सो न देश है, न काल है, न क्रिया है, न यह सब असत्ूरूप है, वास्तव में कुछ नहीं । ऐसे जानकर संसार के सुख, दुःख, हर्ष, शोक, राग, द्वेष से रहित होकर बिचरो तब तुम माया से तर जावोगे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संवेदनविचारो नामैकोनपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||49||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

यथार्थोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वास्तव में इन्द्रियादिक गण कुछ उपजे नहीं आदि ब्रह्मा की उत्पत्ति जैस मैंने तुमसे कही है सो सब तुमने सुनी और जैसे आदि जीव पुर्यष्टका रूप ब्रह्मा उपजा है तैसे और भी उपजे हैं । हे रामजी! जीव पुर्यष्टका में स्थित हो कर जैसी जैसी भावना करता गया है तैसे ही तैसे भासने लगा है और फिर उसी की सत्ता पाकर अपने-अपने विषय को ग्रहण करने लगे हैं, वास्तव में इन्द्रियाँ भी कुछ वस्तु नहीं । सब आत्मा के आभास से फुरती हैं, इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के विषय ये संवेदन से उपजे हैं सो जैसे उपजे हैं तैसे तुमसे कहे हैं । हे रामजी! शुद्ध संवित् सत्ता मात्र से जो अहं उल्लेख हुआ है सो ही संवेदन हुई है । वही संवेदन जीवरूप पुर्यष्टका भाव को प्राप्त हो और बुद्धि,मन और पञ्चतन्मात्रा को उपजाकर आपही उनमें प्रवेशकर स्थित हुई है उसको पुर्यष्टका कहते हैं परन्तु यह उपजी भी स्पन्द में है आत्मा से कुछ नहीं उपजा । वह आत्मा न एक है, न अनेक है और परमात्मतत्त्व अस्ति अनामय है और उसमें वेदना भी अनन्यरूप है । हे रामजी! उसमें न कोई द्वैत कलना है और न कुछ मनशक्ति है केवल शान्त सत्ता है उसी को परमात्मा कहते हैं जो मनसहित षट्इन्द्रियों से अतीत अचैत्य चिन्मात्र है उससे जीव उत्पन्न हुआ है । यह भी मैं उपदेश के निमित्त कहता हूँ वास्तव में कुछ उपजा नहीं केवल भ्रममात्र है ।जहाँ जीव उपजा है वहाँ उसको अहंभाव विपर्यय हुआ है, यही अविद्या है सो उपदेश से लीन हो जाती हैं । जैसे निर्मली से जल की मलिनता लीन हो जाती है तैसे ही गुरु और शास्त्र के उपदेश को पाकर जब अविद्या लीन हो जाती है तब भ्रमरूप आकार शान्त हो जाते हैं और ज्ञानरूप आत्मा शेष रहता है । जिसमें आकाश भी स्थूल है । जैसे परमाणु के आगे सुमेरु स्थल होता है तैसे ही आत्मा के आगे आकाश स्थूल है । हे रामजी! आत्मा के आगे जो स्थूलता भासती है सो भ्रममात्र है । जो बड़े उदार आरम्भ भासते हैं सो तो असत् हैं तब और पदार्थों की क्या बात है? हे रामजी! आत्मा में जगत् कुछ नहीं पाया जाता, क्योंकि वस्तु असम्यक् ज्ञान से भासती है और सम्यक् ज्ञान से नहीं पाई जाती । जो कुछ जगत्ज्जाल भासते हैं वे सब मायामात्र हैं उनसे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता । जैसे मृग तृष्णाका जल पान नहीं किया जाता तैसे ही जगत के पदार्थों से कुछ परमार्थ सिद्ध नहीं होता, सब अज्ञान से भासते हैं । हे रामजी! जो वस्तु सम्यक्ज्ञान से पाइये उसे सत् जानिये और जो सम्यक्ज्ञान से न रहे उसे भ्रममात्र जानिये । यह जीव पुर्यष्टका अविद्धक भ्रम है, असत् ही सत् हो भासता है और जब गुरु और शास्त्रों का विचार होता है तब जगत् भ्रम मिट जाता है । पुर्यष्टका में स्थित होकर जीव जैसी भावना करता है तैसी सिद्धि होती है । जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पता है तैसे ही जीवकला अपने आपमें देश, काल, तत्त्व आदिक कल्पती है और भावना के अनुसार उसको भासते हैं । जैसे बीज के डाल, फूल, फलादिक विस्तार होता है तैसे ही तन्मात्रा से भूतजात सब भीतर बाहर, देश, काल, क्रिया कर्म हुआ है । आदि जीव फुरकर जैसा संकल्प धारता है तैसे ही हो भासता है सो यह संवेदन भौ आत्मा से अनन्यरूप है । जैसे मिरच में तीक्ष्णता और आकाश में शून्यता अनन्यरूप है, तैसे ही आत्मा में संवेदन अनन्यरूप है । उस संवेदन ने उपजकर निश्चय धारा है कि ये पदार्थ ऐसे हैं सो तैसे ही स्थित हुए अन्यथा कदाचित् नहीं होते । आदि जीव ने फुरकर जो निश्चय धारा है उसी का नाम नीति है और स्वरूप से सर्व आत्मसत्ता है, आत्मसत्ता ही रूप धारकर स्थित हुई है । जैसे एक ही पौंड़े का रस शक्कर आदि मृत्तिका घट पटादिक आकार को धारती है । तैसे ही आत्मसत्ता सर्वज्ञान को पाती है । जैसै एक ही जल का रस, पत्र, डाल, फूल फलादिक होकर भासता है तैसे ही एक ही आत्मसत्ता घट,

www.tantrik-astrologer.in

पट और दीवार आदिक आकार हो भासती है । हे रामजी! जैसे आदि जीव ने निश्चय किया है तैसे ही स्थित है अन्यथा कदाचित् नहीं होता, परन्तु जगत् काल में ऐसे हैं, वास्तव में न बिम्ब है और न प्रति बिम्ब है । ये द्वैत में होते हैं सो द्वैत कुछ नहीं केवल चिदानन्द ब्रह्म आत्म तत्त्व अपने आपमें स्थित है और देहादिक भी सर्व चिन्मात्र है । हे रामजी! जो कुछ जगत् भासता है सो आत्मा का किंचनरूप है । जैसे रस्सी सर्परूप भासती है तैसे ही आत्मा जगत््रूप हो भासता है और जैसे सुवर्ण भूषण हो भासता है तैसे ही आत्मा दृश्यरू प हो भासता है जैसे सुवर्ण में भूषण कुछ वास्तव नहीं होते तैसे ही आत्मा में दृश्य वास्तव नहीं । जैसे स्वप्न का पत्तन देश असत् ही सत् हो भासता है तैसे ही जीव को देह पृथक् भासती है । हे रामजी! आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है परन्तु फुरने से अनेक रूप धारती है । जैसे एक नटवा अनेक स्वाँग धारता है तैसे ही आत्मसत्ता देहादिक अनेक आकार धारती है और जैसे स्वप्न में एक ही अनेकरूप धार चेष्टा करता है तैसे ही जगत् में आत्मसत्ता नानारूप धारती । हे रामजी आत्मा नित्य शुद्ध और सबका अपना आप है । अपने स्वरूप के प्रमाद से आपसे आपका जन्म-मरण जानता है पर वह जन्म-मरण असत्् रूप है जैसे कोई पुरुष आपको स्वप्न में श्वानरूप देखे तैसे ही यह आपको जन्मता मरता देखता है । जैसे इसको पूर्वभावना है और भ्रम से असत् को सत् जानता है और जैसे स्वप्न में वस्तु को अवस्तु और अवस्तु को वस्तु देखता है, तैसे ही जाग्रत में विप र्यय देखता है । जैसे जाग्रत के ज्ञान से स्वप्न भ्रम निवृत्त हो जाता है तैसे ही आत्मा अधिष्ठान के ज्ञान से जगत् भ्रम निवृत्त हो जाता है । जैसे पूर्वका दुष्कृत कर्म किया हो तो उसके पीछे सुकृत कर्म करे तो वह छूट जाता है तैसे ही पूर्व संस्कार से जब नीच वासना होती है और फिर आत्मतत्त्व का अभ्यास करता है तो पुरुष प्रयत्न से मलिन वासना नष्ट हो जाती है । जबतक वासना मलिन होती तबतक उपजता विनशता और गोते खाता है और जब सन्तों के संग और सत््शास्त्रों के विचार से आत्मज्ञान उपजता है तब संसारबन्धन से छूटता है अन्यथा नहीं छूटता । हे रामजी! वासना रूपी कलंक से जीव घेरा हुआ है और देहरूपी मन्दिर में बैठकर अनेक भ्रम दिखाता है । आदि जीव को जो फुरा है सो अपने स्वरूप को त्याग कर अनात्म भ्रम को देखा । जैसे बालक परछाहीं में भूत कल्पे तैसे ही जीव ने कल्पकर जैसी भावना की तैसा ही भासने लगा । आदि जीव पुर्यष्टका में स्थित हुआ है । बुद्धि, मन, अहंकार और तन्मात्रा का नाम पुर्यष्टका है और अन्तवाहक देह है । चैतन्य आत्मा अमूर्ति है, आकाश भी उसके निकट स्थूल है, प्राणवायु गुच्छे के समान है और देह सुमेरु के समान है । ऐसा सूक्ष्मजीव है । सुषुप्त जड़रूप और स्वप्नभ्रम दोनों अवस्थाओं में स्थावर-जंगमरूपी जीव भटकते हैं, कभी सुषुप्ति में स्थित होते हैं और कभी स्वप्न में स्थित होते हैं । इसी प्रकार दोनों अवस्थाओं में जीव भटकते हैं । हे रामजी! देह अन्तवाहक है और उसी देह से सब चेष्टा करते हैं । कभी स्थावर में जाकर वृक्ष और पत्थरादिक योनि पाते हैं । जब स्वप्न में होते हैं तब जंगमयोनि पाते हैं सो भी कर्म वासना के अनुसार पाते हैं, जब तामसी वासना घन होती है तब कल्पवृक्ष चिन्तामण्यादिक स्वरूप को प्राप्त होते हैं, जब केवल तामसी घन मोहरूपी होती है तब वृक्ष और पत्थरादिक योनि पाते हैं । इसका नाम सुषुप्ति है सो लय घन मोहरूप है और इससे भिन्न जंगमविक्षेपरूप स्वप्न अवस्था है, कभी उसमें होता है और कभी सुषुप्तिरूप स्थावर होता है । हे रामजी! सुषुप्ति अवस्था में वासना सुषुप्तिरूप होती है सो फिर उगती है इससे मोहरूप है । उस सुषुप्ति से जब उतरता है तब विक्षेपरूप स्वप्ना होता है और जब बोध हो तब जाग्रत अवस्था पावे । जाग्रत् दो प्रकार की है । जाग्रत वही है जो लय और विक्षेपता से रहित चेतन अवस्था है, उससे रहित और मनोराज सब स्वप्नरूप है । एक जीवन्मुक्ति जाग्रत है और दूसरी विदेहमुक्ति है । जीवन्मुक्ति तुरियारूप है और विदेहमुक्ति तुरीयातीत है

www.tantrik-astrologer.in

। यह अवस्था जीव को बोध से प्राप्त होती है- और जीवको बोध पुरुषप्रयत्न से होता है-अन्यथा नहीं होता । हे रामजी! जीव का फुरना ज्ञानरूप है । यदि दृश्य की ओर लगता है तो वही रूप हो जाता है और यदि सत् की ओर लगता है तो सतरूप हो जाता है एवम् जब दृश्य के सम्मुख होता तब दीर्घभ्रम को देखता है । जीव के भीतर जो सृष्टिरूप हो फुरता है सो भी आत्मसत्ता से कुछ भिन्न वस्तु नहीं । जैसे बटलोही में दानों के समान जल उछलता है सो उस जल से वस्तु भिन्न नहीं तैसे ही आत्मा के सिवा जीव के भीतर और कुछ वस्तु नहीं और सृष्टि जो भासती है सो मायामात्र है । हे रामजी! जीव को स्वरूप के प्रमाद से सृष्टि भासती है और सत्वत् हो गई है उससे नाना प्रकार का विश्व भासता है और नाना प्रकार की वासना फुरती है उससे बन्धायमान हुआ है । जब वासना क्षय हो तब मुक्तिरूप हो । हे रामजी! घनवासना मोहरूप का नाम सुषुप्ति जड़ अवस्था है और क्षीण स्वप्नरूप है । जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब दृश्य में सत्बुद्धि होती है और जब उसमें प्रतीति होती है तब नानाप्रकार की वासना उदय होती है पर जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब संसार-सत्यता नष्ट हो जाती है-फिर वासना नहीं फुरती । हे रामजी! घनवासना तबतक फुरती है जबतक दृश्य की सत्ुबुद्धि होती है और जब जगत् का अत्यन्त अभाव होता है तब वासना भी नहीं रहती । जैसे भूषण पिघलाकर जब सुवर्ण किया तब भूषणबुद्धि नहीं रहती । जो वस्तु अज्ञान से उपजी है सो ज्ञान से लीन हो जाती है, एवं वासनाभ्रम अबोध से उपजा है और बोध से लीन हो जाता है । हे रामजी! घनवासना से सुषुप्ति जड़ अवस्था होती है और तनुवासना से स्वप्न देखता है । घनवासना मोह से जीव स्थावर अवस्था को प्राप्त होता है, मध्यवासना से तिर्यक्योनि पाता है अर्थात् पशु, पक्षी और सर्पादिक होता है, तनुवासना से मनुष्यादिक शरीर पाता है और नष्टवासना से मोक्ष पाता है । हे रामजी! यह जगत् सब संकल्प से रचा है । घट पट आदिक जो बाहर देखते और ग्रहण करते हो वही हृदय में स्थित हो जाते हैं और जब उनको ग्रहण करते हो, तो ग्राह्य ग्राहक का सम्बन्ध देखते हो कि वह मैंने ग्रहण किया है और यह मैंने लिया है । जो ज्ञानवान् है वह न ग्रहण करने का अभिमान करता है और न कुछ त्यागने का अभिमान करता है उसको बाहर सब चिदाकाश भासता है । चैतन्यसत्ता का यह चमत्कार है, तीनों जगत्ुरूप होकर वही प्रकाशता है रञ्चकमात्र भी कुछ अन्य नहीं-केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । जैसे समुद्र में तरंग और बुद्बुदे होकर भासते हैं परन्तु जल ही जल है-जल से कुछ भिन्न नहीं तैसे ही आत्मा जगत्ुरूप होकर भासता है द्वैत नहीं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे यथार्थोपदेशोनाम पञ्चाशत्तमस्सर्ग ||50||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

नारायणावतार

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे जीव को स्वप्न में जो संसार उदय होता है वह कल्पना मात्र होता है, न सत् है और न असत् है जीव के फुरने से ही भ्रम भासता है, तैसे ही यह जाग्रत अवस्था भ्रममात्र है-स्वप्न और जाग्रत एकरूप है । जैसे स्वप्न में जाग्रत का एक क्षण भी दीर्घकाल होता है तैसे ही स्वरूप के प्रमाद से जाग्रत भी दीर्घकाल का भ्रम हुआ है जिससे सत् को असत् जानता है और असत् को सत् जानता है, जड़ को चेतन जानता है और चेतन को विपर्यय ज्ञान से जड़ जानता है । जैसे स्वप्न में एक ही जीव अनेकता को प्राप्त होता है, तैसे ही आदि जीव एक से अनेक होकर भासता है जैसे किसी स्थान में चोर भ्रम भासता है तैसे ही आत्मा में तीनों जगत् भ्रम भासता है । जैसे सुषुप्ति से स्वप्नभ्रम उदय होता है तैसे ही अद्वैततत्त्व आत्मा में जगत्भ्रम होता है । आत्मा अनन्त सर्वगत जीवका बीजरूप है जैसा उसके आश्रय फुरना होता है तैसा ही सिद्ध होकर भासता है । हे रामजी! जिस पुरुष की स्वरूप में स्थिति हुई है वह सदा निःसंग होकर विचरता है । जैसे विष्णुजी के निःसंगता के उपदेश से अर्जुन मुक्ति होकर विचरेंगे, तैसे ही हे महाबाहो! तुम भी विचरो । हे रामजी! पांडु के पुत्र अर्जुन जैसे सुख से जन्म व्यतीत करेंगे और सब व्यवहारों में भी सुखी और स्वस्थ रहेंगे तैसे ही तुम भी निस्संग होकर विचरो । रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण! पांडु के पुत्र अर्जुन कब होंगे और कैसे विष्णुजी उनको निःसंग का उपदेश करेंगे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अस्ति तन्मात्रतत्त्व में आत्मादिक संज्ञा कल्पकर कही हैं जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसे ही निर्मलतत्त्व अपने आपमें स्थित है, जैसे सुवर्ण में भूषण और समुद्र में तरंग फुरते हैं तैसे ही आत्मा में चौदह प्रकार के भूतजाति फिरते हैं और जैसे जाल में पक्षी भ्रमते हैं तैसे ही जगत में जीव भ्रमते हैं और चन्द्रमा सूर्य लोकपाल होकर स्थित हैं और उन्होंने पञ्चभूतों के कर्म रचे हैं कि यह पुण्य ग्रहण करने योग्य है और यह पाप त्यागने योग्य है, पुण्य से स्वर्गादिक सुख प्राप्त होता है और पाप से नरक होता है । यह मर्यादा लोकपाल ने स्थापनकी है । इस प्रकार संसाररूपी नदी में जीव बहते हैं । संसाररूपी नदी अविच्छिन्न रूप बहती भासती है पर क्षण-क्षण में नष्ट होती है । इस जगत् में सूर्य के पुत्र यमराज लोकपाल बड़े प्रतापवान् और तेजवान् हैं और सब जीवों को मारते हैं और उस पतित प्रवाह कार्य के कर्म में स्थित हैं । उनका जीवों को मारना और दण्ड देना ही नियम है परन्तु चित्त में पहाड़ की नाईं स्थित हैं । वे यमराज चार-चार युगों प्रति कभी आठ,कभी सात, कभी बारह वा सोलह वर्षों का नियम धारके किसी जीव को नहीं मारते और उदासीन की नाईं स्थित होते हैं । जब पृथ्वी में अधिक भूत हो जाते हैं और चलने को मार्ग नहीं रहता और कोई दुष्टजीव जीवों को दुःख देते हैं उससे पृथ्वी भारी और दुःखी होती है तब पृथ्वी के भार उतारने के निमित्त विष्णुजी अवतार धारकर दुष्टजीवों का नाश करते हैं और धर्ममार्ग को दृढ़ करते हैं । हे रामजी! इस प्रकार नियम के धारनेवाले यम को अनन्तयुग अपने व्यवहार को करते व्यतीत हो गये हैं और भूत और जगत् अनेक हो गये हैं । इस सृष्टि का जो अब वैवस्वत यम है सो आगे द्वादशवर्ष पर्यन्त नियम करेगा और किसी को न मारेगा तब जीव क्रूरकर्म करने लगेंगे और पृथ्वी भूतों से भर जावेगी । जैसे वृक्ष गुच्छों के साथ संघट्ट हो जाते हैं तैसे ही पृथ्वी प्राणियों के साथ संघट्ट हो जावेगी और जैसे चोर से डरकर स्त्री भर्ता की शरण जाती है तैसे ही पृथ्वी भी दुःखित होकर विष्णु की शरण जावेगी तब विष्णुजी दो देह धारकर पृथ्वी का भार उतारेंगे और सन्मार्ग स्थापन करेंगे । सब देवता भी अवतार लेकर उनके साथ आवेंगे और नरों में नायक भाव को प्राप्त होंगे । एक देह से तो विष्णु भगवान् वसुदेव के गृह में पुत्ररूप कृष्ण नाम से होंगे और दूसरी देह से

www.tantrik-astrologer.in

पाण्डु के गृह में अर्जुन नाम से युधिष्ठर नामक धर्मपुत्र के भाई होंगे और समुद्र जिसकी मेखला है ऐसी जो पृथ्वी है तिसका राज्य करेंगे। उसके चचा के पुत्र का दुर्योधन नाम होगा और उसका और भीम का बड़ा युद्ध होगा। दोनों ओर संग्राम की लालसा होके अठारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी होकर बड़े भयानक युद्ध होंगे और उनके बल से हरि पृथ्वी का भार उतारेंगे। हे रामजी! उस सेना के युद्ध में विष्णु का अर्जुन नाम देह होगा जो गाण्डीव धनुष धार के प्रकृतस्वभाव में स्थित हो हर्ष शोकादिक विकार संयुक्त निरधर्मा होगा और युद्ध में अपने बाँधवों को देखकर मूर्छित होगा और मोह और कायरता से उसके हाथ से धनुष गिर पड़ेगा और आतुर होगा तब बोध देह से उसको हरि उपदेश करेंगे। जब दोनों सेनाओं के मध्य में अर्जुन मोहित होकर गिरेगा तब हरि कहेंगे कि हे राजसिंह अर्जुन! तू मनुष्यभाव को प्राप्त हो क्यों मोहित हुआ है? इस कायरता को त्याग कर, तू तो परम प्रकाश आत्मतत्त्व है। सबका आत्मा आनन्द, अविनाशी, आदि, अन्त, मध्य से रहित, सर्वव्यापी, परमअंकुररूप, निर्मल, दुःख के स्पर्श से रहित, नित्य, शुद्ध, निरामय है। हे अर्जुन! आत्मा न जन्मता है, न मरता है, होकर भी फिर कुछ और नहीं होता क्योंकि अजन्मा निरन्तर और पुरातन सबका आदि है। उसका शरीर के नाश हुए नाश नहीं होता तू क्यों वृथा कायरता को प्राप्त हुआ है?

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे नारायणावतारो नामैकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||51||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

अर्जुनोपदेश

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! जो इस आत्मा को हन्ता मानते हैं और हत होता मानते हैं वे आत्मा को नहीं जानते । यह आत्मा न मरता है और न मारता है क्योंकि जो अक्षयरूप और निराकार आकाश से भी सूक्ष्म है उस आत्मा परमेश्वर को कोई किस प्रकार मारे । हे अर्जुन! तुम अहंकाररूप नहीं । इस अनात्म अभिमानरूप मल को त्याग करो, तुम जन्म मरण से रहित मुक्तरूप हो । जिस पुरुष को अनात्म में अहंभाव नहीं और जिसकी बुद्धि कर्तृत्व भोक्तृत्व से लेपायमान नहीं होती वह पुरुष सब विश्व को मारे तो भी उसको नहीं मारता और न बन्धवान् होता है । हे अर्जुन! जिसको जैसा दृढ़ निश्चय होता है उसको वैसा ही अनुभव होता है, इससे यह, मैं मेरा इत्यादि जो मलिन संवित् निश्चय होता है उसको त्यागकर स्वरूप में स्थित हो । जो ऐसी भावना में स्थित नहीं होते और आपको नष्ट होता मानते हैं सो सुख दुःख से रागद्वेष में जलते हैं । हे अर्जुन! वे अपने त्रिगुणरूप असंख्य कर्मों में बर्तते हैं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनसे पाँचों तत्त्व-आकाश, वायु, अग्नि , जल और पृथ्वी उपजे हैं और उन भूतों के अंश श्रवण त्वचा, नेत्र,जिह्वा और नासिका विषयों में स्थित हैं वे अपने विषय को ग्रहण करती है नेत्र-रूप, त्वचा-स्पर्श, जिह्वा-रस, नासिका गन्ध और श्रवण-शब्द ग्रहण करते हैं, उसमें अहंकार से जो मूढ़ हुआ है वह आपको कर्त्ता मानता है कि मैं देखता हूँ, सुनता हूँ, स्पर्श करता हूँ, स्वाद लेता हूँ और गन्ध लेता हूँ । हे अर्जुन! ये सब कर्म कलना से रचे हैं । इन्द्रियों से कर्म होते हैं और अहंभाव से जीव वृथा क्लेश का भागी होता है । बहुत ने मिलकर कर्म किया और इसमें एक ही अभिमानी होकर दुःख पाता है । बड़ा आश्चर्य है कि देह और इन्द्रियों से कर्म होते हैं और जीव अभिमानी होकर सुख, दुःख और राग, द्वेष से जलता है । इससे इनका संग और अभिमान त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो । योगी केवल इन्द्रियों से कर्म करता है और उनमें अभिमान वृत्ति नहीं करता । हे अर्जुन! इस जीव को अहंकार ही दुःखदायक है कि अनात्म में आत्म अभिमान करता है जो अभिमानरूपी विष के चूर्ण से रहित होकर चेष्टा करता है वह दुःख का कारण नहीं होता, वह सदा सुखरूप है । हे अर्जुन! जैसे सुन्दर शरीर विष्ठा और मल से मलिन किया हो तो उसकी शोभा जाती रहती है तैसे ही बुद्धिमान शास्त्र का वेत्ता और गुणों से सम्पन्न भी हो- पर यदि अनात्म में आत्मअभिमान करे तो उसकी शोभा जाती रहती है । जो निर्मल, निरहंकार सुख-दुःख में सम और क्षमावान् है वह शुभकर्म करे अथवा अशुभ करे उसको किसी कर्म का स्पर्श नहीं होता । हे अर्जुन! ऐसे निश्चयवान् होकर कर्म को करो । हे पांडुपुत्र! युद्ध तुम्हारा परमधर्म है उसे करो । अपना अतिक्रूर कर्म भी कल्याण करता है । पराया धर्म उत्तम भी दुःखदायक है और अपना धर्म अल्प भी अमृत की नाईं सुखदायक है । हे अर्जुन! चाहे जैसा कर्म करो, यदि तुम्हारे में अहंभाव न होगा तो वह तुमको स्पर्श न करेगा । संग अभिमान को त्याग और योग में स्थित होकर कर्म करो । जो निःसंग पुरुष है उसको कोई कर्म प्राप्त हो पर वह उसको करता हुआ बन्धवान् नहीं होता । इसस ब्रह्म रूप होकर ब्रह्ममय कर्म करो तब शीघ्र ही ब्रह्मरूप हो जावोगे । जो कुछ आचार कम हो उसे ब्रह्म में अर्पण करो । संन्यास योग युक्ति से कर्मों को करते भी मुक्तिरूप होगे । इतना सुन अर्जुन ने पूछा, हे भगवन्! संगत्याग, ब्रह्मअर्पण, ईश्वर-अर्पण और योग किसको कहते हैं? मोह की निवृत्ति के लिए इनको पृथक-पथक कहिये । श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! प्रथम तुम यह सुनो कि ब्रह्म किसको कहते हैं । जहाँ सब संकल्प शान्त हैं केवल एक घन वेदना है, दूसरी भावना का उत्थान नहीं केवल अचैत्य चिन्मात्र- सत्ता है उसको परब्रह्म कहते हैं । उसको जानकर उसको पाने का उद्यम करना और जिस विचार

www.tantrik-astrologer.in

से उसको पाइये उसका नाम ज्ञान है । उसमें स्थित होने का नाम योग है । ऐसा निश्चय करना कि यह सब ब्रह्म है, मैं ब्रह्म हूँ और सब जगत् मैं ही हूँ; और ब्रह्म से भिन्न कुछ भावना न करना इसका नाम ब्रह्म अर्पण है । नाना प्रकार का जो जगत् भासता है सो क्या है? भीतर भी शून्य है और बाहर भी शून्य है । जिसकी शिला की उपमा है ऐसा जो आकाशवत् सत्तारूप है सो न शून्य है न शिलावत् है, उसके आश्रय स्पन्दकलना स्फूर्ति की नाईं अन्यवत् जगत्‌रूप होकर भासती ह परन्तु आकाश की नाईं शून्य है । जैसे समुद्र में तरंग और बुद्बुदे अनेकरूप होकर स्थित होते हैं सो जल ही हैं और कुछ नहीं एक जल ही अनेकरूप भासता है, तैसे ही एक ही वस्तुसत्ता घट, पट आदिक आकार होकर भासती है । संवितसार आत्मा में भेदकलना कुछ नहीं, अज्ञान से अनेकरूप भेदकलना विकल्पजाल भासते हैं और अनेकभाव को प्राप्त होते हैं । आत्मा को अनेक नाम रूप देखना और भिन्न-भिन्न देह, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धयादिक अनेक में अहंप्रतीति से एकत्रभाव देखना अज्ञानता है । यह कलना ज्ञान से नष्ट हो जाती है । हे अर्जुन! संकल्पजालों को त्याग करने का नाम असंग कहते हैं । सब कलना जालों को भी ईश्वर से भिन्न न जानना इस भावना से द्वैतभाव गलित हो जावेगा-इसका नाम ईश्वरसमर्पण कहते हैं । हे अर्जुन!जब ऐसी अभेद भावना होती है तब आत्मबोध प्राप्त होता है । बोध से सब शब्द अर्थ एकरूप भासते हैं, सब शब्दों का एक ही शब्द भासता है और एक ही अर्थ शब्दों में भासता है । हे अर्जुन! सर्व जगत् मैं हूँ, दिशा और आकाश मैं हूँ और कर्म, काल, द्वैत, अद्वैत मैं ही हूँ, तू मुझसे मन लगा, मेरी भक्ति कर, मेरा ही भजन कर और मुझ ही को नमस्कार कर तब तू मुझ ही को प्राप्त होगा । हे अर्जुन! मैं आत्मा हूँ और तुम मेरे ही परायण हो । अर्जुन बोले हे देव! आपके दो रूप हैं एक पर और दूसरा अपर, उन दोनों रूपों में मैं किसका आश्रय करूँ जिससे मैं परमसिद्धि पाऊँ? श्रीभगवान् बोले, हे अनघ! एक समानरूप है और दूसरा परमरूप है । यह जो शंख, चक्र, गदादिक संयुक्त है सो तो मेरा समानरूप है और परमरूप आदि अन्त से रहित एक अनामय है उस ब्रह्मरूप को आत्मा और परमात्मा आदिक नाम से कहते है । जब तक तुम अप्रबोध हो और तुमको अनात्म देहादिक में आत्म अभिमान है तबतक मेरे चतुर्भुज आकार की पूजा के परायण हो और कर्मों को करो और जब प्रबोध होगे तब मेरे परमरूप को प्राप्त होगे जो आदि-अन्त-मध्य से रहित है । उसको पाकर फिर जन्म-मरण में न आवोगे, जब तुम मोह आदि शत्रुओं के नाशकर्ता और ज्ञानवान् होगे तब आत्मा से मेरा पूजन होगा । मैं सबका आत्मा हूँ । हे अर्जुन! मैं मानता हूँ कि तुम अब प्रबोध हुए हो , आत्मपद में विश्राम पाया है और संकल्पकलना से रहित एक आत्मसत्ता में स्थित होकर मुक्त हुए हो । ऐसे योग से तुम सब भूतों में स्थित होकर आत्मा को देखोगे, सब भूतों को आत्मा में स्थित देखोगे और सर्वत्र तुमको समबुद्धि होगी तब स्व रूप में तुमको दृढ़ स्थिति होगी । हे अर्जुन! जो सब भूतों में स्थित आत्मा को देखता है एकत्वभाव से भजन करता है और जिसको आत्मा से भिन्न और भावना नहीं फुरती वह सब प्रकार वर्तमान भी है तो भी फिर जन्ममरण में नहीं आता । हे अर्जुन! जिसमें सर्व शब्दों का अर्थ है और जो सर्व शब्दों में एक अर्थरूप है ऐसी आत्मसत्ता न सत् है और न असत् है, सत्-असत् से जो रहित सत्ता है सो आत्मसत्ता है । वह सब लोगों के चित्त में प्रकाशरूप करके स्थित है । हे भारत! जैसे दूध में घृत और जल में रस स्थित होता है तैसे ही मैं सब लोगों के हृदय में तत्त्वरूप स्थित हूँ । जैसे दूध में घृत स्थित है, तैसे ही सब पदार्थों के भीतर मैं आत्मा स्थित हूँ और जैसे रत्नों के भीतर-बाहर प्रकाश होता है, तैसे ही मैं सर्व पदार्थों के भीतर-बाहर स्थित हूँ । जैसे अनेक घटों के भीतर-बाहर एक ही आकाश स्थित है तैसे ही मैं अनेक देहों के भीतर बाहर अव्यक्तस्वरूप स्थित हूँ । हे अर्जुन! ब्रह्मा से आदि तृण पर्यन्त सब पदार्थों में सत्तासमान

www.tantrik-astrologer.in

से मैं स्थित हूँ और नित्य अजन्मा हूँ । मुझमें जो चित्तसंवेदन फुरा है सो ब्रह्मसत्ता की नाईं हुआ है और फुरने से जगत्ूरूप हो भासता है पर आत्मतत्त्व अपने आप में स्थित है-कुछ द्वैत नहीं । हे अर्जुन सबका साक्षीरूप है-उसको जगत् का सुख दुःख स्पर्श नहीं करता । जैसे दर्पण प्रतिबिम्ब को ग्रहण करता है परन्तु सबमें सम है और किसी से खेदवान् नहीं होता तैसे ही सब पदार्थ अवस्था का साक्षीभूत आत्मा है परन्तु किसी को स्पर्श नहीं करता और शरीर के नाश में उसका नाश नहीं होता । जो ऐसा देखता है सो ही यथार्थ देखता है । हे अर्जुन! पृथ्वी में गन्ध, जल में रस, पवन में स्पर्श और स्पन्दशक्ति मैं ही हूँ, अग्नि में प्रकाश और आकाश में शब्दशक्ति मैं ही हूँ । तुमसे क्या कहूँ कि यह मैं हूँ । सर्वात्म सब का आत्मा मैं हूँ-मुझसे कुछ भिन्न नहीं । हे पाण्डव! यह जो सृष्टि प्रवर्तती है और उत्पन्न और प्रलय होती दृष्टि आती है सो मुझमें ऐसे है जैसे समुद्र में तरंग उपजते और लीन होते हैं । जैसे पहाड़ रूप है वृक्ष काष्ठरूप है और तरंग जलरूप है तैसे ही सर्व पदार्थों में मैं आत्मारूप हूँ । जो सब भूतों को आत्मा में देखता है सो आत्मा को अकर्त्ता देखता है । जैशै समुद्र में नाना प्रकार के तरंग और सुवर्ण में भूषण भासते हैं तैसे ही नाना आकार आत्मा में भासते हैं । हे अर्जुन! ये नाना प्रकार के पदार्थ ब्रह्मरूप हैं-ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं, तब और क्या कहिये, भाव विकार क्या कहिये और जगत् द्वैत क्या कहिये? जो सब वही है तो वृथा मोहित क्यों होते हो? इस प्रकार सुनकर बुद्धिमान इस लोक में समरसचित्त विचरते हैं । हे अर्जुन! उस पद को तुम क्यों नहीं प्राप्त होते जो पुरुष निर्वाण और निर्मोह हुए हैं और जिनकी सब अभिलाषाएँ निवृत्त हुई हैं वे अव्ययपद को प्राप्त हुए हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपदेशोनाम द्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||52||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

सर्वब्रह्मप्रतिपादन

श्रीभगवान् बोले, हे महाबाहो! फिर मेरे परम वचन सुनो, मैं तुम्हारी प्रसन्नता के निमित्त कहता हूँ, क्योंकि तुम्हारा हितकारी हूँ । ये जो शीतोष्ण विषय हैं सो इन्द्रियों से छूते हैं और आगमापायी हैं अर्थात् आते हैं और फिर निवृत्त हो जाते हैं इससे अनित्य है, इनको सह रहो ये आत्मा को स्पर्श नहीं करते । तुम तो एक आत्मा आदि, अन्त, मध्य में पूर्ण, निराकार अखण्ड और व्यापक हो तुमको शीत, उष्ण सुख, दुःख खण्डित नहीं कर सकते ये कलना से रचे हुए हैं । जैसे सुवर्ण में भूषण का निवास है तैसे ही आत्मा में इनका असत् निवास है । हे भारत! जिसको इन्द्रियों के भ्रमरूप भोग और स्पर्श चलायमान नहीं कर सकते और सुखदुःख सम हैं उस पुरुष को मोक्ष की प्राप्ति होती है । हे अर्जुन! आत्मा नित्य, शुद्ध और सर्वरूप है और इन्द्रियों के स्पर्श असत्ूरूप हैं इसलिये असत् पदार्थ सत् आत्मा को मोहित नहीं कर सकते । ये अल्पमात्र तुच्छ हैं और बोधरूप आत्मतत्त्व सर्वगत शुद्धरूप है, उसको इन का स्पर्श कैसे हो-सत् को असत् स्पर्श नहीं कर सकता । जैसे रस्सी में सर्प का आभास होता है सो रस्सी को स्पर्श नहीं कर सकता, जैसे मूर्ति की अग्नि कागज को जला नहीं सकती और जैसे स्वप्न के क्षोभ जाग्रत् पुरुष को स्पर्श नहीं कर सकते, तैसे ही इन्द्रियाँ और उनके विषय आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकते हैं । हे अर्जुन! जो सत् है सो असत् नहीं होता और जो असत् है सो सत् नहीं होता । सुख दुःखादिक असत्ूरूप हैं और परमात्मा सत्ूरूप है । जगत् की सत् वस्तुयें घटादिक और आकाश की असत् फलादिक त्यागे से जो निष्किञ्चन महासत् पद शेष रहे उसमें स्थित हो । हे अर्जुन! ज्ञानवान् पुरुष इष्ट अनिष्ट से चलायमान नहीं होता, वह इष्ट (सुख) से हर्षवान् नहीं होता और अनिष्ट (दुःख) से शोकवान् नहीं होता चैतन्य पाषाणवत् शरीर में स्थित होता है । हे साधो! यह चित्त भी जड़ है और देह इन्द्रियादिक भी जड़ हैं । आत्मा चेतन है इनके साथ मिला हुआ आपको देह क्यों देखना? चित्त और देह भी आपस में भिन्न भिन्न है, देह के नष्ट हुए चित्त नष्ट नहीं होता और चित्त के नष्ट हुए देह नहीं नष्ट होता ।इनके नष्ट हुए जो आपको नष्ट हुआ मानता है और इनके सुखदुःख से सुखी-दुःखी होता है वह महामूर्ख है । हे अर्जुन! स्वरूप के प्रमाद से जो देहादिक में अहं प्रतीति करता है और आपको भोक्ता मानता है वह निर्बुद्धि है । जब आत्मा का बोध होता है तब आपको अकर्त्ता, अभोक्ता और अद्वैत देखता है । जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प भासता है और रस्सी के बोध से सर्प का अभाव होता है, तैसे ही आत्मा के अज्ञान से देह और इन्द्रियों के सुखदुःख भासते हैं और आत्मज्ञान से सुख दुःख का अभाव हो जाता है । हे अर्जुन! यह विश्व एक अज ब्रह्मस्वरूप है । न कोई जन्मता है और मरता है- यह सत् उपदेश है । हे अर्जुन! ब्रह्म-रूपी समुद्र में तुम एक तरंग फुरे हो और कुछ काल रहके फिर उसी में लीन हो जावोगे-इससे तुम्हारा स्वरूप निरामय ब्रह्म है । सब जगत् ब्रह्म का स्पन्द है और समय पाकर दृष्टि आता है, इससे मान, मद, शोक और सुख, दुःख सब असत्ूरूप हैं । तुम शान्तिमान् हो रहो । हे अर्जुन! प्रथम तो तुम ब्रह्ममय युद्ध करो और जो कुछ अक्षौहिणी सेना है उसका अनुभव से नाश करो । यह द्वैत कुछ नहीं एक ही सर्वदा परब्रह्मरूप स्थित है- ब्रह्ममय युद्ध करो और सुख, दुःख, हानि लाभ और जय, अजय इनकी उस युद्ध में एकता करो । ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जो कुछ जगत् भासता है सो सब ब्रह्म ही है ब्रह्म से कुछ भिन्न नहीं, ऐसे जानके लाभ हानि में सम होकर स्थित हो और चिन्तना कुछ न करो हे अर्जुन! जड़ शरीर से कर्म स्वाभाविक होते हैं, जैसे वायु का फुरना स्वाभाविक होता है तैसे ही शरीर से कर्म स्वाभाविक होते हैं । हे अर्जुन! भोजन, यजन, दान इत्यादिक जो कुछ कार्य

www.tantrik-astrologer.in

करो सो आत्मा ही में अर्पण करो, सदा आत्मसत्ता में स्थित रहो और सबको आत्मरूप देखो। हे अर्जुन! जो किसी के हृदय में दृढ़ निश्चय होता है वही उसको भासता है। जब तुम इस प्रकार अभ्यास करोगे तब ब्रह्मरूप हो जावोगे-इसमें संशय नहीं। हे अर्जुन! जो कर्मों में आत्मा को अकर्त्ता देखता है वह मनुष्यों में बुद्धिमान् है और सम्पूर्ण कर्मों के करते भी कुछ नहीं करता। हे अर्जुन! कर्मों के फल की इच्छा भी न हो और कर्मों से विरसता भी न हो- योग में स्थित होकर कर्म को करो। हे धनंजय! कर्तृत्व के अभिमान और फल की वाञ्छा को त्यागकर कर्म करो। जो कर्मों के फल और संग को त्यागकर नित्य तृप्त हुआ है वह करता हुआ भी कुछ नहीं करता। हे अर्जुन! जिसने सब आरम्भों में कामना और संकल्प का त्याग किया है और ज्ञान अग्नि से कर्म जलाये हैं उसको बुद्धिमान् पण्डित कहते हैं। जो आत्मा में समस्थित है और सब अर्थों में निस्स्पृह और निर्द्वन्द्वसत्ता में स्थित है यथा प्राप्ति में बर्तता है सो पृथ्वी का भूषण है और समुद्र की नाईं अचल अपने आपसे तृप्त है। जैसे समुद्र में अनिच्छित जल प्रवेश करता है तैसे ही ज्ञानवान् में सुख प्रवेश करते हैं। वह शान्तरूप सर्व कामनाओं से रहित है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपदेशे सर्वब्रह्मप्रतिपादनन्नाम त्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||53||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

जीवनिर्णय

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! तुम देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित , अविनाशी और अजर आत्मा हो । अजर परिणाम से रहित को कहते हैं । हे अर्जुन! तुम शोक मत करो, यह जगत् तुमको अज्ञान से भासता है- अज्ञान अपने प्रमाद को कहते हैं और प्रमाद अनात्म में आत्म अभिमान करने का नाम है । हे अर्जुन! यह जो संसाररूप तुम्हारा देह है इसमें अभिमान मत करो-यह मिथ्या है- इसमें दुःख होता है और तुम असंग और अविनाशी हो, तुम्हारा नाश कदाचित् नहीं होता । हे अर्जुन! जो विनाशरूप है वह कदाचित् न होगा और जो सत्य है उसका अभाव न होगा । तत्त्ववेत्ताओं ने इन दोनों का निर्णय किया है । हे अर्जुन यह सब प्रकाशता है उसको तुम अविनाशी जानो उसको कोई विनाश नहीं कर सकता । हे अर्जुन! तुम ऐसे हो और यह आत्मा सबका अपना आप है उसका विनाश कैसे हो? अज्ञानी मनुष्य उसका विनाश होता मानते हैं । अर्जुन ने पूछा, हे भगवन्! आप कहते हैं कि आत्मा अविनाशी है और सबका अपना आप है तो उनका क्योंकर नाश होता है? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! तुम सत्य कहते हो । किसी का नाश नहीं होता परन्तु अज्ञान से अपना नाश होता मानते हैं । हे अर्जुन! तुम आत्मवेत्ता हो रहो । वह आत्मा एक अद्वैत है जिसको एक भी नहीं कह सकते तो द्वैत कहाँ हो? अर्जुन बोले, हे भगवन्! आप कहते हैं कि आत्मा एक है तो मृत्यु भी दूसरा न हुआ और लोग मर के नरक-स्वर्ग भोगते हैं, यदि मृत्यु नहीं तो लोग मरते क्यों हैं और पाप-पुण्य क्यों भोगते हैं? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! न कोई मरता है और न जन्मता है-यह स्वप्न की नाईं मिथ्या कल्पना है । जैसे निद्रादोष से जन्मना और मरना भासता है तैसे ही संसार में यह जन्म मरण अज्ञान से भासता है । अज्ञान फुरने का नाम है उस फुरने ही से नरक और स्वर्ग कल्पा है । हे अर्जुन! जैसे यह जीव भोगता है सो तुम सुनो । इस जीव ने अपने स्वरूप के प्रमाद से संकल्प के शरीर रचे हैं । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश में मन, बुद्धि और अहंकार से जीव प्रकाश करता है ।उससे मिलकर जैसी वासना करता है तैसा ही आगे भोगता है । वह वासना तीन प्रकार की है-एक सात्त्विकी, दूसरी राजसी और तीसरी तामसी । जैसी वासना होती है तैसा ही स्वर्ग और नरक बन जाता है । सात्त्विकी वासना से स्वर्ग बन जाता है और भिन्न से नरकादिक बन जाते हैं । स्वर्ग- नरक केवल वासनामात्र हैं , वास्तव में न कोई स्वर्ग है और न नरक है, न कोई मरता है, न जन्मता है केवल एक आत्मा ही ज्यों का त्यों स्थित है परन्तु यह जगत् भास भ्रम से होता है । इस जीव ने अज्ञान से चिरकाल वासना का अभ्यास किया है, उसी से भ्रम देखता है । अर्जुन बोले, हे जगत्पते! यह जीव जो नरक, स्वर्गादिक योनि जगत् में देखता है उसका कारण कौन है? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! अज्ञान से जो अनात्मा में आत्म अभिमान हुआ है उससे जगत् को सत् जानकर वासना करने लगा है और जैसे-जैसे जगत् को सत् जानकर वासना करता है तैसे ही जगत् भ्रम देखता है । जब आत्मविचार उपजता है तब जगत् को स्वप्न की नाईं देखता है और वासना भी क्षय हो जाती है और जब वासना क्षय होती है तब कल्याण होता है । फिर अर्जुन ने पूछा, हे भगवन्! चिर अभ्यास से जो संसार भ्रम दृढ़ हो रहा है सो किस प्रकार उपजा है और किस प्रकार लीन होगा? श्रीभग वान् बोले, हे अर्जुन! मूर्खता और अज्ञता से जो अनात्म देहादिक में आत्मभावना होती है उससे जगत् को सत् जान वासना करता है और उस वासना के अनुसार जगत्‌भ्रम देखता है पर जब स्वरूप का अभ्यास करता है तब वासना नष्ट हो जाती है इससे हे अर्जुन! तुम स्वरूप का अभ्यास करो । अहं, मम आदिक वासना को त्यागकर केवल आत्मा की भावना करो यह देह वासनारूप है जब वासना

www.tantrik-astrologer.in

निवृत्त होगी तब देह भी लीन हो जावेगी और जब देह लीन हुई तब देश, काल, क्रिया, जन्म, मरण भी न रहेंगे। यह अपने ही संकल्प से उठे हैं और भ्रमरूप हैं, उनकी वासना से घेरा हुआ जीव भटकता है। जब आत्मबोध होता है तब वासना से मुक्त होता है और निरालम्ब असंकल्प अविनाशी आत्मतत्त्व पाता है। उसी को मोक्ष कहते हैं। हे अर्जुन! जब जीव को तत्त्वबोध होता है तब वासनारूपी जाल से मुक्त होता है और जो वासना से मुक्त हुआ सो मुक्त हुआ। यदि पुरुष सर्वधर्म-परायण भी हो और सर्वज्ञ और शास्त्रों का वेत्ता भी हो पर यदि वासना से मुक्त नहीं हुआ तो वह सब ओर से बन्ध है- जैसे दृष्टि के दोष से निर्मल आकाश में मोर के पुच्छवत् तारे भासते हैं तैसे ही मूर्ख को शुद्ध आत्मा में वासनारूपी मल जगत् भासता है। जैसे पिंजरे में पक्षी बन्द होता है तैसे ही वह बन्ध होता है। जिसके हृदय में वासना है वह बन्ध है और जिसके हृदय में वासना नहीं है उसको मोक्ष जानो। हे अर्जुन! जिसके हृदय में जगत् की वासना है वह यदि बड़ी प्रभुता संयुक्त दृष्टि आता है तो भी दरिद्री है और दुःख का भागी है, और जिसकी वासना नष्ट हुई है वह यदि प्रभुता से रहित दृष्टि आता है तो भी बड़ा प्रभुतावान् है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवनिर्णयोनाम चतुष्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ||54||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

अर्जुन विश्रान्तिवर्णन

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! इस प्रकार तुम निर्वासनिक जीवन्मुक्त होकर विचरो तब तुम्हारा अन्तःकरण शीतल हो जावेगा, जरामरण से मुक्त और निःसंग आकाशवत् होगे और इष्ट अनिष्ट को त्याग वीतराग होकर स्थित होगे । हे अर्जुन! पतित प्रवाह जो कार्य आन प्राप्त हो उसको करो और युद्धमें कायरता मत करो । आत्मा अविनाशी है और देह नाशवन्त है, देह के नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता । हे अर्जुन! जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं वे रागद्वेष से रहित होकर प्रवाह पतितकार्य को करते हैं । तुम भी जीवन्मुक्त स्वभाव होकर विचरो और `यह मैं करू', इस ग्रहणत्याग के संकल्प को त्यागो ।इसी से ज्ञानवान् बन्धवान् नहीं होते । जो मूर्ख हैं वे इसमें बन्धवान् होते हैं और जीवन्मुक्त पुरुष सुषुप्तवत् स्थित होकर प्रवाह पतित और प्रबुद्ध की नाईं वासना से रहित हुए कार्य करते हैं । जैसे कच्छप अपना अंग समेट लेता है तैसे ही ज्ञानवान् वासना को सकुचा लेता है और आपको चिन्मात्ररूप जानता है । मुझमें जगत् माला के दानों की नाई पिरोया हुआ है और सब जगत् मेरा अंग है । जैसे अपने हाथ पसारे और समेटे और जैसे समुद्र से तरंग उठते और लीन होते हैं, तैसे ही विश्व आत्मा से उपजते और लीन होते हैं-भिन्न कुछ नहीं । हे अर्जुन! जैसे चँदव के ऊपर नाना प्रकार के चित्र लिखे होते हैं परन्तु वह रंग और वस्त्र से भिन्न नहीं होते, तैसे ही आत्मा में मनरूपी चितेरे ने जगत् रचा है और अनउपजा होकर भासता है ।जैसे थंभे में चितेरा कल्पना करता है कि इतनी पुतलियाँ निकलेंगी सो आकाशरूपी पुतलियाँ उसके मन में फुरती हैं, तैसे ही ये तीनों जगत् कालसंयुक्त चित्त में फुरते हैं । चितेरा भी मूर्तियाँ तब लिखता है जब उसके चित्त के भीतर कल्पना होती है पर यह आश्चर्य है कि मन आकाश में चित्त कल्पता है । हे अर्जुन! यह चित्र स्पष्ट भासता है तो भी आकाशरूप है । जैसे स्वप्नसृष्टि आकाशरूप होती है तैसे ही यह भी है आकाश और भीत में भेद नहीं परन्तु आश्चर्य है कि भेद भासता है । जैसे मनोराज स्वप्नपुर में जगत् मन के फुरने से भासता है और अफुर हुए लय हो जाता है सो मनोमात्र है, तैसे ही यह मनोमात्र है और आकाश से भी शून्यरूप है । जैसे स्वप्नपुर और मनोराज में एक क्षण में बड़े काल का अनुभव होता है और पूर्वरूप के विस्मरण से सत् हो भासता है तैसे ही यह जगत् सत् हो भासता है । जबतक प्रमाद होता है तबतक भासता है पर जब इस क्रम से आत्मा को देखता है तब जगत््भ्रम निवृत्त हो जाता है यद्यपि प्रकट देखता है परन्तु लीन हो जाता है और शरत््काल के आकाशवत् निर्मल भासता है । जैसे चितेरे के मन में चित्र फुरते हैं सो आकाशरूप है तैसे ही यह जगत् आकाशरूप है । हे अर्जुन! भाव-अभाववृत्ति को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो तब आकाशवत् निर्मल हो जावोगे । जैसे मेघ की प्रवृति में और निवृत्ति में आकाश निर्मल ही होता है, तैसे ही तुम भी पदार्थ के भाव-अभाव में निर्मल हो । जो कुछ पदार्थ भासते हैं वे सब आकाशरूप हैं । जैसे चितेरे के मन में पुतलियाँ भासती हैं तैसे ही यह जगत् आकाशरूप है । जैसे एक क्षण में मन के फुरने से नाना प्रकार के पदार्थ भासि आते हैं और अफुर हुए लीन हो जाते हैं, तैसे ही प्रमाद से जगत् भासता है और आत्मा के जानने से लीनहो जाता है । आत्मा में जगत् निर्वाणरूप है पर आत्मा में एक निमेष के फुरने के द्वारा प्रमाद से वज्रसार की नाईं दृढ़ हो भासता है और चित्त के फुरने सत् भासता है यह सब जगत् आकाशरूप है- द्वैत कुछ हुआ नहीं पर बड़ा आश्चर्य है कि आकाश पर लिखे हुए चित्र नानारूप रमणीय होकर भासते हैं और मन को मोहते हैं । हे अर्जुन! यही आश्चर्य है कि कुछ है नहीं और नाना प्रकार के रंग भासते हैं । आकाशरूपी नील ताल में चन्द्रमा और तारे आदिक फूल खिले हैं और उनमें मेघरूपी पत्र लगे हैं । हे अर्जुन! और आश्चर्य देखो

www.tantrik-astrologer.in

कि चित्र भी तब होता है जब उसका आधार भीत अथवा वस्त्र होता है और यहाँ चित्र प्रथम उत्पन्न होते हैं आधार अर्थात् दीवार पीछे बनती है । प्रथम ये मूर्ते और चित्र बने हैं और पीछे भीत हुई है, यही आश्चर्य है । हे अर्जुन! यह माया की प्रधानता है कि वास्तव आकाश रूप चितेरे ने आकाशरूप पुतलियाँ रची हैं । आकाश में आकाशरूप पुतलियाँ उपजी हैं और आकाश में ही लीन होती हैं, आकाश ही को भोजन करती हैं, आकाश ही को आकाश देखता है, आकाश ही यह सृष्टि है और आकाश ही रूप आकाश आत्मा में आकाशरूप स्थित है । हे अर्जुन! वास्तव में आत्मा ऐसे है । ऐसे अद्वैतरूप आत्मा में जो उत्थान हुआ है उस उत्थान से उसको स्वरूप का प्रमाद हुआ है जिससे दृश्य भ्रम देखता है और अनेक वासनायें होती हैं । वासनारूपी रस्सी से बाँधा हुआ भटकता है और वासना से घेरा हुआ अहं त्वं आदिक शब्दों को जानने लगता है और नाना प्रकार के भ्रम देखता है तो भी स्वरूप ज्यों का त्यों है । जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ता है और दर्पण ज्यों का त्यों रहता है तैसे ही आत्मा में जगत् प्रतिबिम्बित होता है और आत्मा छेद भेद से रहित है । ब्रह्म ही ब्रह्म में स्थित है-जब सर्व वही है तब छेद भेद किसका हो? जैसे जल में तरंग और बुद्बुदे जलरूप हैं तैसे ही यह सब ब्रह्म ही से पूर्ण है उसमें द्वैत कुछ नहीं । जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसे ही आत्मा में आत्मा स्थित है । उसमें वास वासक कल्पना कोई नहीं परन्तु स्वरूप के प्रमाद से वास वासक भेद होता है । जब स्वरूप का ज्ञान होता है तब वासना नष्ट हो जाती है । हे अर्जुन! जो वासना से मुक्त है वही मुक्त है और वासना से बाँधा हुआ बाँध है । यदि सब शास्त्रों का वेत्ता भी हो और सर्वधर्मों से पूर्ण हो तो भी यदि वासना से मुक्त नहीं हुआ तो बन्ध ही है जैसे पिंजरे में पक्षी बन्ध होता है तैसे ही वह वासना से बँधा हुआ है । हे अर्जुन! जिसके हृदय में वासना का बीज है यद्यपि बाह्य दृष्टि नहीं आता तो भी बहुत फैल जावेगा जैसे वट का बीज फैल जाता है तैसे ही वह वासना फैल जावेगी । जिस पुरुष ने आत्मा का अभ्यास किया है और उससे ज्ञानरूपी अग्नि उपजाकर वासनारूपी बीज जलाया है उसको फिर संसारभ्रम नहीं उदय होता और न वस्तु बुद्धि से पदार्थों को ग्रहण करता है न सुख दुःख आदिक में डूबता है-सदा निर्लेप रहता है । जैसे तूँबी जल के ऊपर ही रहती है तैसे ही वह सुख दुःख के ऊपर रहता है । हे अर्जुन! तुम शान्त आत्मा हो । तुम्हारा भ्रम अब दूर हुआ है और आत्मपद को तुम प्राप्त हुये हो । तुम्हारा मन और मोह निर्वाण हो गया है और सम्यक्ज्ञानी हुये हो । व्यवहार करना और तूष्णीम् रहना तुमको दोनों तुल्य हैं और शान्तरूप निःशंकपद को प्राप्त हुए हो । यह मैं जानता हूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे श्रीकृष्ण अर्जुनसंवादे अर्जुन विश्रान्तिवर्णनन्नाम पञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः

||55||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

भविष्यद् गीता

अर्जुन बोले, हे अच्युत! मेरा मोह अब नष्ट हुआ है और मैं आत्म स्मृति को प्राप्त हुआ हूँ । आपके प्रसाद से मैं अब निःसंदेह होकर स्थित हुआ हूँ, अब जो कुछ आप कहिये वह मैं करूँ । श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! मन की पाँच वृत्तियाँ हैं- विपर्यय, विकल्प, अभाव और स्मृति । जब ये पाँचों हृदय से निवृत्त हों तब चित्त शान्त हो । उसके पीछे चैत्य से रहित चैतन्य जो शेष रहता है उसको प्रत्यक्ष चैतन्य कहते हैं । वह वस्तुरूप है सब उपाधि से रहित पूर्ण है और सर्वरूप है । जो उस पद को प्राप्त है उसको आधि-व्याधि आदिक दुःख नहीं हो सकते । जैसे जाल से निकलकर पक्षी आकाशमार्ग को उड़ता है तैसे ही वह देहाभिमान से मुक्त होकर आत्मपद को प्राप्त होता है । हे अर्जुन! प्रत्यक्ष जो चैतन्य सत्ता है सो परम प्रकाशरूप , शुद्ध और संकल्प विकल्प से रहित है और इन्द्रियों के विषय में नहीं आती इन्द्रियों से अतीत है । जो पुरुष सबसे अतीत पद को प्राप्त हुआ है उसको वासना नहीं स्पर्श कर सकती । उसके प्राप्त हुए ये घट पट आदिक पदार्थ सब शून्य हो जाते हैं और वहाँ तुच्छ वासना का कुछ बल नहीं चलता । जैसे अग्नि समूह के निकट बरफ गल जाती है और उसकी शीतलता नहीं रहती, तैसे शुद्धपद के साक्षात्कार हुए चित्तवृत्ति नष्ट हो जाती है और वासना का भी अभाव हो जाता है । हे अर्जुन! वासना तबतक फुरती है जबतक संसार को सत्य जानता है, जब आत्मपद की प्राप्ति होती है तब संसार और वासना का अभाव हो जाता है । इस कारण विरक्त पुरुष को सत्य जानने से कुछ वासना नहीं रहती नाना प्रकार के आकार विकारसंयुक्त अविद्या तबतक फुरती है जब तक शुद्ध आत्मा को अपने आप से नहीं जाना । शुद्ध आत्मा को प्राप्त हुये जगत्ॎभ्रम सब नष्ट हो जाता है, स्वच्छपद आत्मतत्त्व में स्थित होता है, आकाशवत् निर्मलभाव को प्राप्त होता है और अपने आपको सबमें पूर्ण देखता है वही आत्मसत्ता सब आकाररूप है और सब आकार रूपों से रहित भी है । हे अर्जुन! जो शब्द से अतीत परमवस्तु है उसको किसकी उपमा दीजे? जो वासनारूपी विसूचिका रूप त्यागकर अपने आत्मस्वभाव में स्थित हुआ पृथ्वी में विचरता है वह त्रिलोकी का नाथ है । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार त्रिलोकी के नाथ कहेंगे तब अर्जुन एक क्षण मौन में स्थित हो जावेंगे और उसके उपरान्त कहेंगे कि हे भगवन्! मेरे सब शोक नष्ट हो गये हैं और जैसे सूर्य के उदय हुए कमल खिल आते हैं तैसे ही आपके वचनों से मेरा बोध खिल आया है-अब जो आप की आज्ञा हो वह मैं करूँ । इस प्रकार कहकर अर्जुन गाण्डीव धनुष ग्रहण करेंगे और भगवान् सारथी करके निःसंदेह और निश्शंक होकर रणलीला करेंगे जिसमें हाथी, घोड़े, मनुष्य मारकर लोहू के प्रवाह चलावेंगे तो भी आत्मतत्त्व में स्थित रहेंगे और स्वरूप से चलायमान न होंगे । जैसे पवन मेघ का अभाव कर देता है । तैसे ही योधाओं का नाश करेंगे ।।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे श्रीकृष्णअर्जुनसंवादे भविष्यद् गीतानामोपाख्यानसमाप्तिर्नाम षट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ।।56।।

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

प्रत्यगात्मबोधवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसी दृष्टि का आश्रय करो जो दृष्टि दु:ख का नाश करती है नि:संग सन्यासी हो अपने सब कर्म और चेष्टाओं को ब्रह्म अर्पण करो । जिसमें यह सब है और जिससे यह सर्व है ऐसी सत्ता को तुम परमात्मा जानो । अनुभवरूप आत्मा है उसकी भावना से उसी को प्राप्त होता है- इसमें संशय नहीं । जो सत्ता संवेदन फुरने से रहित चैतन्य है उसी को तुम परमपद जानो । वह सबका परम जानो । वह सबका परमदृष्टा रूप है और सबका प्रकाशक है और महा उत्तमपरम गुरू है । जिसको शून्यवादी शून्य, विज्ञानवादी विज्ञान और ब्रह्मवादी ब्रह्म कहते हैं वह परमसार शान्तरूप शिव अपने आप में स्थित है वही आत्मा इस जगत्‌रूपी मन्दिर को प्रकाश करनेवाला दीपक है, जगत्‌रूपी वृक्ष का रस है, जगत्‌रूपी पशु का पालनेवाला गोपाल है, जीवरूपी मोतियों को एकत्र करनेवाला तागा है । हृदय और भूतरूपी मिर्चों में तीक्ष्णता है निदान सब पदार्थों में पदार्थरूप सत्ता वही है । सत्य में सत्यता और असत्य में असत्यता वही है । जगत्‌ रूपी गृह में सब पदार्थों का प्रकाशनेवाला दीपक वही है और उसी से सब सिद्ध होते हैं चन्द्रमा, सर्व, तारे आदिक जो प्रकाशरूप दीखते हैं उनका भी वह प्रकाशक है । यह जड़ प्रकाश है और वह चैतन्य प्रकाश है उसमें ये सिद्ध होते हैं और उसी से सब प्रकाश प्रकट हुये हैं । वह आत्मसंवित् अपने ही विचार से पाया जाता है । हे रामजी! जो कुछ भाव अभाव पदार्थ भासते हैं वे असत् हैं, वास्तव में कुछ हुए नहीं प्रमाददोष से भासते हैं और जब विचार उपजता है तब नष्ट हो जाते हैं । हे रामजी! जिसके हृदय में अहंभाव है उसे ऐसा जो जगत्जाल है सो मिथ्याभ्रम से भासता है उसको उपजा क्या कहिये और किसकी और किसकी आस्था कीजिये? यह जगत् कुछ वस्तु नहीं । आदि, अन्त, मध्य की कल्पना से रहित जो देव है । वह ब्रह्मसत्ता समान अपने आपमें स्थित है और द्वैत कुछ बना नहीं । जब यह तुमको दृढ़ निश्चय होगा तो तुम व्यवहार करते भी हृदय से नि:संग और शान्तरूप होगे । हे रामजी! जिस पुरुष की उस समान सत्ता में स्थिति हुई है वह इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में रागद्वेष से रहित हृदय से सदा शान्तरूप रहता है। वह न उदय होता है, न अस्त होता है,सदा समता भाव में स्थित रहता है । वह स्वस्थरूप अद्वैतत्त्व में स्थित होता है और जगत् की ओर से सुषुप्तवत् हो जाता है, व्यवहार भी करता है परन्तु दर्पण के सदृश क्षोभवान् नहीं होता । जैसे मणि सब प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है परन्तु उसका संग नहीं करती, तैसे ही ज्ञानवान् पुरुष कदाचित् कलना कलंक को नहीं प्राप्त होता, उसका चित्त व्यवहार में सदा निर्मल रहता है । ज्ञानवान् को जगत् आत्मा का चमत्कार भासता है, न एक है, न अनेक है, आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है । चित्त में जो यह चेतनभाव भासता है उस चित्त के फुरने का नाम संसार है और फुरने से रहित अफुर का नाम परमपद है । हे रामजी! महाचैतन्य में जो निज का अभाव है कि मैं आत्मा को नहीं जानता, इसी का नाम चित्तस्पन्द है और यही संसार का कारण है । जब यह भावना क्षय हो तब चित्त अफुर हो । हे रामजी! जहा निजभाव होता है वहाँ पदार्थों का अभाव होता है । वह निज ठौर अपने अर्थ को सिद्ध करती है परन्तु आत्मा में नहीं प्रवर्त्त सकती । जब जीव कहता है कि मैं आत्मा को नहीं जानता तब भी आत्मा का अभाव नहीं होता क्योंकि अभाव को जाननेवाला भी आत्मा ही है । जो आत्मतत्त्व न हो तो अभाव कौन कहे सो आत्मा परमशून्य है परन्तु अजड़रूप परम चैतन्य है । हे राम जी! तुम निज का अर्थ आत्मा में करो और आत्मा का अभाव न मानो । अनात्म में जो निज का भावत्व है उसका अभाव करो अर्थात् अनात्म का अभावरूप मानो । जब इस प्रकारदृढ़ भावना करोगे तब संसारभ्रम निवृत्त हो जावेगा और केवल आत्मभाव

www.tantrik-astrologer.in

शेष रहेगा । हे राम जी! चित्त के फूरने का नाम संसार है चित्त के फुरने से ही संसारचक्र वर्तता है जैसे सुवर्ण से भूषण प्रकट होते हैं तैसे ही चित्त से त्रिपुटी होती है पर चित्त स्पन्द भी कुछ भिन्न वस्तु नहीं आत्मा का आभासरूप है । अज्ञान से चित्त स्पन्द होता है और ज्ञान से लीन हो जाता है । जैसे सुवर्ण के भूषण को गलाये से भूषण बुद्धि नहीं रहती तैसे ही चित्त अचल हुए चित्संज्ञा जाती रहती है और जैसे भूषण के अभाव हुये सुवर्ण ही रहता है- तैसे ही बोध से चित्त के लीन हुये शुद्ध चैतन्य सत्ता शेष रहती है । फिर भोगों की तृष्णा लीन हो जाती है और जब भोगवासना निवृत्त होती है तब ज्ञान का परम लक्षण सिद्ध होता है । हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुष है और जिसने सत्ूरूप को जाना है उसको भोग की इच्छा नहीं रहती । जैसे जो पुरुष अमृतपान से अघा जाता है उसको खली आदिक तुच्छ भोजन की इच्छा नहीं रहती तैसे ही आत्मज्ञान से जो संतुष्ट हुआ है उसको विषय की तृष्णा नहीं रहती । यह निश्चय करके जानो कि जब चित्त फुरता है तब जगत्भ्रम हो भासता है और सत्य जानकर भोग की इच्छा होती है पर जब बोध होता है तब जगत्भ्रम लीन हो जाता है तो फिर तृष्णा किसकी करे । यदि इन्द्रियों के विषय प्राप्त हों और हटकर उनको न भोगे वह मूर्ख है वह मानो अस्त्र से आकाश को छेदता है । हे रामजी! गुरु और शास्त्रों की युक्ति से मन वश होता है, उनकी युक्ति बिना शुद्धता नहीं होती । यदि कोई अपने अंग ही को काटे और उससे चित्त को स्थित किया चाहे तो भी चित्त स्थिर नहीं होता और न संसारभ्रम ही मिटता है । जबतक चित्त में स्थित है तबतक जगत्ृभ्रम दीखता है और जब गुरु और शास्त्रों की युक्ति ग्रहण करके चित्ता का अभाव होता है तब चित्त नष्ट और अचल हो जाता है । जैसे बालक को अन्धकार में पिशाच भासता है और दीपक जलाकर देखे से अन्धकार निवृत्त होकर पिशाचभ्रम नष्ट हो जाता है तब बालक निर्भय होता है, तैसे ही आत्मज्ञानरूप युक्ति से अज्ञान निवृत्त होता है, असम्यक्ुबुद्धि से जगत्भ्रम हुआ है और सम्यक्ुबोध से निवृत्त हो जाता है, फिर जाना नहीं जाता कि अज्ञान का जगत्भ्रम कहाँ गया । जैसे दीपक के निर्वाण हुए नहीं जानता कि प्रकाश कहाँ गया, तैसे ही अज्ञान नष्ट हुए नहीं जाना जाता कि जगत् कहाँ गया । चित्त के फुरने से बन्ध होता है और अफुरने से मोक्ष होता है परन्तु आत्मा से भिन्न कुछ नहीं आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है, उसमें न बन्ध है, न मोक्ष है । हे रामजी! जबमोक्ष की इच्छा होती है तब भी उसकी पूर्णता का क्षय होता है और निःसंवेदन हुए कल्याण होता है । जो अनाभास अजड़रूप परमपद है- वह चैतन्यौन्मुखत्व से रहित है । हे रामजी! बन्ध मोक्ष आदिक भी कलना में होते हैं जब कलना से रहित बोध होता है तब बन्ध मोक्ष दोनों नहीं रहते । जबतक विचार से नहीं देखा तब तक बन्ध और मोक्ष भासता है विचार किये से दोनों का अभाव हो जाता है । जब `अहं' `त्वं' `इदं' आदिक भावना का अभाव हुआ तब किसको कौन बन्ध कहे और किसको कौन मोक्ष कहे सब कलना का अभाव हो जाता है तब शान्तिमान् होता है अन्यथा नहीं होता इससे चित्त को आत्मपद में लीन करो । जिसके आश्रय यह जगत् उपजता है और लीन होता है ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है उसी अनुपमरुप प्रत्यक्ष आत्मप्रकाश में स्थित हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रत्यगात्मबोधवर्णनन्नाम सप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः ।।57।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

विभूतियोगोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! परमतत्त्व परमात्मपद हमको सदा प्रत्यक्ष है और वस्तुरूप वही है उससे कुछ भिन्न नहीं । यह प्रत्यक्ष आत्मा है और सर्वसता का दर्पण है, सर्व सत्ता इसी से प्रकट होती है । जैसे बीज से वृक्ष की सत्ता प्रकट होती है तैसे ही आत्मा से जगत्सत्ता प्रकट होती है । हे रामजी! मन बुद्धि, चित्त, अहंकार जड़ात्मक हैं और इनसे रहित परमपद है । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक सब उसी में स्थित हैं जैसे चक्रवर्ती राजा निर्धन से ऊँचा शोभता है तैसे ही उस सत्ता को पाकर जीव सब लोगों से ऊँचे शोभता है । उस आत्मा को प्राप्त होकर फिर मृत्यु को नहीं प्राप्त होता और न कदाचित शोकवान् ही होता है न क्षीण होता है एक क्षणमात्र भी जो अप्रमादी होकर आत्मा को ज्यों का त्यों जानता है वह संसारकलना को त्यागकर मुक्त होता है । रामजी ने पूछा हे भगवन्, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के अभाव हुए जो सत्तासामान्य शेष रहती है उसका भान कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो सब देहों में स्थित होकर भोजन और जल-पान करता और देखता, सुनता, बोलता इत्यादिक क्रिया करता दृष्टि आता है सो आदि-अन्त से रहित संवित् सत्ता सर्वगत अपने आपमें स्थित है- और सर्वविश्वरूप वही है । आकाश में आकाश, शब्द में शब्द, स्पर्श में स्पर्श, नासिका में गन्ध, शून्य में शून्य , नेत्रों में रूप, पृथ्वी में पृथ्वी, जल में जल, तेज में तेज, वृक्षों में रस, मन में मन, बुद्धि में बुद्धि, अहंकार में अहंकार, अग्नि में अग्नि, उष्णता में उष्णता, घट में घट, पट में पट , वट में वट, स्थावर में स्थावर, जंगम में जंगम, चेतन में चेतन, जड़ में जड़, काल में काल, नाश में नाश, बालक में बालक, यौवन में यौवन, वृद्ध में वृद्ध और मृत्यु में मृत्युरूप होकर वही परमेश्वर स्थित है । हे रामजी! इस प्रकार सब पदार्थों में वह अभिन्नरूप स्थित है, नानात्वदृष्टि भी आती है परन्तु अनाना है और भ्रम से भासती है । जैसे परछाहीं में भ्रम से वैताल भासता है तैसे ही आत्मा में नानात्व भासता है । सबमें, सब ठौर, सब प्रकार, सर्व आत्मा ही स्थित है, ऐसा जो आत्मदेव सत्तासमान है उसमें स्थित हो । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने कहा तब दिन अस्त होने से सब सभासद् परस्पर नमस्कार करके स्नान को गये और सूर्य के निकलते ही फिर अपने अपने आसन पर आन बैठे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विभूतियोगोपदेशोनामाष्ट पञ्चाशत्तमस्सर्गः ।।58।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

जाग्रत्स्वप्नविचारो

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जैसे हमारे स्वप्न में पुर, नगर और मण्डल होते हैं तैसे ही ब्रह्मादिक ने इस देह को ग्रहण किया है उनको असत् प्रतीति है और हमको दृढ़ प्रतीति कैसे उपजी है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम ब्रह्मा को सर्‌ग असत्वत् भासता है, वास्तव नहीं भासता । सर्वगत चैतन्य संवित को संसार के दर्शन से जब सम्यक् दर्शन का अभाव हुआ और स्वप्नरूप में आपसे अहंप्रतीति उपजी तब दृढ़ होकर देखने लगा । जैसे अपने स्वप्न में जगत् दृढ़ भासता है और उसे स्वप्ना नहीं जानता, तैसे ही ब्रह्मा का जगत् भी दृढ़ भासता है , स्वप्ना नहीं भासता । जो स्वप्न पुरुष से उपजा है सो स्वप्नरूप है । हे रामजी! ऐसा जो सर्ग है सो जीव जीव प्रति उदय हुआ है । जैसे समुद्र में तरंग फुरते हैं तैसे ही चैतन्यतत्त्व का आभास जगत् फुरते हैं और जैसे स्वप्नपुर में असत् पदार्थ होते हैं तैसे ही यह पदार्थ भी अवास्तव हैं और मन के संकल्प से भ्रममात्र ही स्पष्ट भासते हैं । हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि इस जगत् में सिद्ध नहीं होता और का और नहीं भासता और मर्यादा नहीं त्यागता, क्योंकि मन के संकल्प से उपजे हैं । तुम देखो कि जल में अग्नि स्थित है-जैसे समुद्र में बड़ वाग्नि है सो विपर्यय है । इसी कारण से कहता हूँ कि मनोमात्र है । और देखो कि आकाश में नगर बसते हैं, विमान प्रत्यक्ष चलते हैं और चिन्तामणि आदिक से कमल उपजते हैं । जैसे हिमालय पर्वत में बरफ उपजती है और सब ऋतु के फूल एकही समय उपजते हैं । जैसे संकल्प के वृक्ष से पत्थर निकल आते हैं, शिला में जल निकलता है, चन्द्रकान्ति से अमृत द्रवता है और निमेष में घट पट हो जाते हैं और पट घट हो जाते हैं, निदान स्वरूप के विस्मरण हुए सत् को असत् देखता है जैसे स्वप्नमें अपना मरना देखता है, जल ऊर्ध्व को चलता देखता है, मेघ होकर स्वर्ग में गंगा बहती देखता है और पत्थर उड़ते देखता है । जैसे पंखों सहित पहाड़ उड़ते हैं और चिन्तामणि शिलारूप से सब पदार्थ उपजते हैं इत्यादिक भ्रम से नानात्व विपर्ययरूप हो फुरते हैं । इससे तुम देखो कि सब मनोमात्र हैं और से और हो जाते हैं । हे रामजी! यह इन्द्रजाल, गन्धर्व-नगर और साम्बरी मायावत् है असत् ही भ्रम करके सत् हो भासता है । ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि सत् नहीं और असत् भी नहीं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्‌ुस्वप्नविचारोनामैकोनषष्टितमस्सर्गः ||59||

www.tantrikastrologer.in

अनुक्रम

ब्रह्मैकताप्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार मिथ्या है । जो पुरुष इसको सत्य जानता है वह महामूर्ख है और भ्रम में भ्रम देखकर महामोह को प्राप्त होता है । जैसे कोई मृग गढ़े में गिर पड़ता है तो महादुःखी होता है और उससे भी बड़े गढ़े में गिरता है तो अति दुःख पाता है, तैसे ही जो मूर्ख पुरुष है वह आत्मा के अज्ञान से संसाररूपी गढ़े में गिरता है और उससे अनेक भ्रम देखता है और स्वप्न से स्वप्नान्तर देखता है । इसी से एक इतिहास कहता हूँ उसे मन लगाकर सुनो । एक मननशील सन्यासी योग के आठवें अंग समाधि में स्थित था और उसका हृदय समाधि करते करते शुद्ध हुआ था । समाधि में दिन को व्यतीत करे और जब समाधि से उतरे तो फिर आसन लगाकर समाधि में लगे । इसी प्रकार जब बहुत काल बीता तो एक समय समाधि से उतर वह यह चिन्तना करने लगा कि जैसे प्राकृतिक पुरुष विचरते और चेष्टा करते हैं तैसे ही मैं भी कुछ चेष्टा रचूँ ऐसे विचार करके उसने मन के संकल्प से विश्व कल्पा और उसमें एक आप भी बना और उसका नाम झीवट हुआ निदान मद्यपान करे और ब्राह्मणों की सेवा भी करे । चेष्टा करते करते सो गया और स्वप्न में उसको ब्राह्मण के शरीर का भान हुआ तो उस ब्राह्मणशरीर में वेद का अध्ययन और पाठ करने लगा । ऐसी चेष्टा से जब उसे चिरकाल बीता तो फिर स्वप्ना आया और आपको बड़ी सेनासंयुक्त राजा देखा और उस सेनासंयुक्त राजा होकर विचरने लगा । कुछ काल जब इसी प्रकार व्यतीत हुआ तो फिर स्वप्ना आया और उस स्वप्न में आपको चक्रवर्ती होकर सारी पृथ्वी पर आज्ञा चलाने लगा । जब कुछ काल बीता तो फिर आपको देवांगना देखा और देवता के साथ बाग में विचरने लगी और जैसे बेलि वृक्ष के साथ शोभा पाती है तैसे ही देवता के साथ शोभा पाने लगी इसी प्रकार जब कुछ काल देवता के साथ बीता तो फिर स्वप्ना आया और आपको हरिणी देखा और वन में चरने लगी । कोई काल ऐसे भी व्यतीत हुआ तो फिर स्वप्ना आया और आपको देवताओं के वन की बेलि देखा जब ऐसे कुछ समय बीता तो फिर स्वप्न में आपको भँवरी देखा और सुगन्ध को ग्रहण करने लगा । उसके अनन्तर फिर स्वप्ना आया कि मैं कमलिनी हूँ और वहाँ एक दिन हाथी आकर बेलि को खा गया । जैसे कोई मूर्ख बालक भली वस्तु को भी तोड़ डालता है तैसे ही वह मूर्ख हाथी बेलि तोड़कर खा गया । उसके उपरान्त उस बेलि ने हाथी का शरीर पाकर बड़ा दुःख पाया और गढ़े में गिरा । थोड़े समय के उपरान्त हाथी को स्वप्ना आया और भँवरी होकर कमलों में विचरने लगा । जब कुछ काल बीता तो फिर वह बेलि हुआ और उस बेलि के निकट एक हाथी आया और उस हाथी के पाँवों से वह बेलि चूर्ण हो गई । तब उस बेलि को एक हंस ने खाया तब वह बेलि हंस हुआ और बड़े मानसरोवर में बिचरने लगा । फिर उस हंस के मन में आया कि मैं ब्रह्मा का हंस होऊँ । तब वह अपने संकल्प से ब्रह्मा का हंस बन गया जैसे जल का तरंग बन जावे तब ब्रह्मा के उपदेश से हंस को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ । हे रामजी! अज्ञान से ऐसे भ्रम पाके ज्ञान से शान्त हुआ फिर विदेह मुक्त होगा । वह हंस सुमेरुपर्वत में उड़ा जाता था तब उसके मन में आया कि मैं रुद्र होऊँ इसलिये सत् संकल्प से रुद्र हो गया । जैसे शुद्धदर्पण में शीघ्र ही प्रतिबिम्ब पड़ता है तैसे ही शुद्ध अन्तःकरण के संकल्प से वह रुद्र हुआ । जिसको अनुत्तर ज्ञान हो उसको रुद्र कहते हैं और अनुत्तर ज्ञान वह है जिसके पाने से और कुछ पाना नहीं रहता । ध्यान से अपने को देख उस रुद्र के मन में विचार हुआ कि बड़ा आश्चर्य है कि मैं अज्ञान से इतने बड़े भ्रम को प्राप्त हुआ था । बड़ी आश्चर्य माया है । मैं तो एक ओर पड़ा हूँ और यह विश्व मेरा स्वरूप है । जो मेरे शरीर हैं उनको जाकर जगाऊँ । तब रुद्र उठ खड़ा हुआ और अपने स्थान को चला । प्रथम

www.tantrik-astrologer.in

सन्यासी के शरीर को आकर देखा और चित्तशक्ति से उसे जगाया तो सन्यासी के शरीर में ज्ञान हुआ कि सबमें मैं ही स्थित हूँ, परन्तु सन्यासी ने जाना कि मुझको रुद्र ने जगाया है और इतने शरीर मेरे और भी हैं । फिर वहाँ से वह रुद्र और सन्यासी दोनों चले और झीवट के स्थान में आये तो देखा कि झीवट शव की नाईं पड़ा है, मदिरा के वासन पड़े हैं, चेतना भी वहाँ ही भ्रमती है और नाना प्रकार के स्थान देखती है-जैसे झरने के छिद्र में चींटी भ्रमती है । तब उन्होंने झीवट को चित्तशक्ति से जगाया और वह उठ खड़ा हुआ तो उसको ऐसा स्मरण हुआ कि मुझे तो इन्होंने जगाया । फिर झीवट के मन में विचार हुआ कि इतने शरीर मेरे और भी हैं । निदान, रुद्र, सन्यासी और झीवट तीनों चले । इन्होंने विचार किया कि हमने इते शरीर क्योंकर पाये कि आदि तो मैं एक परमात्मा में चैतन्यौन्मुख करके सन्यासी हुआ, फिर सन्यासी से झीवट हुआ और मद्यपान करने लगा फिर ब्राह्मण होकर वेद का पाठ करने लगा और उसके पाठ करने के पुण्य से राजा का शरीर धारण किया, उसके आगे जो बड़ा पुण्य प्राप्त हुआ उससे देवता की स्त्री हुआ और स्त्री के शरीर में नेत्रों में बहुत प्रीति थी उससे हरिणी हुआ, फिर भँवरी हुआ, उससे आगे बेलि हुआ और इससे लेकर जो शरीर धारे सो मिथ्या धारे और अज्ञान से बहुत काल भटकता रहा । अनेक वर्ष और सहस्त्रों युग व्यतीत हो गये हैं सन्यासी से आदि रुद्र पर्यन्त वासना करके जन्म पाये हैं और इतने जन्म पाकर ब्रह्मा का हंस हुआ तब वहाँ ज्ञान की प्राप्ति हुई क्योंकि पूर्व अभ्यास किया था उससे अकस्मात् से सत्संग प्राप्त हुआ । ऐसे विचार करते वे वहाँ से चले और चैतन्य आकाश में उड़कर वेदपाठ करनेवाले ब्राह्मण की सृष्टि में गये तो उसको देखा कि पड़ा है । चित्तशक्ति से उन्होंने उसको जगा रुद्र, सन्यासी, मद्यपान करने वाला झीवट और ब्राह्मण चारों वहाँ से चले और चित्ताकाश में उड़े और राजा की सृष्टि में पहुँचे तो देखा कि राजा की सृष्टि चेष्टा करती है और राजा जिनकी देह सुवर्ण की नाईं शोभायमान है अपने मन्दिर में रानी समेत शय्या पर सोये हैं और सहेलियाँ चमर करती हैं । तब उन्होंने राजा को चित्तशक्ति से जगाया और उसने देखा कि सर्वविश्व मेरा ही स्वरूप है और इतने शरीर मैंने अज्ञान से धरे हैं । निदान रुद्र, सन्यासी, मद्यपान करनेवाला झीवट, ब्राह्मण और राजा वहाँ से चले और हाथी से आदि लेकर जितने शरीर धरे थे उन सबको जगाया और उनमें यही निश्चय हुआ कि हम चिन्मात्ररूप हैं और आवरण से रहित हैं अर्थात् अज्ञान के फुरने से रहित हैं । हे रामजी! तब उनके शरीर अलग अलग दीखे परन्तु चेष्टा भिन्न भिन्न और निश्चय सबका एक हुआ । उनका नाम शत रुद्र हुआ । हे रामजी! सम्पूर्ण विश्व अज्ञान के फुरने से होता है और ज्ञान से देखिये तो कुछ नहीं । ऐसे ही उनका संवेदन और निश्चय एकसा । एक देखे तो जाने कि सर्व ही मेरा रूप है और जब दूसरा देखे तो विचारे कि मेरा ही रूप है जैसे समुद्र से अनेक तरंग होते हैं पर उनके आकार भिन्न भिन्न होते हैं और स्वरूप-एक-सा ही होता है, तैसे ही ज्ञानवान् सर्वविश्व को अपना ही स्वरूप देखते हैं और अज्ञानी उनको भिन्न भिन्न जानते हैं और आपको भिन्न जानते हैं । एक को दूसरा नहीं जानता और दूसरे को प्रथम नहीं जानता । हे रामजी! यह विश्व अपना ही स्वरूप है पर अज्ञान से भिन्न भासता है । चिन्मात्र में फुरने को अज्ञान कहते हैं । चित्त फुरने से संसार है और न फुरने से आत्मस्वरूप ही है । इससे हे रामजी! फुरने का त्याग करो और कुछ नहीं, जिस प्रकार शत्रु मरे उस प्रकार मारिये-यही यत्न करो, और मैं तुमसे ऐसा उपाय कहता हूँ कि जिसमें कुछ यत्न नहीं और शत्रु भी मारा जावे । हे रामजी! यह चिन्तना ही दुःख है और चिन्तना से रहित होना ही सुख है-आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो । इस चित्त के फुरने से संसार है और निवृत्त होने में स्वरूप ही है । जैसे पत्थर में पुरुष पुतलियाँ कल्पता है तो पत्थर से भिन्न पुतलियों का अभाव है तैसे ही चित्त ने विश्व कल्पा है । जब चित्त निवृत्त हो तब विश्व अपना ही स्वरूप

www.tantrik-astrologer.in

है, कुछ भिन्न नहीं   चित्त से जहाँ जावे वहाँ पञ्चभूत ही दृष्टि आते हैं आत्मा नहीं दृष्टि और चित्त से रहित ज्ञानी जहाँ जावे वहाँ आत्मा ही दृष्टि आता है । जब चित्त की वृत्ति बहिर्मुख होती है तब संसार होता है और पञ्चभूत ही दृष्टि आते हैं और जब चित्त की वृत्ति अन्मर्मुख होती है तब ज्ञानरूप अपना आपही भासता है । जो कुछ पदार्थ हैं सो ज्ञानरूप आत्मा बिना सिद्ध नहीं होते । प्रथम आपको जानता है तो और पदार्थ जाने जाते हैं । इसी से ज्ञानवान् सब अपना आप जानता है । हे रामजी! ये जो कुछ पदार्थ हैं सो फुरने से हैं और जितने जीव हैं उनकी संवेदन भिन्न भिन्न है । संवेदन में अपनी अपनी सृष्टि है । जैसे किसी सोये हुए पुरुष को अपने स्वप्न की सृष्टि भासती है और जो उसके पास बैठा होता है उसको नहीं भासती, क्योंकि उसकी विश्व स्वप्ने को नहीं जानती, तैसे ही जो ज्ञानी है उसको अपना आपही भासता है और इस सब जगत् को अपना रूप जानता है । जिस ओर देखता है उसी ओर पञ्चभूत दृष्टि आते हैं । जैसे पृथ्वी के खोदे से आकाश ही दृष्टि आता है तैसे ही ज्ञानी चित्तसहित जहाँ देखता है तहाँ पञ्चभूत ही दृष्टि आते हैं । इससे हे रामजी! तुम फुरने से रहित हो । फुरने ही से बन्ध है और न फुरने से मोक्ष है, आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो तैसा करो । हे रामजी! जो अफुरने से अस्त हो जावे उसके नाश में कृपणता करना क्या है और जो अफुरने से प्राप्त हो उसको प्राप्त रूप जानो । रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! यह झीवट और ब्राह्मण से आदि लेकर सन्यासी के रूप स्वप्न में हुए, उसके उपरान्त फिर क्या हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्राह्मण से आदि जितने शरीर थे वे रुद्र के जगाये हुए सुखी हुए और जब इकट्ठे हुए तब रुद्र ने उनसे कहा, हे साधो! तुम अपने स्थान को जागो और कुछ काल अपने कलत्र में भोग भोगो तब तुम मेरे गण होकर मुझको प्राप्त होगे और महाकल्प में हम सब ही विदेहमुक्त होंगे । हे रामजी! जब रुद्र ने ऐसे कहा तब सब अपने अपने स्थानों को गये और रुद्रजी भी अन्तर्धान हो गये । वे तब भी तारों का आकार धारे हुए कभी-कभी मुझको आकाश में दृष्टि आते हैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन् । आपने कहा कि सन्यासी ने झीवट से आदि लेकर सब शरीर धारे सो सत् कैसे हुए और उनकी सृष्टि कैसे सत् हुई सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा सबका अपना आप, शुद्ध, चैतन्य आकाश और अनुभवरूप है, उसमें जैसे देश, काल और वस्तु का निश्चय होता है तैसे ही बन जाता है । जैसे जैसे फुरता है तैसे ही तैसे आगे हो जाता है । जिसका मन शुद्ध होता है उसका सत् संकल्प होता है और जैसा संकल्प करता है तैसा ही होता है । जो तुम कहो कि सन्यासी का अन्तःकरण शुद्ध था उसने नीच और ऊँच जन्म कैसे पाये अर्थात् मद्यपान करनेवाला और भँवरी, बेलि से आदि लेकर नीच और ऊँच अर्थात् ब्राह्मण, राजा आदि लेकर शुद्ध अन्तःकरण में ऐसे जन्म न चाहिये, तो उसका उत्तर यह है कि संवेदन में जैसा फुरना होता है तैसा ही हो भासता है । जैसे एक पुरुष का अन्तःकरण शुद्ध हो और उसके मन में फुरे कि एक शरीर मेरा विद्याधर हो और एक शरीर भेड़ का हो तो उसके दोनों भले और बुरे भी हो जाते हैं । जो तुम कहो कि बुरा क्यों बना भला ही बनता तो उसका उत्तर सुनो कि जैसे भले पण्डित के घर पुत्र हो और संस्कार अर्थात् वासना से चोर हो जावे तो उसको दुःख होता है । इससे हे रामजी! सब फुरने ही से ऊँच नीच होते हैं, जब अभ्यास, मन्त्र जप और चित्त के स्थित करने को योग कहते हैं । इससे जैसी जैसी चिन्तना होती है तैसी ही सिद्धि होती है और अज्ञानी को नहीं होती । जैसे वस्तु निकट पड़ी है और भावना नहीं तो दूर है, तैसे ही अज्ञानी की भावना नहीं तो न दूरवाली वस्तु प्राप्त होती है और न निकट वाली प्राप्त होती है । वह सिद्ध इसलिये नहीं होती, क्योंकि उसकी भावना दृढ़ नहीं और हृदय भी शुद्ध नहीं, संकल्प भी तब सिद्ध होता है जब हृदय शुद्ध होता है । शुद्ध हृदयवाला जिसकी चिन्तना करता है वह चाहे दूर भी है तो भी सिद्ध होता है और जो

www.tantrik-astrologer.in

निकट है सो भी सिद्ध होता है । जो तुम कहो कि सन्यासी तो एक था बहुत चैतन्य शरीर कैसे हुए तो उसका उत्तर सुनो । जो कोई योगीश्वर हैं और योगिनी देवियाँ हैं उनका संकल्प सत्य है, उन्हें जैसा संकल्प फुरता है तैसा ही होता है । ऐसे सत् संकल्पवाले मैंने अनेक आगे देखे हैं । एक सहस्त्रबाहु अर्जुन राजा था जो अपने घर में बैठा था और उसके शिर पर छत्र झूलता और चमर होते थे, उसके मन में संकल्प हुआ कि मैं मेघ होकर बरसूँ । उस संकल्प के करने से उसका एक शरीर तो राजा का रहा और एक शरीर से मेघ होकर बरसने लगा । विष्णु भगवान् एक शरीर से तो क्षीरसमुद्र में शयन करते हैं और प्रजा की रक्षा के निमित्त और शरीर भी धार लेते हैं । यज्ञ देवियाँ अपने अपने स्थानों में होती हैं और बड़े ऐश्वर्य में विचरती हैं, इन्द्र एक शरीर से स्वर्ग में रहता है और दूसरे शरीर से जगत् में भी बैठा रहता है । योगीश्वरों का जैसा संकल्प होता है तैसा ही सिद्ध होता है और जो अज्ञानी मूर्ख हैं उनका मन बड़े भ्रम को प्राप्त होता है और वे बड़े मोह को प्राप्त होते हैं और मोह से नीच गति को प्राप्त होते हैं । जैसे बड़े पर्वत के ऊपर से बट्टा गिरता है सो नीचे को जाता है तैसे ही मूर्ख आत्मपद से गिरके संसाररूपी गढ़े में पड़ते हैं और बड़े दुःख पाते हैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि संसार स्वप्नमात्र है सो मैंने जाना कि अनन्त मोहरूपी विषमता है और आत्मचैतन्यरूप आनन्द के प्रमाद से जीव आपको जड़ दुःखी जानता है । यह बड़ा आश्चर्य है । हे भगवन्! यह जो आपने सन्यासी कहा उसके समान कोई और भी है अथवा नहीं सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसाररूपी मढ़ी में मैं रात्रि के समय समाधि करके देखूँगा और तुमसे प्रभात को जैसे होगा तैसे कहूँगा । इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले, हे राजन्! वशिष्ठजी ने जब इतना कहा तो मध्याह्न का समय हुआ नौबत नगाड़े बजने लगे जिनका प्रलयकाल के मेघवत् शब्द होने लगा और वशिष्ठजी के चरणों पर राजा और देवताओं ने फूल चढ़ाये और सबने बड़ी पूजा की । जैसे बड़ा पवन चलता है और वेग करके बाग वृक्षों के फूल पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं तैसे ही सबने बहुत फूलों की वर्षा की । इस प्रकार प्रथम तो बहुत पूजा होती रही फिर वशिष्ठजी को नमस्कार करके सब उठके खड़े हुए और आपस में नमस्कार किया । फिर राजा दशरथ से आदि लेकर राजा और ऋषि सब उठे और जैसे मन्दराचल पर्वत में सूर्य उदय होता है तैसे ही वशिष्ठजी से आदि लेकर ऋषि और राजा दशरथ से आदि सब राजा उठे । तब पृथ्वी के राजा और प्रजा पृथ्वी को चले और आकाश के सिद्ध और देवता आकाश को चले और सब अपने-अपने कर्म में जा लगे और जैसे शास्त्रोक्त व्यवहार है उसमें स्थित हुए । जब रात्रि हुई तब विचार करते रहे कि वशिष्ठजी ने कैसे ज्ञान उपदेश किया है और उस विचार ने उनकी रात्रि एक क्षण की नाईं बीती । इतने में सूर्य की किरणों के उदय होते ही राम-लक्ष्मण आदि सब आये और परस्पर नमस्कारकर अपने अपने आसन पर शान्तरूप होकर बैठे-जैसे पवन से रहित कमल स्थित होते हैं । तब वशिष्ठजी ने अनुग्रह करके आपही कहा, हे रामजी! तुम्हारी प्रीति के निमित्त मैंने संसार का बहुत खोज किया और आकाश, पाताल सप्तद्वीप सब खोजे हैं परन्तु ऐसा कोई संन्यासी न देखा और न अन्य का संकल्प उसकी नाईं भासता है । जब एक प्रहर रात्रि रही तो मैंने फिर ढूँढ़कर उत्तर दिशा में चिन्माचीन नगर में एक मढ़ी देखी तो उसके दरवाजे चढ़े हुए थे और उसमें पके बालवाला एक सन्यासी बैठा था और बाहर उसके चेले बैठे थे । वे दरवाजे नहीं खोलते थे कि ऐसा न हो हमारे गुरु की समाधि खुल जावे । वह उस स्थान में दूसरे ब्रह्मा की नाईं बैठा है । उसको बैठे अभी इक्कीस दिन हुए हैं पर उसको समाधि में सहस्त्र वर्षों का अनुभव हुआ है और उसने बहुत जन्म भी पाये हैं जो उसको प्रत्यक्ष भासित हुए हैं । उसने सृष्टि भी प्रत्यक्ष देखी है और उसमें विचरा है । हे रामजी! इसका सा एक और भी पूर्व कल्प में था । इतना सुन राजा दशरथ ने कहा, हे महामुनीश्वर! जो आप आज्ञा दें तो मैं

www.tantrik-astrologer.in

अपना अनुचर चिन्मा चीन नगर में भेजूँ कि वह वहाँ जाकर उस सन्यासी को जगावे? वशिष्ठजी ने कहा, हे राजन्! वह सन्यासी अब ब्रह्मा का हंस होकर ब्रह्मा के उपदेश से जीवन्मुक्त हुआ है और यह शरीर उसका अब मृतक हुआ है । उसमें अब पुर्यष्टका अर्थात् जीव नहीं उसका क्या जगाना है? एक महीने पीछे शिष्य उसका दरवाजा खोलेंगे तो उस नगर के लोग देखेंगे कि वह मृतक पड़ा है ।इससे हे रामजी! यह विश्व संकल्पमात्र ही है और जो तुम कहो कि एकसे क्योंकर हुए तो सुनो कि जैसे यह मुनीश्वर, ऋषि, राजा और जो लोग हैं वे कई बार एकसा शरीर धारते हैं और कई बार मध्य धारते हैं, कई कुछ थोड़ा धारते हैं और कई विलक्षण धारते हैं । इन नारदजी के समान और भी नारद होंगे उनकी चेष्टा भी ऐसी ही होगी और शरीर भी ऐसा ही होगा । व्यासजी, शुकदेव, भृगु, भृगु के पिता, जनक, करकर, अत्रि ऋषीश्वर और अत्रि की स्त्री भी जैसी कि अब हैं वैसी ही होंगी । जैसे समुद्र में तरंग एक से भी और न्यून अधिक भी होते हैं तैसे ही यह संसार ब्रह्मा से आदि लेकर पाताल पर्यन्त सब मन का रचा हुआ है और सब मिथ्या है । जब यह चित्तकला बहिर्मुख होती है तब संसार और देशकाल होता है । और जब अन्तर्मुख होती है तब आत्मपद प्राप्त होता है जबतक बहिर्मुख होती है तब तक दुःख पाता है । अपना स्वरूप आनन्दरूप है उसमें चित्तकला जानती है कि मैं सदा दुःखी हूँ । देह और इन्द्रियों से मिलकर दुःखी होता है । इससे हे रामजी! इस अज्ञानरूप फुरने से तुम रहित हो रहो । फुरने से यह अवस्था प्राप्त होती है । जैसे चन्द्रमा अमृत से पूर्ण है और उसमें चर्मसृष्टि से कलंकता भासती है तैसे ही अमृतमय चन्द्रमारूप आत्मा में अज्ञानदृष्टि से जन्म मरण, शोक दुःख, भय, कलंक दीखता है । यह माया महा आश्चर्य रूप है जैसे चन्द्रमा एक है और नेत्रदोष से बहुत भासते हैं तैसे ही एक अद्वैत आत्मा में नानात्व विश्व का भान अज्ञान से होता है । यही माया है । हे रामजी तुम एकरूप आत्मा हो, उसमें फुरने से विश्व कल्पा है इससे फुरने से रहित हुए बिना आत्मा का दर्शन नहीं होता । जैसे उदय हुआ सूर्य भी बादल के होते शुद्ध नहीं भासता तैसे ही फुरनरूपी बादल के दूर हुए आत्मरूप सूर्य शुद्ध भासता है और दृश्य, दर्शन, दृष्टा फुरने से कल्पे हैं । हे रामजी! इस संसार का सार जो आत्मा है उसमें सुषुप्त की नाईं मौन हो रहो । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मैं तीन मौन जानता हूँ-एक वाणी मौन अर्थात् चुप कर रहना, दूसरा इन्द्रियों का मौन और तीसरा कष्ट मौन अर्थात् हठ करके मन और इन्द्रियों को वश करना, सुषुप्त मौन नहीं जानता आप कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये तीनों कष्ट मौन तपस्वियों के हैं और सुषुप्त मौन ज्ञानी और जीवन्मुक्त का है । वे तीनों मौन जो तुमने कहे सो अज्ञानी तपस्वियों के हैं, उनको फिर सुनो । एक वाणी का मौन कि बोलना नहीं, दूसरा मौन समाधि कि नेत्रों का मूँद लेना और कुछ न देखना और तीसरा हठकर स्थित होना और मन और इन्द्रियों को स्थित करना । एक मौन इन्द्रियों की चेष्टा से रहित होना और ज्ञानी का सुषुप्त मौन सुनो कि वाणी और इन्द्रियों से चेष्टा करना पर आत्मा से भिन्न और कुछ न भासित होना अथवा ऐसे होना कि न मैं हूँ, न जगत् है अथवा ऐसे होना कि सब मैं ही हूँ । ऐसे निश्चय में स्थित होना बड़ा उत्तम मौन है । हे रामजी! विधि से भी आत्मा की सिद्धि होती है और निषेध से भी होती है । उस आत्मामें स्थित होना बड़ा मौन है । हे रामजी! यह जो मैंने सुषुप्त मौन कहा है सो क्या है कि द्वैतरूप संसार के फुरने से सुषुप्त होना, आत्मा में जागना और ऐसे देखना कि न मुझमें जाग्रत है, न स्वप्न है और न सुषुप्ति है इस निश्चय में स्थित होना तुरीयातीत है । यह पञ्चम मौन है । ऐसा तुरीयातीत पद अनादि अनन्त जरा से रहित शुद्ध निर्दोष है । हे रामजी! ज्ञानी इन्द्रियों के रोकने की इच्छा भी नहीं करता और न विचरने की इच्छा करता है जैसे स्वाभाविक आन पड़े उसमें स्थित होता है । यह परम मौन है । ज्ञानी को सुख की इच्छा भी नहीं और

www.tantrik-astrologer.in

दुःख का त्रास भी नहीं, वह हेयोपादेय से रहित है । हे रामजी! तुम रघुवंशकुल में चन्द्रमा हो अपने स्वभाव में स्थित हो, संसारभ्रम मन के फुरने से होता है सो मिथ्या है वास्तव नहीं, और न शरीर सत्य है, न माया सत्य है । हे रामजी! तुम्हारा स्वरूप ओंकार (चैतन्य ब्रह्म) है इस ओंकार को अंगीकार करके स्थित होना परम उत्तम मौन है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो पीछे आपने सब रुद्र कहे वे रुद्र थे अथवा रुद्र के गण थे? वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! जिसको रुद्र कहते हैं-उसी को गण कहते हैं ये सब ही रुद्र हैं । फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो आपने कहा कि सब रुद्र हुए ये तो एक चित्र थे सब क्योंकर हुए? जैसे दीपक से दीपक होता है इसी भाँति हुए? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी एक सावरण है दूसरा निरावरण है । जिसका शुद्ध अन्तःकरण है वह निरावरण है और जिसका मलिन अन्तःकरण है वह सावरण है । शुद्ध अन्तःकरण में जैसा निश्चय होता है तैसा ही तत्काल आगे सिद्ध होता है और मलिन अन्तःकरण का फुरना सिद्ध नहीं होता । इससे शुद्ध जो निरावरण रुद्र है सो आत्मा है और सर्वव्यापी है, जैसे उनका निश्चय होता है सो सत्य है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सदाशिव की चेष्टा तो मलिन है कि रुण्डों की माला गले में धारते हैं और विभूति लगाकर श्मशान में विहार करते हैं और स्त्री बायें अंग में रहती है । आप क्योंकर कहते हैं कि उसका शुद्ध अन्तःकरण है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध अशुद्ध अज्ञानी को कहते हैं । जो शुद्ध में बर्ते अशुद्ध में न बर्ते जो ज्ञानी है वह अपने में क्रिया नहीं देखता और उसको शुद्ध अशुद्ध में राग-द्वेष नहीं होता है । ऐसे सदाशिवजी को ग्रहण त्याग नहीं है, जो स्वाभाविक चेष्टा होती है सो वह ऐसे होती है कि जैसे आदि परमात्मा में विष्णु भगवान् चारभुजा धारे संसार की रक्षा करने के लिए शुद्ध चेष्टा से अवतार धारकर धर्म की रक्षा करते हैं और पापियों को मारते हैं । यह आदि फुरना हुआ है । जो क्रिया स्वाभाविक ही आन प्राप्त हो, उस क्रिया का उनको रागद्वेष करके हेयोपादेय कुछ नहीं और उनको क्रिया का अभिमान भी नहीं होता इसी से क्रिया उनको बन्ध नहीं करती । इससे यह सिद्ध है कि संसार फुरनेमात्र है । जब तुम फुरने से रहित होगे तब तुमको त्रिपुटी न भासेगी अर्थात् आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासेगा इससे तुम अज्ञानरूप फुरने से रहित हो जब तुमको आत्मपद का साक्षात्कार होगा तब तुम जानोगे कि मुझमें फुरन, दृश्य, अदृश्य कुछ नहीं केवल आत्मपद है जिसमें एक कहना भी नहीं तो द्वैत कहाँ से हो? हे रामजी! दृश्य, अदृश्य, फुरना, और विद्या, अविद्या ये सब उपदेश के निमित्त कहते हैं, आत्मा में कुछ कहा नहीं जाता । आत्मा एक है जिसमें द्वैत का अभाव है । जब चित्त परिणाम बहिर्मुख होता है तब विश्व का भान होता है और जब चित्त अन्तर्मुख परिणाम पाता है तब अहन्ता और ममता का नाश होता है और चैतन्य शेष रहता है । जब अतिशय अन्तर्मुख परिणाम होता है तब चैतन्य भी नहीं कहा जाता और जब इससे भी अतिशय परिणाम पाता है तब `हैं' `नहीं' भी नहीं कहा जाता । हे रामजी! ऐसा आत्मा तुम्हारा अपना आप स्वरूप और शान्तपद है उसमें वाणी की गम नहीं कि ऐसा कहिये और तैसा कहिये । ऐसा कहिये तो इन्द्रियों का विषय है और तैसा कहिये तो इन्द्रियों से परे है । जब तुम अपने में स्थित होगे तब जानोगे कि मुझमें अहं फुरना कुछ नहीं ।आत्मरूपी सूर्य के साक्षात्कार हुए से दृश्यरूपी अन्धकार का अभाव हो जावेगा, क्योंकि आत्मा तुम्हारा अपना आप है जो केवल शान्तरूप और निर्मल है । जैसे गम्भीर समुद्र वायु से रहित होता है तैसे ही आत्मरूपी समुद्र संकल्परूपी वायु से रहित, गम्भीर और शुद्ध होता है । यह संसार चित्त का चमत्कार है- जो निरंश है और जिसमें अंशाशी भाव नहीं-अद्वैत है । हे रामजी! जब ऐसे बोध में स्थित होगे तब इस विश्व को भी आत्मरूप देखोगे और यदि बोध बिना देखोगे तो विश्व का भान होगा । इससे हे रामजी! बोध में स्थित रहो ।

www.tantrikastrologer.in

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकताप्रतिपादनन्नाम षष्टितमस्सर्गः ||60||

अनुक्रम

वैताल प्रश्नोक्ति

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सदाशिव का आदि फुरना हुआ है जो त्रिनेत्र हैं और विश्व का संहार करते और शिरों की माला धारण किये हैं । ब्रह्मा के चार मुख हैं और चारों वेद हाथ में हैं और संसार की उत्पत्ति करते हैं उनका ऐसे ही फुरना हुआ है । हे रामजी! ब्रह्मा विष्णु और रुद्र ये तीनों एकरूप हैं और इनकी चेष्टा स्वाभाविक यही बन पड़ी है । उन्होंने यह कर्म न राग से अंगीकार किया है और न द्वेष करके त्याग करते हैं और वह संज्ञा भी लोगों के देखने के लिये है वे अपने ज्ञान में कुछ नहीं करते क्योंकि बोध में ही उनका जाग्रत् है बोध में जाग्रत क्या और कैसे होता है सो भी सुनो । एक सांख्यमार्ग से होता है और एक योगमार्ग से होता है । सांख्यमार्ग यह है कि तत्त्व और मिथ्या का विचारना । तत्त्व इसे कहते हैं कि मैं आत्मा सत् और चैतन्य हूँ और सर्वदृश्य मिथ्या, जड़ और असत् है मेरे में अज्ञान कल्पित है पर मैं अद्वैत आत्मा हूँ और मेरे में अज्ञान और दृश्य दोनों नहीं । ऐसे निश्चय में स्थित होना सांख्यविचार है । योग प्राणों के स्थित करने को कहते हैं, क्योंकि जब प्राण स्थित होते हैं तब मन भी स्थित हो जाता है और जब मन स्थित हो जाता है तब प्राण भी स्थित होते हैं-इनका परस्पर सम्बन्ध है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! प्राण ही स्थित हुए से मुक्त होता है तो मृतक पुरुषों के तो प्राण नहीं रहते-वे सब मुक्त होने चाहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम तो प्राण श्रवण करो कि क्या है । यह जीव पुर्यष्टका में स्थित होकर जैसी वासना करता है सो शरीर को त्याग कर उसी के अनुसार आकाश में स्थित होता है इसका नाम प्राण है । उसी वासनारूप प्राण से फिर उसको संसार का भान होता है और जब प्राण की वासना क्षय होती है तब मुक्त होता है । ज्ञानी की वासना क्षय हो जाती है इससे वह जन्म-मरण से रहित होता है । जैसे भुना बीज फिर नहीं उगता तैसे ही ज्ञानी को वासना के अभाव से जन्म मरण नहीं होता । हे रामजी! जन्म-मरण दोनों मार्गों से निवृत्त होता है और दोनों का फल कहा है । हे रामजी! ज्ञान से चित्त सत्यपद को प्राप्त होता है और योग करके प्राणवायु स्थित होती है तब वासना क्षय हो जाती है । जब स्वरूप की प्राप्ति होती है तब संसार के पदार्थों का अभाव हो जाता है जैसे रसायन से ताँबा सोना होके फिर ताँबे का भाव नहीं रहता, तैसे ही ज्ञान से विश्वरूपी ताँबे की संज्ञा नहीं रहती । जैसे ताँबा भाव जाता रहता है तै से ही ज्ञान से जब चित्त सत्यरूप हुआ फिर संसारी नहीं होता । आत्मा में न बन्ध है और न मुक्त है परमात्मा एक अद्वैत है तब उसमें बन्ध कहाँ और मुक्त कहाँ? बन्ध और मुक्त चित्त के कल्पे हुए हैं और जो चित्त के शान्त करने का उपाय कहा है उससे शान्त होता है इसी को मुक्त कहते हैं और बन्ध मुक्त कोई नहीं । चित्त के उदय होने का नाम बन्ध है और चित्त का शान्त होना ही मुक्त है । हे रामजी! जब मन अपने वश होता हे तब आत्मपद प्राप्त होता है, अथवा जब प्राण स्थित होते हैं तब आत्मपद प्राप्त होता है, यह संसार मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या है, जब वासना निवृत्त होती है तब आत्मपद में स्थिति होती है । जैसे मेघ जब जल संयुक्त होते हैं तब गर्जते हैं और वर्षा करते हैं और जब वर्षा से रहित होते हैं तब शान्त हो जाते हैं तैसे ही जब वासना क्षय होती है तब चित्त शान्त हो जाता है । जैसे शरत् काल में बादल और कुहिरा निवृत्त होकर शुद्ध और निर्मल आकाश ही रहता है, तैसे ही वासना के निवृत्त हुए शुद्ध और केवल चैतन्य आत्मा हो भासता है । जो

www.tantrikastrologer.in

तुम एक मुहूर्त भी चित्त बिना स्थित हो तो तुमको आत्मपद की प्राप्ति हो । जबतक चित्त की वासना क्षय नहीं होती तब तक बड़े भ्रम देखता है । हे रामजी! यह संसार मृगतृष्णा के जलवत् असत् है और आभासमात्र फुरता है । इस पर एक आख्यान जो आगे हुआ है सो कहता हूँ मन लगाकर सुनो ।

दक्षिण दिशा में मन्दराचल पर्वत है उसकी कन्दरा में एक वैताल महाभयानक आकार से रहता था और मनुष्यों को खाता था । उसके मन में विचार उपजा कि किसी नगर के जीवों का भोजन करूँ पर वह एक समय साधु का संग भी करता था, और एक साधु को भोजन भी करता था । उस साधु संग के प्रसाद से वैताल के मन में यह उपजा कि मेरी कौन गति होगी? मेरा आहार मनुष्य है और मनुष्यों का भोजन करना बड़ी हत्या है । इससे मैं एक वृत्ति करूँ कि जो मूर्ख और अज्ञानी मनुष्य हों उनको भोजन करूँ और जो उत्तम पुरुष हैं उनको न खाऊँ । हे रामजी! निदान वह वैताल यद्यपि क्षुधातुर भी हो तो भी भले मनुष्यों को न खावे इसी प्रकार एक समय वह क्षुधा से बहुत व्याकुल हो रात्रि के समय घर से बाहर निकला तो संयोगवश उस नगर के राजा से जो वीर यात्रा को निकला था भेंट हुई । वैताल ने कहा, हे राजन्! तुम मुझे भोजन मिले हो अब मैं तुमको खाता हूँ, तुम कहाँ जावोगे? राजा ने कहा, हे रात्रि के विचरनेवाले वैताल! जो तू मेरे निकट अन्याय से आवेगा तो तेरा शीश हजार टुकड़े होगा और तू गिरेगा । वैताल ने कहा हे राजन् मैं तुझसे नहीं डरता । हे आत्महत्यारे! मैं तुझे भोजन करूँगा, चाहे तू जैसा बली हो मैं नहीं डरता परन्तु एक मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं अज्ञानी को भोजन करता हूँ और ज्ञानी को नहीं मारता । जो तू ज्ञानी है तो न मारूँगा और जो अज्ञानी है तो मारूँगा जैसे बाजपक्षी पक्षियों को मारता है । जो तू ज्ञानी है तो मेरे प्रशनों का उत्तर दे । एक प्रश्न यह है कि जिसमें ब्रह्माण्डरूपी त्रसरेणु है वह सूर्य कौन है दूसरा प्रश्न यह है कि जिस पवन में आकाशरूपी अणु उड़ते हैं वह पवन कौन है । तीसरा प्रश्न यह है जिसमें केले के वृक्षवत् और कुछ नहीं निकलता वह कौन वृक्ष है और चौथा प्राश्न यह है कि वह पुरुष कौन है जो स्वप्न से स्वप्ना और फिर उसमें और स्वप्ना देखता है और एक रहता है, परिणाम को नहीं प्राप्त होता? इन प्रश्नों का उत्तर दो, जो तूने मेरे प्रश्नों का उत्तर न दिया तो तुझे खा जाऊँगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वैताल प्रश्नोक्तिनामैकषष्टितमस्सर्गः ||61||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

भगीरथोपदेश

राजा बोला, हे वैताल! इन प्रश्नों का उत्तर सुनो । ब्रह्माण्डरूपी एक मिरच बीज है और उसमें सत्पद आत्मा चैतन्यरूपी तीक्ष्णता है । एक डाल में ऐसी मिरचें कई सहस्र लगी हुई हैं और एक वृक्ष में कई सहस्र ऐसी डालें लगी हैं, ऐसे वृक्ष एक वन में कई सहस्र हैं और ऐसे कई सहस्र वन एक शिखर पर स्थित हैं, ऐसे कई सहस्र शिखर एक पर्वत पर हैं और ऐसे कई सहस्र पर्वत एक नगर में हैं ऐसे कई सहस्र नगर एक द्वीप में हैं और ऐसे कई सहस्र द्वीप एक भाव पृथ्वी में हैं, ऐसे कई सहस्र पृथ्वी भव एक अण्ड में हैं और ऐसे कई सहस्र अण्ड एक समुद्र में लहरें हैं, ऐसे कई सहस्र समुद्र एक समुद्र की लहरें हैं और ऐसे कई सहस्र समुद्र एक पुरुष के उदर में है, ऐसे कई पुरुषों की एक पुरुष के गले में माला पिरोई हुई हैं । ऐसे कई लाखकोटि सूर्य के अणु हैं जिस सूर्य से सर्व प्रकाशमान है । वह सूर्य आत्मा है जिसमें अनन्त सृष्टि स्थित है । हे वैताल! जैसे यह सृष्टि भासती है तैसे ही सब सृष्टियाँ जान । जो यह सृष्टि सत्य है तो सब सृष्टिसत् हैं और जो यह सृष्टि स्वप्न है तो सब सृष्टियों को स्वप्न वत् जानो । आत्मा ऐसा सूर्य है जिससे भिन्न और अणु कोई नहीं और सदा अपने आपमें स्थित है । इससे और क्या पूछता है? ऐसे आत्मा में स्थित हो जो आमसत्तामात्रपद है, जिस सत्तामात्रपद से कालसत्ता हुई है और उसी में आकाशसत्ता हुई है । उसी सत्पद से सब सत्ता संकल्प से उदय हुई हैं और संकल्प के लय हुए सब लय हो जाती हैं । तूने जो प्रश्न किया था कि वह कौन सूर्य है जिसमें ब्रह्माण्डरूपी त्रसरेणु होते हैं ? वह ब्रह्मसूर्य है जिनसे भिन्न और कुछ नहीं और केले की नाईं विश्व के भीतर बाहर आत्मा स्थित है । जैसे केले के भीतर देखे से शून्य आकाश ही निकलता है तैसे ही विश्व के भीतर बाहर आत्मा से भिन्न और कुछ सार नहीं निकलता, जो अद्वैत है उससे भिन्न द्वैत कुछ नहीं । वह पवन ब्रह्म है जिस पवन में ब्रह्माण्ड के समूह उड़ते हैं और वह पुरुष स्वप्न से स्वप्न आगे और स्वप्ना देखता है और एक अपने आपमें स्थित है । चित्त कला फुरने से अनन्त ब्रह्माण्डों का भान होता है इसी को स्वप्ना कहते है, तो भी कुछ भिन्न नहीं एक ही रूप नटवत् रहता है और यह सब उसकी आज्ञा से वर्तते हैं । वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल है । जिसमें मन्दराचल पर्वत भी अणु है ऐसा स्थूल है और जिसमें वाणी की गम नहीं, अपने आप ही में स्थित है और इन्द्रियों से अगोचर है इससे सूक्ष्म से सूक्ष्म है और पूर्णता से स्थूल से स्थूल है । हे मूर्ख वैताल! तू किसको खाता है और क्षुधा से क्यों व्याकुल हुआ है? तू तो अद्वैतरूप आत्मा है और आनन्दरूप है अपने आपमें स्थित हो । जब ऐसे प्रश्न का उत्तर देकर राजा ने उपदेश किया तब वैताल वहाँ से चला और एकान्त स्थान में स्थित हो विचार करने लगा कि ऐसे मृगतृष्णा के जलवत् झूठे संसार से मुझे क्या प्रयोजन है । फिर एकान्त स्थान में जाकर स्थित हुआ और ध्यान लगाकर आत्मा में एक धारा प्रवाहक प्रवाह स्थित हुआ । धारा प्रवाह उसे कहते हैं कि आत्मा का अभ्यास दृढ़ हो, आत्मा से भिन्न कुछ न फुरे और एकरस स्थित हो । ऐसे ध्यान में स्थित होकर वैताल सत् आत्मपद को प्राप्त हुआ हे रामजी! यह राजा और वैताल का आख्यान तुमको सुनाया । उस आत्मा में ब्रह्माण्ड अणु की नाईं स्थित है, इससे निर्विकल्प आत्मा में स्थित हो और इन्द्रियों को बाहर से संकोचकर स्थित करो । इत श्रीयोग० नि० राजावैतालब्रह्मपदप्राप्तिर्नाम द्विषष्टितमस्सर्गः ||62||

....

... वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं एक और आख्यान कहता हूँ उसे सुनो, जिससे भगीरथ राजा की मूढ़ता गई, स्वस्थचित्त होकर आत्मपद में स्थित हुआ, अपने पतितप्रवाह में विचरा और पुरुषार्थ से

www.tantrikastrologer.in

स्वर्गलोक से गंगा को मध्यलोक में ले आया है । तुम भी वैसे ही विचरो उसके पास जो कोई अर्थी आता था ऊसका वह अर्थ पूर्ण करता था और जिस पदार्थ का कोई संकल्प करके आवे राजा उसको पूर्ण करे । जैसे चन्द्रमा को देखकर चन्द्रमणि अमृत स्रवती है तैसे ही मित्रभाव का वह राजा था । जो उस राजा से शत्रुभाव रखते थे उनको वह ऐसे नाश करता था-जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धकार का नाश हो जाता है, और जैसे अग्नि से अनेक चिनगारे उठते हैं तैसे ही शत्रुओं पर शस्त्रों की वर्षा करता था- और पतितप्रवाह में स्थित रहता और भले बुरे और सुख दुख में एक समान रहता था । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! राजा भगीरथ के मन में क्या आई जो गंगा को ले आया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक समय उसने अपने नगर को देखा कि लोग भले मार्ग को त्यागकर बुरे मार्ग और पापकर्म में लगे हैं और मूर्ख हुए हैं तब लोगों के उपकार के निमित्त उसने ब्रह्मा, रुद्र और यज्ञऋषि का तप करके आराधन किया और गंगा के लाने के निमित्त मन्त्र जपने लगा । गंगा का एक प्रवाह स्वर्ग में चलता है और एक पाताल में चलता है, राजा भगीरथ ने एक प्रवाह मर्त्यलोक में भी चलाया है और गंगा के लाने से समुद्र पर भी उपकार किया । जो समुद्र अगस्त्यमुनि ने सुखाया था गंगा के आने से उस समुद्र का दरिद्र भी निवृत्त हुआ । उसके मन में विचार उपजा और संसार को देखकर कहने लगा कि एक ही काम बारम्बार करना बड़ी मूर्खता है, नित वही भोगना, वही खाना और वही कर्म करने हैं । जिस कर्म किये से पीछे सुख निकले उसके करने का कुछ दूषण नहीं, ऐसा वैराग करके उसको विचार उपजा कि संसार क्या है? उस समय में राजा युवा था । जैसे मरुस्थल में कमल उपजना आश्चर्य है तैसे ही यौवन अवस्था में ऐसे विचार उपजना आश्चर्य है । हे रामजी! जब राजा को ऐसा विचार उपजा तब घर से निकलकर अपने गुरु त्रितल ऋषिश्वर के निकट जा प्रश्न किया । हे भगवन्! वह कौन सुख है जिसके पाये से जरा और मृत्यु के दुःख निवृत्त होते हैं? यह संसार के सुख तो भीतर से शून्य हैं, इनके परि णाम में दुःख है । त्रितलऋषि बोले, हे राजन्! एक ज्ञेय अर्थात् जानने योग्य है जिसके जानने से शान्तपद प्राप्त होता है सो आत्मज्ञान है । वह आत्मा न उदय होता है, न अस्त होता है, ज्यों का त्यों अपने आप है । हे राजन् यह जरा मृत्यु तबतक भासता है जबतक अज्ञान है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होगा तब अज्ञानरूपी अन्धकार निवृत्त हो जावेगा और केवल शान्तपद में स्थित होगा । आत्मानन्द सर्वज्ञ है; जिसके जानने से चिज्ज़ड़ग्रन्थि टूट जाती है अर्थात् अनात्म देह इन्द्रियादिक में आत्म अभिमान करना निवृत्त हो जाता है- और सब कर्म भी निवृत्त होकर सब संशय नष्ट हो जाते हैं । ऐसे शुद्ध स्वरूप को पाकर ज्ञानी स्थित होते हैं जो सत्ता सर्व है और सर्वगत, नित्य स्थित, उदय अस्त से रहित है । राजा बोले, हे भगवन्! ऐसे मैं जानता हूँ कि आत्मा चिन्मात्रसत्ता है और देहादिक मिथ्या है । आत्मा सर्वज्ञ शान्त और अच्युतरूप है; ऐसे जानता भी हूँ परन्तु मुझे शान्ति नहीं हुई और आत्मा चिन्मात्र मुझे नहीं भासता और स्थिति नहीं हुई, इसलिये कृपा करके कहिये कि मैं स्थित होऊँ । ऋषि बोले, हे राजन् मैं तुझसे एक ज्ञान कहता हूँ जिसके जानने से फिर कोई दुःख न रहेगा और उससे ज्ञेय में तुमको निष्ठा होगी तब तुम सर्वात्मारूप होकर स्थित होगे और तुम्हारा जीवभाव नष्ट हो जावेगा । श्लोक- असक्तिरनभिष्वगः पुत्रदारगृहादिषु । नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ।। अर्थात् देह और इन्द्रियों में आत्म अभिमान न करके पुत्र, स्त्री और कुटुम्ब के दुःख से आपको दुःखी न जानना; नित्य समचित्त रह कर इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में एकरस रहना; चित्त को आत्मपद में लगाकर वृत्ति को और और न जाने देना, एकान्तदेश में स्थित होना और अज्ञानी का संग न करके ब्रह्मविद्या का सदा विचार करना; यह लक्षण तत्वज्ञान के दर्शन के निमित्त तुझसे कहे हैं-इससे विपरीत अज्ञानता है । हे राजन्! यह ज्ञेय जानने योग्य है; इसके जानने से केवल

www.tantrik-astrologer.in

शान्तपद को प्राप्त होगे और देह का अहंकार भी निवृत्त होगा । हे राजन्! पहले अहं होता है और फिर मम होता है; इससे तू अहं मम का त्याग कर । जब अहं मम का त्याग करेगा तब आत्मपद अहं प्रत्यय से भासेगा वह आत्मा सर्वज्ञ है; सर्व भी आप है; स्वतः प्रकाश और आनन्दरूप है पर संसार के आनन्द से रहित है । जब ऐसे गुरुजी ने कहा तब राजा बोले, हे भगवन्! यह अहंकार तो चिरकाल का देह में रहता है और अभिमानी है उसका क्योंकर त्याग करूँ? ऋषि बोले, हे राजन्! अहंकार पुरुष प्रयत्न करके निवृत्त होता है । पहले भोगों में द्वेष दृष्टि करना; भोगों की वासना न करना; बारम्बार अपने स्वरूप की भावना करना और विचार करना; इससे तुम्हारा जीवत्व (अहंकार) निवृत्त हो जावेगा । हे राजन्! जब तुम्हारा अहंकार निवृत्त होगा तब तुमको सर्वात्मा ही भासेगा और दुःख से रहित शान्तरूप का प्रकाश होगा । हे राजन्! यह लज्जारूप फाँसी जब तक निवृत्त नहीं होती तब तक आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती । अहं, मम, तृष्णा, शोक, दुःख और भला कहाने की इच्छा इत्यादिक जो मोह के स्थान हैं उसे लज्जा कहते हैं । इससे तुम अहं मम से रहित हो तुम्हारे शत्रु जो राज्य लेने की इच्छा करते हैं उनको अपना राज्य दो और क्षोभ से रहित होकर पुत्र, स्त्री और बान्धवों के मोह से रहित हो । मेरे मोह से भी रहित हो और राज्य का त्याग करके एकान्तदेश में स्थित हो और उन शत्रुओं के घर में भिक्षा माँग कि तुझे भला कहाने की इच्छा न रहे । अब उठ खड़ा हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भगीरथोपदेशो नामत्रिषष्टितमस्सर्गः ॥63॥

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

निर्वाणवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार त्रितल ऋषीश्वर ने उपदेश किया तब राजा उठ खड़ा हुआ और घर को गया । गुरु का उपदेश धारकर अपने राज्य में स्थित हो राज्य करने लगा और मन में विचार भी करता रहा । जब कुछ काल बीता तब राजा ने अग्निष्टोम यज्ञ का आरम्भ किया । धन के त्याग करने को अग्निष्टोम यज्ञ कहते हैं । तीन दिन में धन का त्यागकर हाथी, घोड़े, रथ, भूषण, वस्त्र इत्यादिक जो ऐश्वर्य थे सो लोगों को दे दिये ब्राह्मण, अर्थी, पुत्र , स्त्री और शत्रुओं को जब पृथ्वी का राज्य दे दिया तो शत्रुओं ने जाना कि अब राजा भगीरथ में कुछ पराक्रम नहीं रहा तो उन्होंने आकर इसका देश घेर लिया, हवेली पर चढ़ आये और राजा के सब स्थान रोक लिये । राजा के पास केवल धोती अँगौछा रह गया तब राजा वहाँ से निकलकर वनों में विचरने लगा और शान्तपद आत्मा में स्थित हुआ । जब कुछ काल बीता तो भगीरथ फिर अपने देश में आया और अपने शत्रुओं के घर में भिक्षा माँगने लगा तब शत्रुओं और दूसरे लोगों ने उसकी बहुत पूजा की और कहा हे भगवन्! तुम अपना राज्य लो, पर उसने राज्य न लिया । जैसे पृथ्वी पर पड़े तृण को तुच्छबुद्धि करके नहीं ग्रहण करता तैसे ही उसने राज्य ग्रहण किया । कुछ काल वहाँ रहकर त्रितलऋषि के पास जो उसका गुरु था अनिच्छित होकर गया । गुरु ने आत्मत्व से उसे ग्रहण किया और शिष्य ने भी गुरु को आत्मत्व से ग्रहण किया । गुरु और शिष्य भावना से रहित हो वे दोनों कुछ काल एक स्थान में रहे और फिर वन में इकट्ठे बिचरने लगे । वे शान्त और आत्मपद में स्थित रहकर रागद्वेष से रहित केवल एकरस स्थित रहे और उनको न देह त्यागने की इच्छा थी, न देह रखने की इच्छा थी, केवल अनिच्छित प्रारब्ध में स्थित रहते थे । इतने में स्वर्गलोक के सिद्धों ने आकर उनकी पूजा की और बड़े ऐश्वर्य पदार्थ चढ़ाये । बहुत अप्सरा आईं और जितने ऐश्वर्य भोग पदार्थ थे वे आये पर उनको उन्होंने तुच्छ जाना, क्योंकि वे आत्मसुख से तृप्त और केवल आकाशवत् निर्मल थे और प्रकाशरूप, समचित्त, कलंकतारूपी मल से रहित थे । हे रामजी! जैसे राजा भगीरथ स्थित हुए हैं तैसे ही तुम भी स्थित हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनन्नाम चतुःषष्टितमस्सर्गः ।।64।।

अनुक्रम

www.tantrik-astologer.in

भगीरथोपाख्यानसमाप्ति

वशिष्टजी बोले, हे रामजी! जब कुछ काल बीता तो भगीरथ वहाँ से चला और एक देश में पहुँचा जहाँ का राजा मृतक हुआ था और उसकी लक्ष्मी राजा की याचना करती थी । राजा भगीरथ भिक्षा माँगता फिरता था कि उस राजा के मन्त्री ने भगीरथ को देखा कि जो कुछ गुण राजा में होते हैं वे इसमें हैं; इसलिये वह राजा भगीरथ से बोला, हे भगवन्! आप इस राज्य को अंगीकार कीजिये, क्योंकि आपको अनिच्छित प्राप्त हुआ है । निदान राजा ने उस राज्य को ग्रहण किया और उसे न कुछ भला जाना न बुरा । फिर राजा हाथी पर आरूढ़ हो सेना में सुशोभित हुआ देश और अब स्थान सेना से पूर्ण हुए । जैसे मेघ से ताल पूर्ण होते हैं तैसे ही देश और स्थान सेना से पूर्ण हो गये और नगारे और साज बजने लगे । तब राजा गृह में गया और महल की सब स्त्रियाँ आईं । जहाँ का राज्य भगीरथ ने पहले किया था उस देश से मन्त्री और प्रजा आये और उन्होंने भगीरथ से कहाँ, हे भगवन् जिन शत्रुओं को तुमने राज्य दिया था । उनको मृत्यु ने भोग कर लिया है । जैसे मछली मल माँस को खा लेती है तैसे ही उनको मृत्यु ने भोग कर लिया है । तैसे ही उनको मृत्यु ने भोजन कर लिया है, इससे तुम राज्य करो । यद्यपि इच्छा तुमको नहीं है पर तो भी राज्य करो, क्योंकि जो वस्तु अनिच्छित प्राप्त हो उसका त्याग करना श्रेष्ठ नहीं । इतना सुन राजा ने उस राज्य को भी अंगीकार किया और राज्य करने लगा । फिर राजा ने पिछला वृत्तान्त स्मरण कर कि मेरे पितर कपिल मुनि के शाप से भस्म हो कूप में पड़े है, विचार किया कि मैं उनका उद्धार करूँ, इसलिये अपने मन्त्री को राज्य देकर अकेला वन को चला और इच्छा की कि तप करूँ । निदान एक स्थान में स्थित होकर तप करने लगा और गंगा के लाने के निमित्त ब्रह्मा, रुद्र और जगत् ऋषि का सहस्त्रवर्ष पर्यन्त आराधन किया । तब गंगा मध्य मण्डल में आईं जो विष्णु भगवान् के चरणों में प्रकट हुई हैं । जब पितरों के उद्धार निमित्त गंगा के प्रवाह को राजा ले आया तब फिर समचित्त और शान्तपद में स्थित होकर विचरने लगा, जिसमें, क्षोभ, भय और इच्छा न थी केवल शान्त आत्मपद स्थित हुआ । जैसे पवन से रहित समुद्र अचल होता है तैसे ही संकल्प विकल्प से रहित होकर वह राजा स्थित हुआ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भगीरथोपाख्यानसमाप्तिर्नाम पञ्चषष्टितमस्सर्ग ||65||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

शिखर ध्वजचुड़ालोपाख्यान

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह जो भगीरथ की दृष्टि तुमसे कही है उसका आश्रय करके विचरो यह दृष्टि सब दुःखों का नाश करती है । एक आख्यान ऐसा आगे भी व्यतीत हुआ है ऐसा शिखरध्वज राजा हुआ था । इतना सुन रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह शिखरध्वज कौन था और किस प्रकार चेष्टा करता था सो कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सात मन्वन्तरों के बीतने के उपरान्त द्वापरयुग की चौथी चौकड़ी में राजा शिखरध्वज हुआ है और फिर भी होवेगा । वह राजा सम्पूर्ण पृथ्वी का तिलक, महाशूरवीर और सम्पूर्ण ऐश्वर्य से सम्पन्न था परन्तु उसमें बन्धवान् न था । वह बड़े भोग भोगता और बड़े ओज से संपन्न, उदार; धैर्यवान् था । किसी पर अन्याय न करे और समचित्त, शान्तपद में स्थित और सम्पूर्ण दुःखों से रहित था और अर्थी का अर्थ पूर्ण करता था । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ऐसा ज्ञानवान् राजा फिर क्यों जन्म पावेगा, ज्ञानी तो फिर जन्म नहीं पाता? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे एक समुद्र में कई तरंग समान उठते हैं, कई अर्द्धसम और कई विलक्षण भाव से फुरते हैं, तैसे ही आत्मसमुद्र में कई आकार एक से कई अर्द्ध और कई विलक्षण भाव से फुरते हैं, उनकी चेष्टा और आकार एक से दृष्टि आते हैं । इसी प्रकार शिखरध्वज की ऐसे ही प्रतिमा होगी । हे रामजी! जब इस सर्ग में सप्त मन्वन्तर और चार चौकड़ी द्वापरयुग की बीतेंगी तब जम्बूद्वीप के मालव देशमें एक श्रीमान शिखरध्वज राजा होगा परन्तु वह उस सा शिखरध्वज दूसरा होगा, वह न होगा । प्रथम शिखरध्वज जब षोड़श वर्ष का राजकुमार था तब एक समय शिकार को निकला । वसन्त ऋतु का समय था, राजा अपने बाग में जा ठहरा, जहाँ फूलों के विचित्र स्थान बने हुए थे और कमलिनियाँ मानों स्त्रियाँ और धूलि के कणके उनके भूषण थे और उनके समीप पुष्पवृक्ष लगे थे । इसी प्रकार भँवरी और भँवरों की सुन्दर लीला देख राजा को विचार उपजा कि मुझे स्त्री प्राप्त हो तो मैं भी चेष्टा करूँ । निदान उसे अधिक चिन्तना हुई कि कब मुझे स्त्री मिलेगी और कब उसके साथ फूलों की शय्या पर शयन करूँगा । जब इस प्रकार भोग की राजा चिन्तना करने लगा तब मन्त्रियों ने, जो त्रिकाल ज्ञान रखते थे और राजा के शरीर की अवस्था जानते थे, जाना कि हमारे राजा का मन स्त्री पर है, इससे अब राजा का विवाह करना चाहिए । निदान एक राजा की कन्या जो बहुत सुन्दरी थी और वर चाहती थी उससे राजा शिखरध्वज का विवाह शास्त्र की विधि सहित किया गया और राजा बहुत प्रसन्न होकर अपने घर आया । उस स्त्री का नाम चुड़ाला था और वह बहुत सुन्दरी थी । उससे राजा की बहुत प्रीति हुई और उस स्त्री का भी राजा से बहुत स्नेह हुआ, जो कुछ राजा के मन में चिन्तना हो वह रानी पहिले ही सिद्ध कर दे । उनकी परस्पर ऐसी प्रीति बढ़ी जैसे भँवरे और भँवरी में होती है । एक समय राजा मन्त्रियों को राज्य देकर वन को गया– और वहाँ नाना प्रकार की चेष्टा कर दोनों ऐसे बिचरे कि जैसे सदाशिव और पार्वती व विष्णु और लक्ष्मी बिचरें । इसके पश्चात् राजा योगकला सीखने लगे पर रानी राजा को भोगकला सिखावे, इसी प्रकार वे दोनों सम्पूर्ण कलाओं में संपन्न हुए । चुड़ाला की बुद्धि राजा की बुद्धि से तीक्ष्ण थी वह शीघ्र ही सब बातें जान लें और राजा को सिखावे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखर ध्वजचुड़ालोपाख्यानंनाम षट्षष्टितमस्सर्गः ||66||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

चुड़ालाप्रबोध

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी प्रकार जब राजा और रानी ने अनन्त भोग भोगे तो जैसे कुम्भ में छिद्र होने से शनैः शनैः जल निकलता है तैसे ही शनैः शनैः उनके यौवन के दिन निकल गये और वृद्धा अवस्था आई तब राजा और रानी को वैराग्य उत्पन्न हुआ और वैराग्य से वर यह विचारने लगे कि यह संसार मिथ्या और विनाशी है, एकसा नहीं रहता और ये भोग भी मिथ्या हैं। इतने काल हम भोगते रहे पर तृष्णा पूर्ण न हुई-बढ़ती ही गई। हे रामजी! इस प्रकार राजा और रानी वैराग्य से विचारते रहे कि ये भोग मिथ्या हैं और हमारी यौवन अवस्था भी व्यतीत हो गई है। जैसे बिजली का चमत्कार क्षणमात्र होकर बीत जाता है तैसे ही यौवन अवस्था व्यतीत हो गई और मृत्यु निकट आई। जैसे नदी का वेग नीचे चला जाता है तैसे ही आयु व्यतीत हो जाती है और जैसे हाथ पर जल डालने से वह जाता हे तैसे ही यौवन अवस्था निवृत्त हो गई है। जैसे जल में तरंग और बुद्बुदे उपजकर लीन हो जाते हैं तैसे ही शरीर क्षणभंगुर है। जहाँ चित्त जाता है वहाँ दुःख भी इसके साथ चले जाते हैं-निवृत्त नहीं होते। जैसे माँस के टुकड़े के पीछे चील पक्षी चला जाता है तैसे ही जहाँ अज्ञान है वहाँ दुःख भी पीछे जाते हैं। यह शरीर भी नष्ट हो जावेगा जैसे पका हुआ आम का फल वृक्ष के साथ नहीं रहता, गिर पड़ता है तैसे ही शरीर भी नष्ट हो जाता है। जो शरीर कि अवश्य गिरता है उसका क्या आसरा करना है। जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिर पड़ता है तैसे ही यह शरीर गिर पड़ता है। इससे हम ऐसा कुछ करें कि संसाररूपी विसूचिका निवृत्त हो। यह संसाररूपी विसूचिका ब्रह्मविद्या के मन्त्र से निवृत्त होती है, ब्रह्मविद्या से ज्ञान उपजता है और आत्मज्ञान से सर्व दुःख निवृत्त हो जाते हैं इसके सिवा और कोई उपाय नहीं, इसलिये आत्मज्ञान के निमित्त हम सन्तों के पास जावें। ऐसे विचार करके राजा और चुड़ाला आत्मज्ञानियों के पास चले। वे आत्मज्ञान की वार्ता करें और आत्म ज्ञान में ही चित्तभावनाकर आपस में उसी का विचार और चर्चा करें। निदान वे ऐसे सन्तों के पास पहुँचे जो संसारसमुद्र से तारनेवाले और आत्मवेत्ता थे। उनकी पूजा करके उन्होंने प्रश्न किया और राजा और रानी उनसे ब्रह्मविद्या सुनने लगे कि आत्मा शुद्ध, आनन्दरूप, चैतन्य और एक है जिसके पाये से दुःख निवृत्त हो जाते हैं। हे राम जी! तब रानी चुड़ाला विचार में लगी और राजा की कोई टहल भी करे तो भी उसके चित्त की वृत्ति विचार ही में रहे। वह यह विचारे कि मैं क्या हूँ? यह संसार क्या है और संसार की उत्पत्ति किससे है? ऐसे विचार कर वह जानने लगी कि यह शरीर पञ्चतत्त्व का है सो मैं नहीं, क्योंकि शरीर जड़ है और कर्म इन्द्रियाँ भी जड़ हैं। जैसा शरीर है तैसे ही शरीर के अंग भी हैं और ये चेष्टा ज्ञान इन्द्रियों से करते हैं सो ज्ञान इन्द्रियाँ भी मैं नहीं, क्योंकि ये भी जड़ हैं। मन से इन्द्रियों की चेष्टा होती है सो मन भी जड़ है, इसमें संकल्प विकल्प बुद्धि से है। बुद्धि भी जड़ है क्योंकि उसमें निश्चय चेतना अहंकार से होती है और अहंकार भी है, क्योंकि उसमें अहं चेतना से होती है। वह चेतनता जीव से होती है वह जीव भी मैं नहीं क्योंकि जीवत्व फुरनरूप है और मेरा स्वरूप अफुर, सदा उदयरूप और सन्मात्र है। बड़ा कल्याण है कि चिरकाल के उपरान्त मैंने अपना स्वरूप पाया है जो अविनाशी अनन्त और आत्मा है। जैसे शरत्‌काल का आकाश निर्मल होता है तैसे ही मैं निर्मल और विगतज्वर, राग-द्वेषरूपी ताप से रहित चिन्मात्र हूँ और अहं त्वं से रहित हूँ। मुझमें फुरना कोई नहीं, इसी से शान्तरूप हूँ। जैसे क्षीरसमुद्र मन्दराचल पर्वत से रहित शान्तरूप है, तैसे ही मैं चित्त से रहित अचल और अद्वैत हूँ, कदाचित् स्वरूप से परिणाम को नहीं प्राप्त होती। ऐसा जो चिन्मात्रप्रद है उसको ब्रह्म वेत्ताओं ने ब्रह्म परमात्म चैतन्यसंज्ञा

www.tantrikastrologer.in

कही है । यह आत्मा ही मन बुद्धि आदिक दृश्य और संसाररूप होकर फैला है और स्वरूप से अच्युत है और फुरने से आकार भासते हैं तो भी आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे बड़े पर्वत के पत्थर और बट्टे होते हैं सो पर्वत से भिन्न नहीं तैसे ही यह दृश्य आत्मा से भिन्न नहीं । ये आकार ऐसे हैं जैसे गन्धर्वनगर नाना आकार हो भासता है पर ज्ञानवान् को एकरस है और अज्ञानी को भेद भावना है । जैसे बालक मृत्तिका के खिलौने हाथी, घोड़ा, राजा, प्रजा आदि बनाता है और जिसको मृत्तिका का ज्ञान है उसको मृत्तिका ही भासती है भिन्न कुछ नहीं भासता, तैसे ही अज्ञान से नानारूप भासते हैं । अब मैंने जाना है कि मैं एकरस हूँ । हे रामजी! इस प्रकार चुड़ाला आपको जानने लगी कि मैं सन्मात्र, अच्छेद्य, अदाह्य, स्वच्छ, अक्षर और निर्मल हूँ, मुझमें `अहं' `त्वं' एक और द्वैत शब्द कोई नहीं और जन्म मरण भी नहीं । यह संसार चित्त से भासता है और आत्मस्वरूप है । देवता, यक्ष, राक्षस, स्थावर, जंगम आदिक सब आत्मरूप हैं जैसे तरंग और बुद्बुदे समुद्र से भिन्न नहीं तैसे ही आत्मा से कोई वस्तु भिन्न नहीं । दृश्य, दृष्टा, दर्शन ये भी आत्मा की सत्ता से चेतन हैं, इनको आपसे सत्ता कुछ नहीं । मुझमें अहं का उत्थान कदाचित नहीं-अपने आपमें स्थित हूँ । अब इसी पद का आश्रय करके चिरकाल इस संसार में बिचरूँगी ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चुड़ालाप्रबोधोनाम सप्तषष्टितमस्सर्गः ||67||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

अग्निसोमविचारयोग

वसिष्ठझी बोले, हे रामजी! फिर चुड़ाला जिसकी तृष्णा निवृत्त हुई थी और जो दुःख, भय और भोगवासना से निवृत्त होकर केवल शान्तपद को पाकर शोभित हुई थी , पाने योग्य पद पाकर जानने लगीं कि इतने काल तक मैं अपने स्वरूप से गिरी थी और अब मुझे शान्ति हुई और दुःख सब मिट गये हैं । अब मुझे कुछ ग्रहण और त्याग नहीं और अब मैं अपने आत्म स्वभाव में स्थित हुई हूँ । निदान एकान्त बैठ कर समाधि में ऐसी लगी जैसे वृद्ध गऊ पर्वत की कन्दरा पाकर तृण और घास से बहुत प्रसन्न होती है तैसे ही अपने आनन्दरूप को पाकर चुड़ाला स्थित भई । हे रामजी! वह ऐसी आनन्द को प्राप्त हुई जिसको वाणी से नहीं कह सकते । तब राजा शिखरध्वज रानी को देखकर आश्चर्यवान् हुआ और बोला, हे अंगने! अब तुम फिर यौवन अवस्था को प्राप्त हुई हो और तुमको कोई बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ है । कदाचित् तुमने अमृत का सार पान किया है इससे अमर हुई हो वा किसी योगीश्वर ने तुझे इस कला को प्राप्त किया है, अथवा त्रिलोकी का ऐश्वर्य तुझे प्राप्त हुआ है । हे अंगने! तुझे कौन वस्तु मिली है? तुम्हारे चित्त की वृत्ति से ऐसा जान पड़ता है कि तुमने अमृत का सार पान किया है व त्रिलोकी के राज्य से भी कोई अधिक पदार्थ पाया है । तू तो किसी बड़े आनन्द को प्राप्त हुई है कि जिसका आदि अन्त कोई नहीं दीखता और तुझमें भोग वासना भी नहीं दीखती, शान्तरूप हो गई है । जैसे शरत्ःकाल का आकाश निर्मल होता है तैसे ही तुझमें निर्मलता दीखती है और तेरे श्वेत बाल भी बड़े सुन्दर दृष्टि आते हैं इसलिये कह कि तुझे कौन-सी वस्तु प्राप्त हुई है? चुड़ाला बोली, हे राजन्! यह जो कुछ दीखता है सो किंचन है और इससे जो रहित निष्किंचनपद है उसको पाकर मैं श्रीमान् हुई हैं ।जिसका आकार निष्किंचन है और जिसमें दूसरे का अभाव है उसी को पाकर मैं श्रीमान हुई हूँ और जो कुछ भोग हैं उनसे रहित होकर अभोग भोग भोगा है उस भोग से तृप्त हुई हूँ अर्थात् आत्मज्ञान मैंने पाया है और आत्मा में विश्राम पाया है जिससे सदा शान्तरूप और श्रीमान् हूँ। हे राजन्! जितने ये राजभोग सुख हैं उनको त्यागकर मैं परमसुख को भोगती हूँ और रागद्वेष से रहित होकर मैं कैसी हूँ कि `नहीं हूँ' और मैं ही स्थित हूँ । जो कुछ नेत्रों से दिखता इन्द्रियों से जाना जाता है और मन से चिन्तन होता है वह सब मिथ्या स्वप्नवत् है और मैं वहाँ स्थित हुई हूँ जहाँ इन्द्रिय और मन की गम नहीं और अहंकार का उत्थान नहीं, उस पद को मैंने पाया है । जो सबका आधार और सबका आत्मा है और जो सब अमृत है उसका सार अमृत मैंने पान किया है इससे मेरा कदाचित् नाश नहीं और कदाचित् भय भी नहीं । हे रामजी! जब इस प्रकार रानी ने कहा तो राजा शिखरध्वज उसके वचन न समझा और हँसकर बोला, हे मूर्ख स्त्री! यह तू क्या कहती है जो प्रत्यक्ष वस्तु को झूठ बताती है और कहती है कि मैं नहीं देखती और असत् वस्तु जो नहीं दीखती उसको सत्य कहती है और कहती है कि मैं देखती हूँ । ये वचन तेरे कौन मानेगा? इन वचनोंवाला शोभा नहीं पाता तू जो कहती है कि मैं ऐश्वर्य को त्यागकर श्रीमान् हुई हूँ सो निष्किंचन को पाकर इन बचनोंवाला शोभा नहीं पाता । तू कहती है कि इन भोगों को मैंने त्याग किया है और इनसे जो रहित अभोग है उनको मैं भोगती हूँ, कभी कहती है कि मैं कुछ नहीं, फिर कहती है मैं ईश्वर हूँ, इससे महामूर्खा दृष्टि आती है । जो इसी में तेरा चित्त प्रसन्न है तो ऐसे ही विचर परन्तु यह बात सुनकर कोई सत् न मानेगा और तुझे यह शोभा भी नहीं देता । हे रामजी! ऐसे कहकर राजा उठ खड़ा हुआ और मध्याह्न का समय हो जाने से स्नान के निमित्त गया । रानी मन में बहुत शोकवान् हुई और विचार किया कि बड़ा कष्ट है जो राजा ने आत्मपद में स्थित न पाई और मेरे वचनों को न जाना । यही मन में

www.tantrik-astrologer.in

धरकर वह अपने आचार में लगी और फिर अपना निश्चय राजा को न बताया और जैसे अज्ञान काल में चेष्टा करती थी तैसे ही ज्ञान पाकर भी करने लगी । एक समय रानी के मन में आया कि प्राणों को ऊपर चढ़ाऊँ और ऊर्ध्व को लाकर उदान और अपान को वश करूँ जिससे आकाश और पाताल दोनों स्थानों में जाऊँ । ऐसे चिन्तनाकर रानी योग में स्थित हुई और प्राणायाम करने लगी । इतना सुनकर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह संसार संकल्प से उत्पन्न हुआ है । स्थावर-जंगमरूप संसार वृक्ष है और संकल्प इसका बीज है । वह कौन प्राणायाम पवन है जिससे आकाश को उड़ते हैं और फिर नीचे आते हैं? अज्ञानी पुरुष भी जिसे यत्न करके कैसे सिद्ध करते हैं और ज्ञानवान् कैसे लीला करके विचरते हैं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तीन प्रकार की सिद्धि होती हैं-एक तो उपादेय सिद्धि है कि यह दुःख मेरा निवृत्त हो और मैं सुखी हो जाऊँ । यह चिन्ता महा अज्ञानी को रहती है, ओर तीसरी सिद्धि यह है कि जो मैं कर्म करता हूँ उसका फल मुझे मिले । यह विचार करनेवाला भी अज्ञानी है, क्योंकि वह आपको कर्त्ता मानता है । ज्ञानवान् इनसे उल्लंघित बर्तता है वह कदाचित् इसमें बर्तता भी है तो भी उसको यह निश्चय रहता है कि न मैं कर्ता हूँ और न भोक्ता हूँ । योग करके इस प्रकार सिद्ध होते हैं कि देश काल वस्तु और क्रिया उनके अधीन हो जाती हैं । मुख में गुटका रखके जहाँ चाहे उसी ठौर में जा प्राप्त होना, नेत्रों में अञ्जन डालके जिसको देखा चाहे उसको देख लेना और खंग हाथ में धारण करके संपूर्ण पृथ्वी को वश कर लेना-यह तो क्रिया पदार्थ है और देश यह है कि जो सब पर्वत हैं उनमें कितनी पीठ हैं और बड़े उत्तम हैं । जिस प्रकार ये सिद्ध होते हैं सो भी सुनो नाभि के तले आधारचक्र में एक कुण्डलिनी शक्ति है, सर्पिणी की नाईं उसमें कुण्डल है और वह कुण्डल मार बैठी है और वासना ही उसमें विष है जितनी नाड़ी हैं उन सबकी समिष्टनी है । उस कुण्डलिनी में जब मनन होता है तब मन होकर प्रकट होता है, जब निश्चय होता है तब बुद्धि प्रकट होती है, जब अहंभाव होता है तब अहंकार प्रकट होता है, जब स्मरण होता है तब चित्त प्रकट होता है और जब उसमें स्पर्श की इच्छा होती है तब पवन प्रकट होता है । इसी प्रकार पञ्चतन् मात्रा और चारों अन्तःकरणप्रकट होते हैं । जितनी नाड़ी हैं वे सब कुण्डलिनी से प्रकट होती हैं और आत्मा का प्रकट होना भी उससे जाना जाता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन् उससे आत्मा का प्रकट होना कैसे जाना जाता है? आत्मा तो देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित है और सब देश, सर्वकाल और सर्व वस्तु से पूर्ण है । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में और धूप में सब ठौर दीखता है तैसे ही ब्रह्मसत्ता सर्वत्र समान है और प्रकट सात्त्विकगुण में दीखती है । जो कुछ नाड़ी और इन्द्रियाँ हैं वे कुण्डलिनी शक्ति से उदय होती हैं और जब यह जीव कुण्डलिनी शक्ति में स्थित होकर पवन को स्थित करता है तब जो कुछ भीतर प्राणवायु हैं वे सब इसके वश होती हैं जैसे सर्वसेना राजा के वश होती है उसी प्रकार सब इन्द्रियाँ प्राण के वश होती है और जो प्राणवायु वश नहीं होती तो आधि व्याधि रोग उपजते हैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आधि व्याधि कैसे होती है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मन की पीड़ा का नाम आधि है और देह के दुःख व्याधि कहते हैं । आधि तब होती है जब संकल्प होता है कि यह सुख मुझे मिले पर यदि वह वस्तु नहीं प्राप्त होती तब चिन्ता करके दुःख पाता है और व्याधि तब होती है जब बात, पित्त, कफ का विकार शरीर में होता है और उससे दुःख पाता है । जब मन और शरीर का दुःख इकट्ठा होता है तब आधि व्याधि, दुःख इकट्ठे होते हैं और जब भिन्न भिन्न होते हैं तब दुःख भी भिन्न भिन्न होते हैं । ज्ञानवान् को न आधि होती है न व्याधि है । यह योग की कला मैंने विस्तार से नहीं कही, क्योंकि पूर्व के ज्ञान क्रम का प्रसंग रह जाता है । जितनी कला है उन सबको मैं जानता हूँ परन्तु यह कला ज्ञान मार्ग को रोकनेवाली है ।

www.tantrikastrologer.in

वासना चार प्रकार की है सो सुनो । एक वासना सुषुप्ति है, दूसरी स्वप्न, तीसरी जाग्रत और चौथी क्षीण । स्थावर योनि को सुषुप्ति वासना है सो आगे फुरेगी, तिर्यक्ः्योनि की स्वप्न वासनाहै कि उनको वासना का ज्ञान भी नहीं और जंगम अर्थात् मनुष्य, देवता आदिको को जाग्रत वासना है कि वे वासना ही में लगे हैं । ये तीन वासना तो अज्ञानी की हैं और क्षीण वासना ज्ञानी की है अर्थात् उसको वासना की सत्यता नष्ट हुई है । जब इस प्रकारवासना निवृत्त होती है तब आगे संसार भी नहीं रहता और जब कुण्डलिनी शक्ति से वासना फुरती है तब पञ्चतन्मात्रा के द्वारा संसार का भान होता है । संसाररूपी वृक्ष का बीज वासना ही है, दशों दिशा उस वृक्ष के पत्र हैं, शुभ अशुभ कर्म उसके फूल हैं और स्थावर जंगम फल हैं । जैसी जैसी वासना पुर्यष्टक से मिलकर जीव करता है तैसा ही आगे फल होता है । हे रामजी! इससे वासना का त्याग करो-वासना ही संसाररूपी वृक्ष का बीज है और निर्वासनिक होना ही पुरुष प्रयत्न है-तब विश्व कदाचित् न भासेगा । जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धकाररूपी रात्रि नहीं रहती तैसे ही ज्ञानरूपी सूर्य के उदय हुए संसाररूपी अन्धकार निवृत्त हो जाता है । हे रामजी! आधि व्याधि बड़े रोग हैं सो मन से होते हैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आधिरोग तो मन से होता है पर व्याधि तो शरीर का रोग है, मन से कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! व्याधि दो प्रकार की है एक लघु और दूसरी दीर्घ है । जो शरीर को कोई दुःख प्राप्त हो उसे लघु कहते हैं वह स्नान और जप से निवृत्त हो जाती है और दीर्घ व्याधि जन्म मरण के रोग को कहते हैं वे बड़े रोग हैं और मन के शान्त हुए बिना निवृत्त नहीं होते । इसी से आधि व्याधि दोनों मन से होते हैं । फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! व्याधि मन से कैसे होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब चित्त शान्त होता है तब कोई रोग नहीं रहता और जबतक चित्त शान्त नहीं होता तबतक आधि व्याधि होती है जो कुछ अन्न बाहर अग्नि से परिपक्व होता है उसको जब मनुष्य भोजन करते हैं तब भीतर जो कुण्डलिनी पुर्यष्टका से मिली हुई है वह उदान पवन को ऊर्ध्वमुख हो फुराती है और अपान पवन उससे अधः को फुरता है, उदान और अपान का आपस में विरोध है- उनके क्षोभ से अग्नि उठती है और हृदयकमल में स्थित होती है तब बाहर अग्नि का पका भोजन हृदय की अग्नि से फिर पकता है और सर्व नाड़ी अपने-अपने भाग रस को ले जाती हैं । वीर्य-वाली नाड़ी वीर्य को रखती है और रुधिरवाली नाड़ी रुधिर को रखती है । पर जब राग और द्वेष से चित्त कुण्डलिनी शक्ति में क्षोभित होता है तब नाड़ी अपने-अपने स्थानों को छोड़ देती हैं और अन्न भी भीतर पक्व नहीं होता तब उस कच्चे रस से रोग उठता है । जैसे राजा को क्षोभ होता है तो सेना को भी क्षोभ होता है और जब राजा को शान्ति होती है, तैसे ही जब मन में क्षोभ होता है तब रोग होता है और जब मन में शान्ति होती है तब नाड़ी अपने अपने स्थानों में स्थित होती हैं-रोग कोई नहीं होता । इससे हे रामजी! आधि-व्याधि रोग तब होते हैं जब मनुष्य का चित्त निर्वासनिक नहीं होता पर जब चित्त शान्त होता है तब रोग कोई नहीं रहता । इससे निर्वासनिक पद में स्थित हो । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! पीछे आपने कहा कि मन्त्रों से भी रोग निवृत्त होता है सो कैसे निवृत्त होता है? वशिष्ठजी ने कहा है कि मन्त्रों से भी रोग निवृत्त होता है सो कैसे निवृत्त होता है? वशिष्ठजी ने कहा, हे रामजी! प्रथम मनुष्य को श्रद्धा होती है कि इस मन्त्र से रोग निवृत्त होगा तब पुण्यक्रिया, दान, सन्तजनों की संगति और य, र, ल, व आदिक जो अक्षर हैं इनका जाप करके (क्योंकि जितने कुछ जाप और मन्त्र हैं सो इन अक्षरों से सिद्ध होते हैं) व्याधिरोग निवृत्त हो जाता है । योगीश्वरों का क्रम अणु और स्थूल है सो भी सुनो । जब ये प्राण और अपान कुण्डलिनी शक्ति में स्थित होते हैं तो इनको वश करके योगी गम्भीर होता है । जैसे मशक में पवन होता है इसी प्रकार पवन को स्थित करके कुण्डलिनी सुषुम्णा में प्रवेश करती है और

www.tantrikastrologer.in

ब्रह्मरन्ध्र में जा स्थित होती है एक मुहूर्त पर्यन्त वहाँ स्थित हो तो आकाश में सिद्धियाँ देखता है । जिस प्रकार इसका क्रम है तैसे तुमसे कहता हूँ । हे रामजी! सुषुम्णा के भीतर जो ब्रह्मरन्ध्र है उसमें जब पूरकद्वारा कुण्डलिनी शक्ति स्थित होती है अथवा रेचक प्राण वायु के प्रयोग से द्वादश अंगुल पर्यन्त मुख से बाहर अथवा भीतर वा ऊपर एक मुहूर्त तक एक ही वेर स्थित होती है तब आकाश में सिद्धों का दर्शन होता है । रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मन! जब ब्रह्मरन्ध्र में जीवकला जा स्थित होती है तो कैसे दर्शन होता है? दर्शन तो नेत्रों से होता है सो नेत्र आदिक इन्द्रियाँ वहाँ कोई नहीं होती, नेत्रों बिना दर्शन कैसा होता है । वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो रामजी! पृथ्वी में बिचरनेवालों को आकाश में विचरनेवालों का दर्शन नहीं होता परन्तु दिव्यदृष्टि से इष्ट आता है-चर्म दृष्टि से नहीं दीखते । विज्ञान के निकट जो निर्मल बुद्धि नेत्र होते हैं उनसे दर्शन होता है । जैसे स्वप्ने में चर्मनेत्रों के बिना भी सब पदार्थ दृष्ट आते हैं तैसे ही सिद्धों का दर्शन होता है परन्तु इतनी विशेषता है कि स्वप्ने के पदार्थ जाग्रत में नहीं भासते और न उनसे कुछ अर्थ सिद्ध होता है पर सिद्धों के समागम की चेष्टा जाग्रत में भी स्थिर प्रतीत होती है । मुख के बाहर जो द्वादस अंगुल पर्यन्त अपान का स्थान है उसमें रेचक प्राणायाम का अभ्यास होता है और जब चिरपर्यन्त वहाँ प्राण स्थिरीभूत होता है तब और पुरियों और दिशा के स्थानों में प्राप्त हो सकता है । रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मन्! जो पदार्थ चञ्चलरूप हैं वे क्योंकर स्थित होते हैं? वक्ता जो गुरु हैं वे कृपा करके कहते हैं, वे दुष्ट प्रश्न जो तर्करूप हैं उससे भी खेदवान् नहीं होते । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसी जैसी वस्तु है तैसी तैसी उनकी शक्ति स्वाभाविक होती है । आदि जगत् के फुरने से जैसी नीति हुई है तैसी ही अबतक आत्मा में स्वभाव शक्ति का फुरना होता है । यह जो अविद्या है सो अवस्तुरूप है और जो कहीं वस्तुरूप होकर भी भासती है सो ऐसे है जैसे वसन्त ऋतु में भी शरत्‌काल के फूल दृष्टि आते हैं और वसन्त ऋतु के शरत्‌काल में भासते हैं । यह भी एक नीति है कि इससे इस द्रव्य की शक्ति ऐसे हो जावे परन्तु स्वरूप से सब ब्रह्मरूप है, द्वैत नानात्व कुछ नहीं । केवल ब्रह्मतत्त्व अपने आपमें स्थित है, व्यवहार के निमित्त नानात्व की   कल्पना हुई है, वास्तव में द्वैत कुछ नहीं । रामजी ने पूछा, हे भगवन् सूक्ष्मरन्ध्र से स्थूलरूप वायु कैसे निकल जाती है और अणु सूक्ष्मरूप होकर फिर स्थूलभाव को कैसे प्राप्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे आरे से कटे काष्ठ के दो टुकड़े को शीघ्र ही घिसिये तो उनसे स्वाभाविक अग्नि प्रकट होती है तैसे ही माँसमय जो कमल उदर में है उसके मध्य हृदय कमल है और उसमें सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति है । उस कमल के भीतर दो कमल हैं एक अधः और दूसरा ऊर्ध्वः, अधः चन्द्रमा की स्थिति है और ऊर्ध्व सूर्य की स्थिति है और उनके मध्य में कुण्डलिनी लक्ष्मी स्थित है । जैसे पद्मराग मणि का डब्बा हो और मोतियों का भण्डार हो तैसे ही उसका महा उज्ज्वल रूप है । जैसे आवर्त फेन के मिलने से शलशल शब्द प्रकट होता है तैसे ही उससे शब्द निकलता है और जैसे डण्डे के साथ हिलाये से सर्पिणी शब्द करती है तैसे ही उस कुण्डलिनी से प्रणव शब्द उदय होता है । हे रामजी! आकाश और पृथ्वी जो ऊर्ध्व और अधःरूप दो कमल हैं उनके मध्य में कुण्डलिनी शक्ति स्पन्दरूपिणी स्थित है ।वह जीवकला पुर्यष्टका अनुभवरूप अतिप्रकाश सूर्य की नाईं हृदयरूप कमल की भ्रमरी है सो सबों की अधिष्ठान आदि शक्ति है और हृदयकमल में विराजमान है ।   उस हृदय आकाश में कुण्डलिनी शक्ति है उसमें से स्वाभाविक वायु निकलती है सो कोमल मृदुरूप है । वही पवन निकलकर दो रूप होता है एक प्राण और दूसरा अपान, वही अन्योन्य मिलकर स्फुरणरूप होता है । जैसे वृक्ष के पत्तों के हिलने से उससे शीघ्र ही अग्नि प्रकट होती है और बाँसों के घिसने से अग्नि प्रकट होती है तैसे ही प्राण अपान से अग्नि प्रकट होकर जब आकाश में उदय होती है तब सर्व ओर से भीतर प्रकाश होता है । जैसे सूर्य के

www.tantrikastrologer.in

उदय हुए सब ओर से भुवन प्रकाशित होते हैं तैसे ही सब ओर से प्रकाशित होता है और सूर्यरूप तारा अग्निवत् तेज आकार है । हृदय कमल का भ्रमण स्वर्णरूप है और उसके चिन्तन से योगी तद्वत् होते हैं । वह प्रकाश ज्ञानरूप है और उस तेज से योगी की वृत्ति तद्वत होती है अर्थात् एकत्वभाव को प्राप्त होती है तब लक्षयोजन पर्यन्त जो पदार्थ हों उनका उसे ज्ञान हो आता है और सब प्रत्यक्ष दृष्टि पड़ते हैं । उस अग्नि का हृदयरूपी ताल स्थान है । जैसे बड़वाग्नि समुद्र में रहती है और उसको जल ही इन्धन है अर्थात् जल को दग्ध करती है तैसे ही हृदयरूप ताल में उनका निवास है और रस शीतलतारूप जल को पचाती है उस हृदयकमल से जो अपानरूप शीतल वायु उदय होता है उसका नाम चन्द्रमा है और प्राणरूप उष्ण पवन होता है सो सूर्यरूप है । वही उष्ण और शीतल सूर्य चन्द्रमा नाम से देह में स्थित हैं । आदि प्राण वायुरूप सूर्य अपानरूप चन्द्रमा से सूर्यरूप होकर स्थित होता है । सूर्य उष्ण और चन्द्रमा शीतल है । इम दोनों से जगत् हुआ है । विद्या, अविद्या, सत्य, असत्यरूप जगत् इन दोनों से युक्त है सत्, चित्, प्रकाश,विद्या, उत्तरायण, सूर्य, अग्नि आदिक नाम बुद्धिमान् निर्मलभाव से कहते हैं और असत् जड़, अविद्या, तम, दक्षिणायन आदिक चन्द्रमारूप से मलिनभाव कहते हैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अग्नि, सूर्यरूप जो प्राणवायु है उससे शीतल जलरूप चन्द्रमा अपानरूप कैसे उत्पन्न होता है और अपान जल चन्द्रमारूप से सूर्य कैसे उत्पन्न होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सूर्य चन्द्रमा जो अग्नि सोम हैं वे परसपर कार्य कारणरूप हैं । जैसे बीज से अंकुर और अंकुर से बीज होता है, जैसे दिन से रात्रि और रात्रि से दिन होता है और जैसे छाया से धूप और धूप से छाया होती है, तैसे ही सूर्य चन्द्रमा परस्पर कार्य कारण होते हैं । कभी कभी इनकी उप लब्धि भी होती है । जैसे सूर्य के उदय हुए धूप और छाया दोनों इकट्ठे हो जाते हैं । कार्य कारण भी दो प्रकार का है-एक कार्य सत्यरूप परिणाम से होता है एक विनाशरूप परिणाम से होता है । एक से जो दूसरा होता है सो जैसे बीज नष्ट हो गया तो उससे अंकुर होता है सो विनाशरूप परिणाम होता है और जैसे मृत्तिका से घट उपजता है सो सत्यरूप परिणाम कहाता है, जो कारणकार्य के भाव में भी इन्द्रियों से प्रत्यक्ष पाइये उसका नाम सत्यरूप परिणाम है और जो कार्य में इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं पाया जाता जैसे दिन में रात्रि और रात्रि में दिन सो विनाशरूप परिणाम कहाता है । जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है तैसे ही अभाव प्रमाण भी है । इससे विनाशभाव भी एक कारणरूप है जैसे युक्तिवादी कहते हैं कि अपने संवित् में कर्तव्य नहीं बनता इत्यादि सो इस अर्थ की अवज्ञा करते हैं और अपने अनुभव को नहीं जानते । अनुभव की युक्ति उनको नहीं आती । यह अभाव प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रकट है शीतलता का परिणाम यह है कि जैसे अग्नि के भाव से शीतलता के अभाव में उष्णता होती है, दिन के अभाव में रात्रि और छाया के अभाव में धूप इत्यादिक का नाम अभाव परिणाम कहाता है । अग्नि से धूम्रभाग निकलता है सो मेघ होता है इस कारण सत्वरूप परिणाम से चन्द्रमा का कारण अग्नि होता है ओर अग्नि नाश होकर शीतलभाव को प्राप्त होता है तब उसका नाम विनाश परिणाम से अग्नि चन्द्रमा का कारण होता है । सात समुद्रों का जल पान करके बड़वाग्नि धूम्र को उत्तीर्ण करता है सो धूम्र मेघ को प्राप्त होकर अत्यर्थ जल का कारण होता है । सूर्य जो विनाश के अर्थ चन्द्रमा को पान करता है सो अमावस्या पर्यन्त बारम्बार भक्षण करता है और फिर शुक्लपक्ष में उद्गीर्ण करता है । जैसे सारस पक्षी भीठ की जड़ को भक्षण करके उद्गीर्ण कर डालता है । हे रामजी! अमृत के समान शीतल जो अपना वायु चन्द्रमारूप है सो मुख के अग्र में रहता है । वह कणकारूप जल जब शरीर में जाता है तब वह जल का अणु अपना और सूर्यरूपी प्राण फुरण को प्राप्त होता है । इस प्रकार सत्यरूप परिणाम से जल अग्नि का कणका होता है । जब जल का नाश हो जाता है तब वह

www.tantrikastrologer.in

उष्णभाव अग्नि को प्राप्त होता है--इनका विनाश परिणाम है । इस प्रकार जल अग्नि का कारण कहाता है । अग्नि के नाश हुए चन्द्रमा उत्पन्न होता है इसका नाम विनाश परिणाम है और चन्द्रमा के अभाव हुए अग्नि उत्पन्न होता है इसका नाम भी विनाश परिणाम है जैसे तम के अभाव से प्रकाश उदय होता है और प्रकाश के अभाव से तम होता है, दिन के अभाव से रात्रि और रात्रि के अभाव से दिन होता है, इसके मध्य में जो विलक्षणरूप है सो बुद्धिमानों से भी नहीं पाया जाता । वह तम और प्रकाश दोनों रूपों से युक्त है, इनके मध्य में जो संधि है सो आत्मरूप है उसमें स्थित होके चेतन और जड़ दोनों रूपों से भूत फुरण होते हैं । जैसे दिन और रात्रि, तम और प्रकाश से पृथ्वी में चेष्टा करते हैं सो चेतन और जड़रूप सूर्य और चन्द्रमा दोनों रूपों से युक्त हैं । निर्मलरूप प्रकाश जो चिद्रूप है उसका नाम सूर्य है और जड़ात्मक तमरूप है सो चन्द्रमा का शरीर है । जब निर्मल चैतन्यरूप सूर्य आत्मा का दर्शन होता है तब संसार के दुःखरूप जो हम हैं सो नष्ट हो जाते हैं- जैसे आकाश में सूर्य उदय से श्यामरात्रि का तम नष्ट हो जाता है । जड़ चन्द्रमारूप जो देह है जब उसको देखता है तब चैतन्यरूप सूर्य नहीं भासता-असत्य की नाईं हो जाता है और चैतन्य की ओर देखता है तब देह नहीं भासता । केवल लक्ष में दूसरे की उपलब्धि नहीं होती । केवल चैतन्यपद को प्राप्त हुए से द्वैत से रहित निर्वाणभाव होता है और जड़भाव को प्राप्त हुए चैतन्य नहीं भासता इससे संसार के दर्शन का कारण दोनों हैं । सूर्य चेतन से चन्द्रमा जड़ की उपलब्धि होती है और जड़ चन्द्रमा से सूर्य चेतन की उपलब्धि होती है । जैसे अग्निरूप प्रकाश अन्धकार बिना सिद्ध नहीं होता तैसे ही इन दोनोंकी सन्धि बिना आत्मा की उपलब्धि नहीं होती । प्रकाश बिना केवल जड़ की उपलब्धि भी नहीं होती । जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जिस दीवार पर पड़ता है वह दीवार प्रकाश से भासती है और प्रकाश दीवार से भासता है; तैसे ही चित्त फुरता है तब जीव को जगत् भासता है और फुरना जगत् से होता है-फुरने से रहित अचैत्य चिन्मात्र निर्वाण होता है । इससे हे रामजी! जगत् को अग्नि और सोम जानो । चेतन को देह से सम्बन्ध है परन्तु जिसकी अतिशय हो उसकी जय होती है । प्राण-अग्नि उष्णरूप है और अपान शीतल-चन्द्रमारूप है । ये दोनों प्रकाश और छायारूप हैं-इनको जानना सुख का मार्ग है । हे रामजी! जब बाहर से शीतलरूप अपान भीतर को आता है तब उष्णरूप प्राण में जो स्थित होता है और जब हृदय स्थान से निकलकर उष्णरूप प्राण बाहर को द्वादश अंगुल पर्यन्त जाता है तब अपान जो चन्द्रमा का मण्डल है उसको प्राप्त होता है अपान प्राणरूप होकर उदय होता है और प्राण अपानरूप होकर उदय होता है । जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ता है तैसे ही इनका परस्पर आपस में प्रतिबिम्ब पड़ता है । जहाँ षोडशकला चन्द्रमा को सूर्य ग्रास लेता है उस मध्यभाव में स्थित हो । जब अपान प्राणों के स्थान में आन स्थित होता है और प्राणरूप होकर उदय नहीं हुआ सो शान्तिरूप भाव है-उसमें स्थित हो । प्राण निकलकर जब मुख से द्वादश अंगुल पर्यन्त बाहर स्थित होता है और जबतक अपानभाव को प्राप्त होकर उदय नहीं हुआ वह जो मध्यमभाव है उसी में स्थित हो । मेष आदिक जो द्वादश राशि हैं उनमें एक को त्यागकर दूसरी राशि को जबतक संक्रांति नहीं प्राप्त होती उसका नाम संक्रांति है और उनके मध्य में जो सन्धि है उसका नाम पुण्यकाल है सो पुण्य भीतर और बाहर प्राण अपान की सन्धि के समय में तृणवत् है । उन संक्रान्तियों में जो वैशाख की विषुवती संक्रान्ति है सो शिवरात्रि चैत्र की संक्रान्ति त्रयोदश दिन होते हैं और अस्त की संक्रान्ति त्रयोदश दिन है इनका नाम विषुवती है । जहाँ दिन और रात्रि सम होते हैं और दक्षिणायन और उत्तरायण की जो सन्धि होती है इनके भीतर और बाहर भेद को जाने तब जन्म से रहित होकर परम बोध को प्राप्त हो । हे रामजी! उत्तरायण मार्ग योगीश्वरों का है उससे वे क्रम से मुक्त होते हैं- और दक्षिणायन मार्ग कर्म करनेवालों का है इससे

www.tantrik-astrologer.in

वे फिर संसारभागी होते हैं । उनके मध्य में जो संधि है उसमें स्थित हुए से परम उत्तमपद प्राप्त होता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अग्निसोमविचारयोगोनामाष्टषष्टितमस्सर्गः ।।68।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

चिन्तामणिवृत्तान्त

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह योग की सर्वकला मैंने विस्तार से कही और इसमें उत्तम प्रभाव वर्णन हुआ है । प्रयोजन यही है कि तुम निर्वाण पद में स्थित हो और आत्म ब्रह्म की एकता करो जिससे कि फिर जन्मादिकों का दुःख न हो! ब्रह्म सत्, चिद, आनन्द स्वभावमात्र है । जो एक आत्मा में एकत्वभाव होते हैं वही भाव रहते हैं । धनी शक्ति का धनी होता है और अविद्या नाश हो जाती है । इस प्रकार जब वही चुड़ाला रानी योग और ज्ञान के अभ्यास से पूर्ण हुई तब सब शक्तियों से संयुक्त होकर धनी, अणिमा आदि सिद्धियों को प्राप्त हुई । एक रात्रि में राजा सोया था तो वह अवकाश पाकर आकाश के बहुत स्थानों में बिचरी ; फिर देवलोक में अति चञ्चल काली का रूप धारके फिरी; फिर मध्य दिशा, देवलोक, दैत्यों, राक्षसों, विद्याधरों और सिद्धों के लोक में होकर सूर्यलोक, चन्द्रलोक, मेघमण्डल और इन्द्रलोक में गई और वहाँ का कौतुक देखकर फिर अधो लोक में आई । समुद्र में प्रवेश करके फिर अग्नि में प्रवेश कर गई पवन में पवनरूप हुई और नागलोक की कन्याओं में क्रीड़ा की । फिर वनों, पर्वतों, भूतों, अप्सराओं और त्रिलोकी के मध्य बिचरी । इसी प्रकार लीला करके फिर एक क्षण में उसी स्थान में जहाँ राजा सोया था आई और राजा के समीप सो रही । जैसे भँवरी भँवरा कमलिनी के मध्य में शयन करते हैं पर राजा ने न जाना कि रानी कहीं गई थी वा न गई थी । जब रात्रि बीती और प्रातःकाल हुआ तो राजा ने स्नानशाला में जाकर स्नानकर वेदोक्त कर्म किये और रानी ने भी प्रवाह पतित कर्म किये । जैसे पिता पुत्र को मीठे वचनों से उपदेश करता है तैसे ही रानी ने राजा को शनैः शनैः तत्त्व का उपदेश किया और पण्डितों से भी कहा कि तुम भी राजा को उपदेश करो कि यह जगत् स्वप्नवत् भ्रम-दीर्घ रोग और दुःखों का कारण है, आत्मज्ञान औषध से यह नाश होता है और इसकी कोई औषध नहीं । इसी प्रकार आप भी राजा को उपदेश करे और पण्डित लोग भी उपदेश करें परन्तु राजा ने वह ज्ञान न पाया और विक्षेपता में रहा । राजा ने उस उत्तमपद में विश्राम न पाया जो अपना आप केवल चिद्रूप, प्रत्येक आत्मा है । रामजी ने पूछा, हे महामुनि! रानी तो सर्वशक्तिसम्पन्न हुई थी कि योग कला में भी अति चतुर और ज्ञानकला में तद्रूप थी और राजा भी अति मूढ़ न था उसको उसका उपदेश क्यों न दृढ़ हुआ? रानी भी उसको प्रीति से उपदेश करती थी तो क्या कारण था जो वह अपने पद में स्थित न हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे अछिद्रमोती में तागा प्रवेश नहीं करता तैसे ही चुड़ाला के उपदेश ने राजा को न बेधा । जबतक आप विचार न करे और उसमें दृढ़ अभ्यास न हो तबतक यदि ब्रह्मा भी उपदेश करें तो उसको न बेधे, क्योंकि आत्मा आपही से जाना जाता है और इन्द्रियों का विषय नहीं । अधिष्ठानरूप और स्वभावमात्र आपही आपको देखता है और किसी मन और इन्द्रियों का विषय नहीं, सबका अपना आप है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यदि अपने आपही से देखता तो गुरु और शास्त्र किस निमित्त उपदेश करते हैं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! गुरु और शास्त्र जना देते हैं कि तेरा स्वरूप आत्मा है परन्तु `इदं' करके नहीं दिखाते । विचारनेत्र से आपको आपही देखता है, विचार से रहित उसको नहीं देख सकता । जैसे किसी पुरुष को चन्द्रमा कोई सचक्षु दिखाता है पर जो वह सचक्षु होता है तो देखता है और मन्ददृष्टि होता है तो नहीं देखता, तैसे ही गुरु और शास्त्र आत्मा का रूप वर्णन करते हैं और लखाते हैं पर जब वह विचार नेत्र से देखता है तब कहता है कि मैंने देखा और अन्यों को दिखाने के योग्य होता है । हे रामजी! आत्मा किसी इन्द्रिय का विषय नहीं, वह अपना आप मूलरूप है और इन्द्रियाँ कल्पित हैं जो तुम कहो कि तुम भी तो इन्द्रिय से ही उपदेश करते हो तो सब इन्द्रियों का विस्मरण करो तो अपना मूल

www.tantrik-astrologer.in

तुम्हें भासे । हे रामजी! इस पर एक क्रान्त का इतिहास है, सुनो । एक क्रान्त था जिसके पास बहुत धन और अनाज था परन्तु वह ऐसा कृपण था कि किसी को कुछ न देता था और धन की तृष्णा करता था कि किसी प्रकार मुझे चिन्तामणि मिले । इसी इच्छा से एक समय घर से बाहर निकल पृथ्वी की ओर देखता जाता था कि एक स्थान में पहुँचा जहाँ घास और भुस पड़ा था तो उसे उसमें एक कौड़ी दृष्टि पड़ी और वह उस कौड़ी को उठाकर देखने लगा कि कुछ और भी निकले तो फिर दूसरी कौड़ी निकली, इसी प्रकार ढूँढ़ते उसे तीन दिन व्यतीत हुए तब चार कौड़ी निकलीं और फिर आठ निकली । जब तीन दिन और ढूँढ़ते बीते तब चन्द्रमा की नाईं चिन्तामणि प्रकट देखी और उसे लेकर अपने घर आया और अति हर्षवान् हुआ । हे रामजी! तैसे ही गुरु और शास्त्रों से `तत्त्वमसि' और `अहं ब्रह्मास्मि' का पाना कौड़ियों का खोजना है और आत्मा चिन्तामणि रूप है । परन्तु जैसे कौड़ियों के खोज में उसने चिन्तामणि बिना खोजे न पाई तैसे ही गुरु और शास्त्रों से आत्मपद मिलता है-गुरु और शास्त्रों बिना नहीं मिलता । धन तप और कर्म से आत्मा नहीं मिलता, केवल अपने आपसे पाया जाता है । हे रामजी! जब शिखरध्वज चुड़ाला के पास से उठकर स्नान को गया तब राजा के मन में वैराग्य उपजा कि यह संसार मिथ्या है । हमने बहुत भोग भोगे तो भी हृदय को शान्ति न हुई और इन भोगों का परिणाम दुःखदायक है । जब मन में ऐसा विचार उपजा तब राजा ने गऊ पृथ्वी, सुवर्ण, मन्दिर और दूसरी सामग्री बहुत दान की और सब ऐश्वर्य के पदार्थ ब्राह्मणों, गरीबों और अतिथियों को अधिकार के अनुसार दिये । रानी ने भी ब्राह्मणों और मन्त्रियों से कहा कि राजा को तुम यही उपदेश दिया करो कि ये भोग मिथ्या है, इनमें कुछ सुख नहीं और आत्मसुख बड़ा सुख है जिसके पाये से जन्म-मरण से मुक्त होता है इसी प्रकार राजा ब्राह्मणों से सुने और अपने मन में भी वैराग उपजाता था, इस कारण विचारे कि मैं इस संसार दुःख से रहित हो जाऊँ, यह संसार बड़ा दुःखरूप है और इसमें सदा जन्म-मरण है । निदान राजा के मन में आया कि मैं तीर्थों को जाऊँ और स्नान करूँ, इसलिये तीर्थों को चला और स्नान, दान, करता इसी प्रकार देव, तीर्थों और सिद्धों के दर्शन करके गृह को आया । रात्रि के समय रानी के साथ शयन किया तो रानी से कहा कि हे अंगने! अब मैं वन को तप करने के लिये जाता हूँ, क्योंकि ये भोग मुझे दुःखदायक भासते हैं और राज्य भी वन की नाईं उजाड़ भासता है । ये भोग हम बहुत काल पर्यन्त भोगते रहे तो भी इनमें सुख दृष्टि न आया, इसलिये मैं वन को जाता हूँ-मुझे न अटकाइयो । तब रानी ने कहा, हे राजन्! अब तेरी कौन अवस्था है जो तू वन में जाता है? अब तो हमारे राज भोगने का समय है । जैसे वसन्त में शोभा पाते हैं और शरत्ृकाल में नहीं शोभते तैसे ही हम भी जब वृद्ध होंगे तब वन को जावेंगे और वन ही में शोभा पावेंगे । जैसे वन के फूल श्वेत होते हैं तैसे ही जब हमारे केश श्वेत होंगे तब शोभा पावेंगे-अब तो राज करो हे रामजी इस प्रकार रानी ने कहा पर राजा का चित्त वैराग ही में रहा और रानी का कहना चित्त में न लाया । जैसे चन्द्रमा बिना कमलिनी शान्ति नहीं पाती तैसे ही ज्ञान बिना राजा को शान्ति न हुई परन्तु वैराग करके फिर कहने लगा हे रानी! अब मुझे न रोक अब राज्य मुझे फीका लगता है इसलिये मैं वन को जाता हूँ यहाँ नहीं ठहर सकता । जो तुम कहो कि हम यहाँ तेरी टहल करती थीं वन में कौन करेगा तो पृथ्वी ही हमारा टहल करेगी, वन की वीथिका स्त्रियाँ होंगी, मृगों के बालक पुत्र, आकाश हमारे वस्त्र और फूल के गुच्छे भूषण होंगे । जब दूसरी रात्रि हुई और राजा वहाँ से चला तो रानी और सेना भी पीछे चली और कोट के बीच सब स्थित हुए । राजा और रानी ने विश्राम किया, जैसे भँवरा भँवरी सोते हैं और सेना और सहेलियाँ भौ सब सो गई और पत्थर की शिलावत् निद्रा से जड़ हो गये । जब आधी रात्रि व्यतीत हुई तो राजा जगा और देखा कि सब सो गये हैं

www.tantrikastrologer.in

। निदान शय्या से उठ और रानी के वस्त्र एक ओर करके और हाथ में खंग लेकर निकला जैसे क्षीरसमुद्र से विष्णु भगवान् लक्ष्मी के पास से उठते हैं तैसे ही उठ सब लोगों को लाँघता कोट के दरवाजे पर आया तो देखा आधे मनुष्य जागते थे और आधे सो गये थे । उन्होंने जब राजा को देखा तब राजा ने कहा, द्वारपालों! तुम यहाँ ही बैठे रहो, मैं अकेला वीरयात्रा को जाता हूँ । इतना कह राजा तीक्ष्ण वेग से चला गया और बाहर निकलकर कहा, हे राजलक्ष्मी! तुझको नमस्कार है, अब मैं वन को चला हूँ, फिर एक वन में पहुँचा जहाँ सिंह, सर्प तथा और और भयानक जीव थे, उनके शब्द सुनता आगे चला गया तो उसके आगे चलकर राजा एक ठौर जा स्थित हुआ और जब सूर्य उदय हुआ तब स्नान करके संध्यादिक कर्म किये और वृक्षों के फल भोजनकर फिर वहाँ से आगे चला । इस डर से कि कोई कहीं पीछे से आकर मुझे न रोके बड़े तीक्ष्ण वेग से चला और बड़े पहाड़, नदियों और वन उल्लंघकर बारह दिन पश्चात् जब मन्दराचल पर्वत के निकट जा पहुँचा तब एक वन में जा स्थित हुआ और स्नान करके कुछ भोजन किया । मेघ और छाया से रक्षा के निमित्त उसने वहाँ एक झोपड़ी बनाई और वासन बनाकर उनमें फूल और फल रक्खे । जब प्रातःकाल हो तब स्नान करके प्रहर पर्यन्त जाप करे और फिर देवताओं की पूजा के निमित्त फूल चुने दो प्रहर स्नान करके ऐसे व्यतीत कर, जब तीसरा प्रहर हो तब फल भोजन करे और चौथे प्रहर फिर संध्या और जाप करे । कुछ काल रात्रि को शयन करे और बाकी जाप में बितावे, इसी प्रकार काल को व्यतीत करे । हे रामजी! राजा की तो यह अवस्था हुई अब रानी की अवस्था सुनो । जब अर्धरात्रि के पीछे रानी जागी तो क्या देखा कि राजा यहाँ नहीं है और शय्या खाली पड़ी है रानी ने सहेलियों को जगाकर कहा बड़ा कष्ट है कि राजा वन को निकल गया है और बड़े भयानक वन में जावेगा । ऐसे कहकर मन में विचार किया कि राजा को देखना चाहिये इस निमित्त योग में स्थित होकर आकाश को उड़ी और आकाश की नाईं देह को अन्तर्धान किया । जैसे योगीश्वरी भवानी उड़ती है तैसे ही उड़ी और आकाश में स्थित होकर देखा कि राजा चला जाता है । रानी के मन में आया कि इसका मार्ग रोकूँ पर एक क्षणमात्र स्थित होकर भविष्यत् को विचारने लगी कि राजा का और मेरा संयोग नीति में कैसे रचा है । विचार करके देखा कि राजा का और मेरा मिलाप होने में अभी बहुत काल बाकी है, अवश्य मिलाप होगा और मेरे उपदेश से राजा जागेगा परन्तु यह सब बहुत काल उपरान्त होगा अभी इसके कषाय परिपक्व नहीं हुए इससे इसका मार्ग रोकना न चाहिये । निदान रानी पीर अपने घर आई और शय्या पर शयनकर बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त हुई । जब रात्रि व्यतीत हुई तब मन्त्रियों से कहने लगी कि राजा एक तीर्थ करने गया है और दर्शन करके फिर आवेगा, तुम अपने कार्य करते रहो । यह सुन मन्त्री अपनी चेष्टा में वर्तने लगे इसी प्रकार रानी ने आठ वर्ष पर्यन्त राज्य किया और प्रजा को सुख दिया । जैसे बागवान कमलों और क्यारियों को पालता है तैसे ही रानी ने प्रजा को पालकर सुख दिया । उधर राजा को आठ वर्ष तप करते बीते और उसके अंग दुर्बल हो गये और इधर रानीने राज्य किया पर जैसे भँवरा और ठौर हो तैसे ही समय व्यतीत हुआ । तब रानी ने विचार किया कि राजा अब मेरे वचनों का अधिकारी हुआ होगा क्योंकि अब उसका अन्तःकरण तप करके शुद्ध हुआ है इससे अब राजा को देखिये । निदान रानी वहाँ से उड़के आकाश को गई और इन्द्र के नन्दनवन को देख वहाँ के दिव्यपवन का स्पर्श हुआ तो उसके चित्त में आया कि मुझे भर्त्ता कब मिलेगा । फिर कहने लगी कि बड़ा आश्चर्य है, मैं तो सत्पद को प्राप्त हुई थी तो भी मेरा मन चलायमान हुआ है तो और जीवों की क्या वार्ता है । वहाँ से भी चली तो आगे कमल फूल देखकर कहने लगी कि मुझे भर्ता कब मिलेगा मैं तो कामातुर हुई हूँ । फिर मन में कहने लगी कि हे दुष्ट मन! तू तो सद्पद को प्राप्त हुआ था तेरा भर्ता आत्मा है अब तू मिथ्या पदार्थों की

www.tantrikastrologer.in

अभिलाषा क्यों करता है? मालूम होता है कि जबतक देह है तबतक देह के स्वभाव भी साथ रहते हैं इससे यह अवस्था प्राप्त हुई तभी मन चलायमान होता है इससे इतर जीवों की क्या वार्ता है । तब रानी मेघ, बिजली, पर्वत, नदियाँ, समुद्र और भयानक स्थानों को लाँघकर मन्दराचल पर्वत के पास पवन में पहुँची और देखने लगी कि मेरा भर्ता कहाँ है । समाधि में स्थित होकर उसने देखा कि अमुक स्थान में बैठा है, तप करके महा दुर्बल अंग हो गये हैं- और ऐसे स्थान में प्राप्त हुआ है जहाँ और जीव की गम नही, बड़ा आश्चर्य है कि महा वैताल की नाईं यह रात्रि को चला आया है । अज्ञान महादुष्ट है कि ऐसा राजा तप मे लगा है और स्वरूप के प्रमाद से जड़ है । अब ऐसा हो कि किसी प्रकार यह अपने स्वरूप को प्राप्त हो । परन्तु मेरे इस शरीर से इसको ज्ञान न उपजेगा, क्योंकि प्रथम तो उसको यह अभिमान होगा कि यह मेरी स्त्री है और फिर कहेगा कि मैंने इसी के निमित्त राज्य छोड़ा है और यह फिर मुझे दुःख देने आई है इससे मैं ब्रह्मचारी का शरीर धरूँ । ऐसा विचार करके उसने शीघ्र ही ब्रह्मचारी का शरीर धरा और हाथ में रुद्राक्ष की माला और कमण्डलु और गले में मृगछाला धारण किया । जैसे सदाशिव के मस्तक पर चन्द्रमा विराजता है तैसे ही सुन्दर विभूति लगा और श्वेत ही यज्ञोपवीत धारण कर पृथ्वी के मार्ग से राजा के निकट जा पहुँची । राजा उसे देखकर आगे से उठ खड़ा हुआ और नमस्कार कर चरणों पर फूल चढ़ाये । फिर अपने स्थान पर बैठकर कहने लगा, हे देवपुत्र! आज मेरे बड़े भाग हैं जो आपका दर्शन हुआ । कृपा करके कहिये कि आप किस लिये आये हैं? देवपुत्र बोले, हे राजन्! हम बड़े पर्वत देखते और तीर्थ करते आये हैं परन्तु जैसी भावना तुझमें देखी है तैसी किसी में नहीं देखी । तूने बड़ा तप किया है और तू इन्द्रियजित् दृष्टि आता है । मैं जानता हूँ कि तेरा तप खंग की धार सा तीक्ष्ण है इससे तू धन्य है और तुझे नमस्कार है । परन्तु हे राजन्! आत्मयोग के निमित्त भी कुछ तप किया है अथवा नहीं सो कह? तब राजा ने जो फूलों की माला देवपूजन के लिए रखी थी सो देवपूत्र के गले में डाली और पूजा करके कहा, हे देवपुत्र! तुम ऐसों का दर्शन दुर्लभ है और अतिथि का पूजन देवता से भी अधिक है । हे देवपुत्र! आपके अंग बहुत सुन्दर दृष्टि आते हैं । ऐसे ही मेरी स्त्री के भी अंग थे, नख से शिख पर्यन्त तुम्हारे वही अंग दृष्टि आते हैं परन्तु आप तो तपस्वी हैं और आप की मूर्ति शान्ति के लिये हुई है मैं कैसे कहूँ कि तुम वही हो । इससे हे देवपुत्र? आप किसके पुत्र हैं, यहाँ किस निमित्त आये हैं और कहाँ जावेंगे यह संशय मेरा निवृत्त कीजिये? तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! एक समय नारदमुनि सुमेरु पर्वत की कन्दरा में जहाँ आश्चर्य के देनेवाले वृक्ष और मञ्जरियाँ फूलों और फलों से पूर्ण थीं और ब्राह्मणों की कुटी बनी हुई थीं समाधि लगाके बैठे । वहाँ गंगा का प्रवाह चलता था और सिद्धों के सिवाय और जीवों की गम न थी इससे नारदमुनि वहाँ कुछ काल समाधि में स्थित रहे । जब समाधि से उतरे तब उन्होंने आभूषणों का शब्द सुना और मन में महाआश्चर्य माना कि यहाँ तो कोई नहीं आ सकता यह भूषणों का शब्द कहाँ से आया । तब उठकर देखने लगे कि गंगा का प्रवाह चला आता है और वहाँ उर्वशी आदिक महासुन्दर अप्सरा वस्त्रों को उतारे हुए स्नान करती हैं । जब उनको नारदजी ने देखा तो उनका विवेक जाता रहा और वीर्य निकल कर उनके पास एक सुन्दर बेल थी उसके पत्र पर स्थित हुआ । इतना सुनके शिखरध्वज ने कहा हे देवपुत्र ऐसे ब्रह्मवेत्ता और सर्वज्ञ मननशील संयुक्त नारदमुनि का वीर्य किस निमित्त गिरा देवपुत्र ने कहा- हे राजन्! जबतक शरीर है तबतक अज्ञानी और ज्ञानी के शरीरों का स्व भाव निवृत्त नहीं होता, परन्तु एक भेद है कि ज्ञानवान् को यदि दुःख प्राप्त होता है तो वह दुःख नहीं मानता और यदि सुख प्राप्त होता है तो सुख नहीं मानता और उससे हर्षवान् नहीं होता, और अज्ञानी को यदि सुख दुःख प्राप्त होते हैं तो वह हर्ष शोक करता है । जैसे श्वेत वस्त्र पर केशर

www.tantrik-astrologer.in

का रंग शौघ्र ही चढ़ जाता है तैसे ही अज्ञानी को दुःख सुख का रंग शीघ्र चढ़ जाता है और जैसे मोम के वस्त्रों को जल का स्पर्श नहीं होता तैसे ही ज्ञानवान् को दुःख सुख का स्पर्श नहीं होता । जिसके अन्तःकरणरूपी वस्त्र को ज्ञानरूपी मोम नहीं चढ़ा उसको दुःख सुखरूप जल स्पर्श कर जाता है । दुःख की और सुख की नाड़ी भिन्न-भिन्न हैं जब सुख की नाड़ी में जीव स्थित होता है तब कोई दुःख नहीं देखता और जब दुःख की नाड़ी में स्थित होता है तब सुख नहीं देखता । अज्ञानी को कोई दुःख का स्थान है और कोई सुख का स्थान है और अज्ञानी को एक आभासमात्र दिखाई देता है-बन्धवान् नहीं होता । जबतक अज्ञान का सम्बन्ध है तबतक दुःख निवृत्त नहीं होता । तब राजा ने कहा कि वीर्य जो गिरता है सो कैसे निवृत्त होता है? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! जब चित्त वासना से क्षोभवान् होता है तब नाड़ी भी क्षोभ करती है और अपने स्थानों को त्यागने लगती हैं, उसी अबस्था में वीर्यवाली नाड़ी से भी स्वाभाविक ही वीर्य नीचे को चला आता है । फिर राजा ने पूछा, हे देवपुत्र! स्वाभाविक किसे कहते हैं? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! आदि शुद्ध चैतन्य परमात्मा में जो फुरना हुआ है उस क्षणमात्र शक्ति के उत्थान से प्रपञ्च बन गया है इसमें आदि नीति हुई है कि यह घट है, यह पट है, यह अग्नि है, इसमें उष्णता है, यह जल है, इसमें शीतलता है, तैसे ही यह नीति है कि वीर्य ऊपर से नीचे को आता है । जैसे पर्वत से पत्थर गिरता है सो नीचे को चला आता है तैसे ही वीर्य भी नीचे को आता है । तब राजा ने प्रश्न किया कि हे देवपुत्र! जीव को दुःख सुख कैसे होता है और दुःख सुख का अभाव कैसे होता है? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! यह जीव कुण्डलिनी शक्ति में स्थित होकर दृश्य में जो चारों अन्तःकरण, इन्द्रियाँ और देह है उनमें अभिमान करके इनके दुःख से दुःखी और इनके सुख से सुखी होता है तो जैसा-जैसा आगे प्रतिबिम्ब होता है तैसा-तैसा दुःख सुख भासता है । जैसे शुद्धमणि में प्रतिबिम्ब पड़ता है । यह सब अज्ञान से होता है और ज्ञान से इसका नाश हो जाता है । जब ज्ञानरूप का आवरण करके आगे पटल होता है तब प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता । देहादिक के अभिमान से रहित होने को ज्ञान कहते हैं कि न देहादिक है और न मैं इनसे कुछ करता हूँ । जब ऐसे निश्चय हो तब दुःख सुख का भान नहीं होता क्योंकि संसार का दुःख सुख भावना में होता है, जब वासना से रहित हुआ तब दुःख सुख भी नष्ट हो जाते हैं । जैसे जब वृक्ष ही जल जाता है तब पत्र, फूल, फल कहाँ रहे, तैसे ही अज्ञानरूप वासना के दग्ध हुए दुख सुख कहाँ रहे? फिर राजा ने कहा, हे भगवन्! तुम्हारे वचन सुनते मैं तृप्त नहीं होता । जैसे मेघ का शब्द सुनते मोर तृप्त नहीं होता, इससे कहिये कि तुम्हारी उत्पत्ति कैसे हुई है? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! जो कोई प्रश्न करता है उसका बड़े निरादर नहीं करते; इससे तुम पूछते हो सो मैं कहता हूँ । हे राजर्षे! वह वीर्य नारदमुनि ने एक मटकी में रक्खा और उस पर दूध डाला । वह मटकी स्वर्णवत् थी जिसका उज्ज्वल चमत्कार था । उस मटकी को पूर्णकर वीर्य एक कोने की ओर किया और फिर मन्त्रों का उच्चार किया और आहुति देकर भले प्रकार पूजन किया । जब एक मास व्यतीत हुआ तब मटकी से बालक प्रकट हुआ-जैसे चन्द्रमा क्षीरसमुद्र से निकला है- उस बालक को लेकर नारद आकाश को उड़े और अपने पिता ब्रह्माजी के पास ले आये और नमस्कार किया । तब मुझको पितामह ने गोद में बैठा लिया और आशीर्वाद देकर कहा कि तू सर्वज्ञ होगा और शीघ्र ही अपने स्वरूप को प्राप्त होगा । कुम्भ से जो मैं उपजा था इसलिये उन्होंने मेरा नाम कुम्भल रखा । मैं नारदजी का पुत्र और ब्रह्माजी का पुत्र हूँ; सरस्वती मेरी माता है; गायत्री मेरी मौसी है और मुझे सर्वज्ञान है । तब राजा ने कहा, हे देवपुत्र! तुम सर्वज्ञ दृष्ट आते हो; तुम्हारे वचनों से मैं जानता हूँ । देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! जो तुमने पूछा सो मैंने कहा; अब कहो तुम कौन हो, क्या कर्म करते हो और यहाँ किस निमित्त आये? राजा ने कहा, हे

www.tantrik-astrologer.in

देवपुत्र! आज मेरे बड़े भाग उदय हुए हैं जो तुम्हारा दर्शन हुआ । तुम्हारा दर्शन बड़े भागों से प्राप्त होता है । यज्ञ और तप से भी तुम्हारा दर्शन श्रेष्ठ है । देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! अपना वृत्तान्त कहो राजा ने कहा, हे देवपुत्र! मैं राजा हूँ; शिखरध्वज मेरा नाम है । संसार दुःखदायक भासित हुआ और बारम्बार जन्म और मरण इसमें दृढ़ आता है इससे राज्य का त्यागकर यहाँ पर मैं तप करने आया हूँ । तुम त्रिकाल हो और जानते हो तथापि तुम्हारे पूछने से कुछ कहना चाहिये । मैं त्रिकाल संध्या और तप करता हूँ तो भी मुझे शान्ति नहीं हुई; इसलिये जिससे मेरे दुःख निवृत्त हों वही उपाय कहिये ।हे देवपुत्र!मैंने बहुत तीर्थ किये हैं और बहुत देश और स्थान फिरा हूँ पर अब इसी बन में आन बैठा हूँ तो भी मुझे शान्ति नहीं । तब देवपुत्र ने कहा, हे राजऋषि! तूने राज्य का तो त्याग किया पर तप रूपी गढ़े में गिर पड़ा; यह तूने क्या किया? जैसे पृथ्वी का कृमि फिर पृथ्वी में ही रहता है तैसे ही तू एक गढ़े को त्यागकर दूसरे गढ़े में आ पड़ा है और जिस निमित्त राज्य का त्याग किया उसको न जाना । यहाँ आकर तूने एक लाठी मृगछाला और फूल रक्खे हैं इनसे तो शान्ति नहीं होती । इससे अपने स्वरूप में जाग; जब स्वरूप में जागेगा तब सब दुःख निवृत्त होंगे । इसी पर एक समय ब्रह्माजी से मैंने प्रश्न किया था कि हे पितामहजी! कर्म श्रेष्ठ है अथवा ज्ञान श्रेष्ठ है- दोनों में कौन श्रेष्ठ है? जो मुझको कर्तव्य हो सो कहो । तब पितामह ने कहा कि ज्ञान के पाये से कोई दुःख नहीं रहता और सब आनन्दों का आनन्द ज्ञान है । अज्ञानी को कर्म श्रेष्ठ है; क्योंकि वे पापकर्म करेंगे तो नरक को प्राप्त होंगे, इससे तप और दान करने से स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती तो भी अज्ञानी को कर्म ही श्रेष्ठ है कि नरक न भोगकर स्वर्ग में रहे । जैसे कम्बल से रेशम का न पाइये तो कम्बल ही भला है; तैसे ही ज्ञान रेशम की नाईं है और तप कर्म कम्बल के समान है-कर्म से शान्ति नहीं होती । इससे हे राजन्! तुम क्यों इस गढ़े में पड़े हो? आगे तू राज्यवासी था और अब वनवासी हुआ; यह क्या किया कि मूर्खता के वश अज्ञान में पड़ा रहा । जबतक तुझे क्रिया का भान होता है कि `मैं यह करूँ' तबतक प्रमाद है इससे दुःख निवृत्त न होगा । निर्वासनिक होकर अपने स्वरूप में जाग । निर्वासनिक होना ही मुक्ति है और वासना-सहित ही बन्धन है । निर्वा सनिक होना ही पुरुष प्रयत्न है । जब तक वासना सहित है तब तक अज्ञानी है जब निर्वा सनिक हो तब ज्ञेयरूप हो । सदा ज्ञेय की भावना करनेवाले को निर्वासनिक कहते हैं और ज्ञेय आत्मस्वरूप को कहते है; उसको जानकर फिर कोई इच्छा नहीं रहती । केवल चिन्मात्र पद में स्थित होने का नाम ज्ञेय है । जो जानने योग्य है सो जाना तब और वासना नहीं रहती, केवल स्वच्छ आपही होता है । हे राजन्! तुझे अपने स्वरूप को ही जानना था सो तू और जञ्जाल में किस निमित्त पड़ा है? आत्मज्ञान बिना और अनेक यत्न करो तो भी शान्ति न प्राप्त होगी । जैसे पवन से रहित वृक्ष शान्तरूप होता है और जब पवन होता है तब क्षोभ को प्राप्त होता है तैसे ही जब वासना निवृत्त होगी तब शान्तपद प्राप्त होगा और कोई क्षोभ न रहेगा । जब ऐसे देवपुत्र ने कहा तब राजा ने कहा, हे भगवन्! तुम मेरे पिता हो, तुमहीं गुरु हो और तुमही कृतार्थ करनेवाले हो । मैंने वासना करके बड़ा दुःख पाया है जैसे किसी वृक्ष के पत्र, डाल, फूल सूख जावें और अकेला ठूँठ रह जावे तैसे ही ज्ञान बिना मैं भी ठूँठसा हो रहा हूँ इसलिये कृपा करके मुझे शान्ति को प्राप्त करो । देव पुत्र ने कहा, हे राजन्! तुझे त्याग करके सन्तों का संग करना चाहिये था और यह प्रश्न करना चाहिये था कि बन्ध क्या है और मोक्ष क्या है? मैं क्या हूँ और यह संसार क्या है? संसार की उत्पत्ति किससे होती है और लीन कैसे होता है? तूने यह क्या किया कि सन्तों बिना ठूँठ वन को आकर सेवन किया । अब तू सन्त जनों को प्राप्त होकर निर्वासनिक हो । ऐसे ब्रह्मादिक ने भी कहा है कि जब निर्वानिक होता है तब सुखी होता है । फिर राजा ने कहा, हे

www.tantrikastrologer.in

भगवन्! तुमहीं सन्त हो और तुमहीं मेरे गुरु और पिता हो, जिस प्रकार मुझे शान्ति हो सो कहिये । तब कुम्भज ने कहा, हे राजन्! मैं तुझे उपदेश करता हूँ तू उसे हृदय में धारण कर और जो तू उसे हृदय में न धारेगा तो मेरे कहने से क्या होता है? जैसे डाल पर कौवा हो और शब्द भी सुने तो भी अपने कौवे के स्वभाव को नहीं छोड़ता, तैसे ही जो तू भी कौवे की नाईं हो तो मेरे कहने का क्या प्रयोजन है? जैसे तोते को सिखाते हैं तो वह सीखता है तैसे तुम भी हो जावो । शिखर ध्वज ने कहा, हे भगवन् जो तुम आज्ञा करोगे सो मैं करूँगा जैसे शास्त्र और वेद के कहे कर्म करता हूँ तैसे ही तुम्हारा कहना करूँगा । यह मेरा नेम है जो तुम आज्ञा करोगे सो मैं करूँगा । तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! प्रथमतो तू ऐसे निश्चय कर कि मेरा कल्याण इन वचनों से होवेगा और फिर ऐसे जान कि जो पिता पुत्र को कहता है तो शुभ ही कहता है । मैं जो तुझसे कहुँगा सो शुभ ही कहूँगा और तेरा कल्याण होगा । इससे निश्चय जान कि इन वचनों से मेरा कल्याण होगा । एक आख्यान आगे व्यतीत हुआ है सो सुन । एक पण्डित धन और गुणों से संपन्न था । वह सर्वदा चिन्तामणि के पाने की इच्छा करता और इसके लिये जैसे शास्त्र में उपाय कहे हैं तैसे ही करता था । जब कुछ काल व्यतीत भया तब जैसे चन्द्रमा का प्रकाश होता है तैसे ही प्रकाशवान् चिन्तामणि उसे प्राप्त हुई और उसने उसे ऐसे निकट जाना कि हाथ से उठा लीजिये । जैसे उदयाचल पर्वत के निकट चन्द्रमा उदय होता है तैसे ही चिन्तामणि जब निकट आ प्राप्त हुई तब पण्डित के मन में विचार हुआ कि यह चिन्तामणि है अथवा कुछ और है, जो चिन्तामणि हो तो उठा लूँ और जो चिन्तामणि न हो तो किस निमित्त पकड़ूँ? फिर कहे कि उठा लेता हूँ मणि ही होगी फिर कहे कि यह मणि नहीं है, क्योंकि मणि तो बड़े यत्न से प्राप्त होती है, मुझे सुख से क्यों प्राप्त होगी । इससे विदित होता है कि चिन्तामणि नहीं । जो सुख से प्राप्त होती तो सब लोग धनी हो जाते । जब ऐसे संकल्प से पण्डित विचार करने लगा और इसी से उसका चित्त आवरण हुआ तब मणि छिप गई क्योंकि जो सिद्धि हैं उनका मान और आदर न करिये तो उलटा शाप देती हैं । जिस वस्तु का कोई आवाहन करता है और उसका पूजन न करे तो वह त्याग जाती है । तब वह बड़े दुःख को प्राप्त हुआ कि चिन्तामणि मेरे पास से चली गई । निदान वह फिर यत्न करने लगा तब काँच की मणि हँसी करके उसके आगे आ पड़ी और उसको देखकर वह कहने लगा कि यह चिन्तामणि है अबोध के वश से उसको उठाकर अपने घर ले आया और अबोध के वश से उसको चिन्तामणि जानता भया । जैसे मोह से जीव असत् को सत् जानता है और रस्सी को सर्प जानता है और जैसे दृष्टिदोष से दो चन्द्रमा देखता है और शत्रु को मित्र और विष को अमृतरूप जानता है, तैसे ही उसने काँच को चिन्तामणि जान जो कुछ अपना धन था सो लुटा दिया और कुटुम्ब को त्यागकर कहने लगा कि मुझे चिन्तामणि प्राप्त हुई है, अब कुटुम्ब से क्या प्रयोजन है? निदान घर से निकलकर वन में गया और वहाँ उसने बड़े दुःख पाये, क्योंकि काँच की मणि से कुछ प्रयोजन सिद्ध न हुआ ।   तैसे ही हे राजन्! जो विद्यमान वस्तु हो उसको मूर्ख त्यागते हैं और उसका माहात्म्य नहीं जानते और नहीं पाते ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिन्तामणिवृत्तान्त वर्णनन्नाम नवषष्टितमस्सर्गः ।।69।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

हस्तिआख्यानवर्णन

देवपुत्र बोले, हे राजन्! इसी प्रकार एक और आख्यान कहता हूँ सो भी सुनो मन्दराचल पर्वत के वन में सब हाथियों का राजा एक हाथी रहता था वह मानों स्वयं मन्दराचल पर्वत था जिसको अगस्त्यमुनि ने रोका था । उसके बड़े दाँत इन्द्र के वज्र की नाईं तीक्ष्ण थे और प्रलयकाल की बड़वाग्नि के समान वह प्रकाशवान था । वह ऐसा बलवान् था कि सुमेरु पर्वत को दाँतों से उठावे । निदान उस हस्ती को एक महावत ने जैसे बलि राजा को विष्णु भगवान् छल करके बाँधा था, लोहे की जञ्जीर से बाँधा और आप पास के वृक्ष पर चढ़ बैठा कि कूदकर हाथी के ऊपर चढ़ बैठूँ । वह हाथी जञ्जीर में महाकष्ट को प्राप्त हुआ और इतना दुःख पाया जिसका वर्णन नहीं हो सकता । तब हाथी के मन में विचार उपजा कि जो अब मैं बल से जञ्जीर न तोड़ूँगा तो क्यों छूटूँगा, इसलिये उस जञ्जीर को बल करके तोड़ दिया और वृक्ष पर जो महावत बैठा था सो गिरके हाथी के चरणों के आगे आ पड़ा और भय को प्राप्त हुआ । जैसे वृक्ष का फल पवन से गिर पड़ता है तैसे ही महावत भय से गिर पड़ा । जब इस प्रकार महावत गिरा तब हाथी ने विचार किया कि यह मृतक समान है इस मुये को क्या मारना है? यद्यपि वह मेरा शत्रु है तो भी मैं इसे नहीं मारता, इसके मारने से मेरा क्या पुरुषार्थ सिद्ध होगा? इसलिये जैसे स्वर्ग के द्वारे तोड़ कर दैत्य प्रवेश करते हैं तैसे ही जञ्जीर तोड़कर वह हाथी वन में गया और महावत हाथी को गया देख उठ बैठा और अपने स्वभाव में स्थित हुआ ।वह फिर हाथी के पीछे चला और हाथी को ढूँढ़ लिया । जैसे चन्द्रमा को राहु खोज लेता है तैसे ही वन में हाथी को खोज लिया तो क्या देखा कि वह वृक्ष के नीचे सोया पड़ा है । जैसे संग्राम को जीतकर शूरमा निश्चिन्त सोता है तैसे ही हाथी को निश्चिन्त सोया पड़ा देख महावत ने विचार किया कि इसको वश करना चाहिये । यह विचार उसने यह उपाय किया कि वन के चारों ओर खाईं बनाई और खाई के ऊपर कुछ तृण और घास डाला जैसे शरत्काल के आकाश में बादल देखनेमात्र होता है तैसे ही तृण और घास खाईं के ऊपर देखनेमात्र दृष्ट आती थी । निदान जब किसी समय हाथी उठकर चला और खाई के बीच गिर पड़ा तब महावत ने हाथी के निकट आ उसे जञ्जीरों में बाँधा और वह हाथी बड़े दुःख को प्राप्त हुआ । जो तप करके वन में दुःख पाता है उसने भविष्यत् का विचार नहीं किया । अज्ञानी को भविष्यत् का विचार नहीं होता इसी से वह दुःख पाता है । हे राजन्! यह जो मणि और हाथी के आख्यान तुझे मैंने सुनाये हैं उनको जब तू समझेगा तब आगे मैं उपदेश करूँगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हस्तिआख्यानवर्णनन्नाम सप्ततितमस्सर्गः ।।70

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

हस्तीवृत्तान्तवर्णन

इतना कह कर वशिष्टजी बोले, हे रामजी! जब देवपुत्र ने ऐसे कहा तब राजा बोला, हे देवपुत्र, यह दो आख्यान जो तुमने कहे हैं सो तुम्ही जानते हो, मैं तो कुछ नहीं समझा इससे तुम्हीं कहो। देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! तू शास्त्र के अर्थ में तो बहुत चतुर है और सर्व अर्थों का ज्ञाता है परन्तु स्वरूप में तुझे स्थिति नहीं है, इससे जो वचन मैं कहता हूँ उसे बुद्धि से ग्रहण कर। हस्ती क्या है और चिन्तामणि क्या है? प्रथम जो तूने सर्वत्याग किया था सो चिन्तामणि थी और उसके निकट प्राप्त होकर तू सुखी हुआ था। यदि उसको तू अपने पास रखता तो सब दुःख निवृत्त हो जाते, पर मणि का तो तूने निरादर किया जो उसको त्यागा और काँच की मणि तपक्रिया को प्राप्त हुआ इसलिये दरिद्री ही रहा। हे राजन्! सर्वत्यागरूपी चिन्तामणि थी और इस क्रिया का आरम्भ काँच की मणि है उसको तूने ग्रहण किया है इससे दरिद्री की निवृत्ति नहीं-होती दुःखी ही रहता है। हे राजन्! सर्वत्याग तूने नहीं किया और जो किया भी था परन्तु कुछ शेष रह गया और वह रहकर फिर फैल गया। जैसे बड़ा बादल वायु से क्षीण होता है और सूक्ष्म रह जाता है जो पवन के लगे से फिर विस्तार को पाता है और सूर्य को छिपा लेता है। वह बादल क्या है, सूर्य क्या है और थोड़ा रहना क्या है सो भी सुन। स्त्रियों और कुटुम्ब आदि को त्यागकर इनमें अहंकार करना सोई बड़ा बादल है। वैराग्यरूपी पवन से तूने राज्य और कुटुम्ब का अहंकार त्याग किया पर देहादिक में अहंकार सूक्ष्म बादल रह गया था सो फिर वृद्ध हो गया जो अनात्म अभिमान करके क्रिया को आरम्भ किया इससे आत्मारूपी सूर्य जो अपना आप है सो अहंकाररूपी बादल से ढप गया और ज्ञानरूपी चिन्ता मणि अज्ञानरूपी काँच की मणि से छिप गई। जब ज्ञान से आत्मा को जानेगा तब आत्मा प्रकाशेगा, अन्यथा न भासेगा। जैसे कोई पुरुष घोड़े पर चढ़के दौड़ाता है तो उसकी वृत्ति घोड़े में होती है तैसे ही जिस पुरुष का आत्मा में दृढ़ निश्चय होता है उसको आत्मा से कुछ भिन्न नहीं भासता। हे राजन्! आत्मा का पाना सुगम है जो सुख से ही मिलता है और बड़े आनन्द की प्राप्ति होती है। तपादिक क्रिया कष्ट से सिद्ध होती है स्वरूप सुख की प्राप्ति नहीं होती। हे राजन्। मैं जानता हूँ कि तू मूर्ख नहीं बल्कि शास्त्रों का ज्ञाता और बहुत चतुर है तथापि तुझे स्वरूप में स्थिति नहीं जैसे आकाश में पत्थर नहीं ठहरता। इससे मैं उपदेश करता हूँ उसको ग्रहण कर तो तेरे दुःख निवृत्त हो जावेंगे। हे राजन्! यह सबसे श्रेष्ठ ज्ञान कहा है और कहता हूँ। तूने जो तपक्रिया का आरम्भ किया है और उसका जो फल जाना है उस ज्ञान से यह श्रेष्ठ ज्ञान कहा है और कहता हूँ उससे तेरा भ्रम निवृत्त हो जावेगा। हे राजन्! चिन्तामणि का सम्पूर्ण तात्पर्य तुझसे कहा, अब हाथी का वृत्तान्त जो आश्चर्यरूप है सो भी सुन जिस के समझने से अज्ञान निवृत्त हो जावेगा। मन्दराचल का हाथी तो तू है और महावत तेरी अज्ञानता है। इस अज्ञानरूपी महावत ने तुझे बाँधा था और तू आशारूपी जञ्जीरों से बँधा था। और जञ्जीरें घिस जाती हैं पर आशारूपी फाँसी नहीं घटती यह दिन दिन बढ़ती ही जाती है। हे राजन् आशारूपी फाँसी से तू महादुःखी था। हस्ती के जो बड़े दन्त थे जिनसे संकलों को तोड़ा था सो विवेक और वैराग्य था जो तूने विचार किया कि मैं बल करके छूँटू। राज्य, कुटुम्ब और पृथ्वी का त्यागकर जब तूने उस फाँसी को काटा तब आशारूपी रस्से कटे तो अज्ञानरूपी महावत भय को प्राप्त हुआ और तेरे चरणों के तले आ पड़ा। जैसे वृक्ष के ऊपर वैताल रहता है और कोई वृक्ष को काटने आता है तब वैताल भय को प्राप्त होता है तैसे ही तूने वैराग्य और विवेकरूपी दाँतों से आशा के फास काटे तब अज्ञान रूपी महावत गिरा और तूने एक घाव लगाया परन्तु मार न डाला इससे महावत तुझसे भाग गया जैसे वृक्ष पर

www.tantrik-astrologer.in

वैताल रहता है और वृक्ष को कोई काटने लगता है तब वैताल भाग जाता है । हे राजन्! तैसे ही वृक्ष को तूने वैराग्यरूपी शस्त्र करके काटा तब अज्ञानरूपी वैताल भागा था मूर्खता से उसको तूने न मारा बल्कि उसको छोड़कर वन में गया । जब तू वन में आया तब अज्ञानरूपी महावत तेरे पीछे चला आया और तेरे चारों ओर खोदी और तपादिक क्रिया आरम्भकर तू उस खाईं में गिर पड़ा और महादुःख को प्राप्त हुआ । तब उसने तुझे जञ्जीरों से फिर बाँधा और बँधा हुआ तू अबतक दुःख पाता है । अनात्म अभिमान से तूने यहाँ तपादिक क्रिया का आरम्भ किया है । ऐसी खाईं में तू पड़ा है । हे राजन्! तू जानकर खाईं में नहीं पड़ा, खाईं के ऊपर घास और तृण पड़ा था उस छल से तू गिर पड़ा है सो छल और तृण क्या है सो भी तू सुन । प्रथम जो अज्ञानरूपी शत्रु को तूने न मारा और जञ्जीरों के भय से भागा कि वन मेरा कल्याण करेगा । सन्तों और शास्त्रों के वचनों को न जाना कि तेरे दुःख निवृत्त करेंगे और उन वचनरूपी खाईं पर तृणादिक था इसमें मूर्खता करके तू गिरा।जैसे बलि राजा पाताल में छल से बाँधा हुआ है तैसे ही तूने भविष्यत् का विचार न किया कि अज्ञानरूपी शत्रु जो रहा है वह मेरा नाश करेगा । उस विचार बिना तू फिर दुःखी हुआ । सब त्याग तो किया परन्तु ऐसे न जाना कि मैं अक्रिय हूँ, इस क्रिया का आरंभ काहे को करता हूँ । इसी से तू फिर फाँसी से बँधा है । हे राजन्! जो पुरुष इस फाँसी से मुक्त हुआ है वह मुक्त है और जिसका चित्त अनात्म अभिमान से बँधा है कि यह मुझे प्राप्त हो उससे वह दुःख पाता है । जिस पुरुष ने वैराग्य और विवेकरूपी दाँतों से आशारूपी जञ्जीर को नहीं काटा वह कदाचित् सुख नहीं पाता । विवेक से वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्य से विवेक होता है । विवेक सत्य के जानने और असत् देहादिक के असत्य जानने को कहते हैं । जब ऐसे जाना तब असत् की ओर भावना नहीं जाती सो वैराग्य हुआ । वैराग्य से विवेक उपजता है और विवेक से वैराग्य उपजता है इन विवेक और वैराग्यरूपी दाँतों से आशारूपी जञ्जीर को तोड़ । हे राजन्! यह हस्ती का वृत्तान्त जो तुझसे कहा है इसके विचार किये से तेरा मोह निवृत्त हो जावेगा । हे राजन्! वह हाथी बड़ा बली था और महावत कम बली था । उस अज्ञानरूपी महावत को मूर्खता करके तूने न मारा उससे दुःख पाता है । अब तू वैराग्य और विवेकरूपी दाँतों से आशारूपी फाँसी को तोड़ तब दुःख सब मिट जावेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हस्तीवृत्तान्तवर्णनन्नामैकसप्ततितमस्सर्गः ।। 71।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

शिखरध्वजसर्वत्याग वर्णन

देवपुत्र बोले, हे राजन्! ब्रह्मवेत्ता और सर्वज्ञानियों में श्रेष्ठा, साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा और सत्यवादिनी तेरी स्त्री जो चुड़ाला थी उसने तुझे उपदेश किया था पर तूने उसके वचनों का किस निमित्त निरादर किया? मैं तो सब जानता हूँ, क्योंकि त्रिकालज्ञ हूँ, तो भी तू अपने मुख से कह! एक तो यह मूर्खता की कि उपदेश न अंगीकार किया और दूसरी यह मूर्खता की कि सर्वत्याग न करके फिर वन अंगीकार किया । जो सर्वत्याग करता तो सर्व दुःख मिट जाते । जब ऐसे देवपुत्र ने कहा, तब राजा ने कहा, हे देवपुत्र! मैंने तो स्त्री, पृथ्वी, मन्दिर, हाथी इत्यादिक ऐश्वर्य और कुटुम्ब को त्याग किया है, आप कैसे कहते हैं कि त्याग नहीं किया? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! तूने क्या त्यागा है? राज्य में तेरा क्या था? जैसे ऐश्वर्य आगे था तैसे ही अब भी है और स्त्रियाँ भी जैसे और मनुष्य थे तैसे ही थीं, पृथ्वी, मन्दिर और हस्ती जैसे आगे थे तैसे ही अब भी हैं । उनमें तेरा क्या था जो त्याग किया? हे राजन्! सर्वत्याग तैने अब भी नहीं किया । जो तेरा हो उसको तू त्याग कर कि निर्दुःख पद को प्राप्त हो । इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार देवपुत्र ने कहा– तब शूरवीर जो इन्द्रियजित् राजा था सो मन में विचारने लगा कि यह वन मेरा है और वृक्ष फूल,फल मेरे हैं इनका त्याग करूँ । ऐसा विचार कर बोला,हे देवपुत्र! वन,वृक्ष फूल और फल जो मेरे थे उनका भी मैंने त्याग किया अब तो सर्वत्याग हुआ? तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! अब भी सर्वत्याग नहीं हुआ, क्योंकि वन, वृक्ष, फूल और फल तुझसे आगे भी थे इनमें तेरा क्या है? जो तेरा हो उसको त्याग तब सुखी होगा । हे रामजी! जब इस प्रकार देवपुत्र ने कहा तब राजा ने मन में विचारा कि मेरी जलपान की बावली और बगीचे हैं इनका त्याग करूँ तब सर्वत्याग सिद्ध हो और कहा, हे भगवन्! तेरी यह बावली और बगीचे हैं उनका भी मैंने त्याग किया, अब तो मेरा सर्वत्याग हुआ? तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन् सर्वत्याग अब भी नहीं हुआ । जो तेरा है उसको जब त्यागेगा तब शान्तपद को प्राप्त होगा । हे रामजी! जब इस प्रकार देवपुत्र ने कहा तब राजा विचारने लगा कि अब मेरी मृगछाला और कुटी है उसका भी त्याग करूँ । ऐसे विचारकर बोला कि हे देवपुत्र मेरे पास एक मृगछाला और एक कुटी है उसको भी मैंने त्याग किया अब तो सर्वत्यागी हुआ तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! मृगछाला में तेरा क्या है यह तो मृग की त्वचा है और कुटी में तेरा क्या है यह तो मिट्टी और शिला की बनी है इससे तो सर्वत्याग सिद्ध नहीं होता? जो कुछ तेरा है उसको त्यागेगा तब सर्वत्याग होगा और तभी तू सब दुःखों से छूट जावेगा । हे रामजी! जब ऐसे कुम्भज ने कहा तब राजा ने मन में विचार किया कि अब मेरा एक कमण्डलु, एक माला और एक लाठी है इसका भी त्याग करूँ । ऐसे विचारकर राजा शान्ति के लिये बोला, हे देवपुत्र! मेरी लाठी, कमण्डलु और एक माला है उसका भी मैंने त्याग किया, अब तो मैं सर्वत्यागी हुआ? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! कमण्डलु में तेरा क्या है, कमण्डलु तो वन का तुम्बा है उसमें तेरा कुछ नहीं, लाठी भी वन के बाँस की है और माला भी काष्ठ की है उनमें तेरा क्या है? जो कुछ तेरा है उसका त्यागकर । जब तू उसका त्याग करेगा तब दुःख से रहित हो जावेगा । हे रामजी! जब इस प्रकार कुम्भज ने कहा तब राजा शिखरध्वज ने मन में विचारा कि अब मेरा क्या रह गया तब देखा कि एक आसन और वासन हैं जिसमें फूल और फल रखते हैं; अब इनका भी त्याग करूँ । तब राजा ने कहा, हे भगवन्! आसन और वासन मेरे पास रह गये हैं इनका भी मैं त्याग करता हूँ; अब तो सर्वत्यागी हुआ? तब कुम्भज ने कहा, हे राजन्! अब भी सर्वत्याग नहीं हुआ । आसन तो भेड़ की ऊन का है और वासन मृत्तिका के हैं; इनमें तेरा कुछ नहीं । जो कुछ तेरा है उसका त्याग कर तब सर्वत्याग होवे और तू दुःख से निवृत्त हो । हे रामजी! जब इस प्रकार कुम्भज ने

www.tantrik-astrologer.in

कहा तब राजा उठ खड़ा हुआ और वन की लकड़ी इकट्ठी करके उनमें आग लगाई । जब बड़ी अग्नि लगी तब लाठी को हाथ में लेकर कहने लगा, हे लाठी! मैं तेरे साथ बहुत देशों मे फिरा हूँ परन्तु तूने मेरे साथ कुछ उपकार न किया; अब मैं कुम्भज मुनि की कृपा से तरूँगा, तुझे नमस्कार है । ऐसे कहकर लाठी को अग्नि में डाल दिया । फिर मृगछाला को हाथ में लेकर कहा, हे मृग की त्वचा! बहुत काल मैं तेरे ऊपर बैठा हूँ परन्तु तूने कुछ उपकार न किया; अब कुम्भज मुनि की कृपा से मैं तरूँगा; तुझे नमस्कार है ।ऐसे कहकर मृगछाला को भी अग्नि में डाल दिया । फिर कमण्डलु को लेकर कहने लगा हे कमण्डलु! तू धन्य है कि मैं ने तुझे धारण किया और तूने मेरे जल को धारा । तूने मुझसे गुणगोप नहीं किया तो भी कमण्डलु की जैसी प्रवृत्ति त्यागिनी है तैसे ही निवृत्ति की कल्पना भी त्यागनी है; इससे तुझे नमस्कार है; तुम जावो । ऐसे कहकर कमण्डलु भी अग्नि में जला दिया । फिर माला को हाथ में लेकर कहने लगा, हे माले! तेरे दाने जो मैंने घुमाये हैं सो मानों अपने जन्म गिने हैं । तेरे सम्बन्ध से जाप किया है और दिशा विदिशा गया हूँ, अब तुझको नमस्कार है ऐसे कहकर माला को भी अग्नि में डाल दिया । इसी प्रकार फूल, फल कुटी और आसन सब जला दिये तब बड़ी अग्नि जगी और बड़ा प्रकाश हुआ । जैसे सुमेर पर्वत के पास सूर्य चढ़ें और मणि का भी चमत्कार हो तो बड़ा प्रकाश होता है तैसे ही बड़ी अग्नि लगी- और राजा ने सम्पूर्ण सामग्री का त्याग किया जैसे पके फल को वृक्ष त्यागता है और जैसे पवन चलने से ठहरता है तब धूलि से रहित होता है तैसे ही राजा सम्पूर्ण सामग्री को त्याग निर्विघ्न हुआ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजसर्वत्याग वर्णनन्नाम द्विसप्ततितमस्सर्गः ||72||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

चित्तत्याग वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! निदान सम्पूर्ण सामग्री जलकर भस्म हो गई । जैसे सदाशिव के गणों ने दक्ष प्रजापति के यज्ञ को स्वाहा कर दिया था तैसे ही जितनी कुछ सामग्री थी सो सब स्वाहा हो गई और वह वन बड़ा प्रज्वलित हुआ । जितने वृक्ष के रहनेवाले पक्षी थे सो भाग गये और मृग, पशु जो आहार करते व जुगाली करते थे सो सब भाग गये । जैसे पुर में आग लगे से पुरवासी भाग जावें तैसे ही सब भाग गये; तब राजा ने मन में विचारा कि अब कुम्भज की कृपा से मैं बड़े आनन्द को प्राप्त हुआ और अब सब मेरे दुःख मिट गये । जो कुछ वस्तु मन के संकल्प से रची थी सो सब जला दी अब उसका न मुझे हर्ष है न उसका शोक है । ये सब दुःख ममत्व से होते हैं सो मेरा ममत्व अब किसी से नहीं रहा इससे कोई दुःख भी नहीं । अब मैं ज्ञानवान् भया हूँ, अब मेरी जय है, क्योंकि अब निर्मल होकर सबका मैंने त्याग किया है । ऐसा विचार करके राजा उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर बोला, हे देवपुत्र! अब तो मैंने सबका त्याग किया, क्योंकि आकाश मेरे वस्त्र हैं और पृथ्वी मेरी शय्या है । जब राजा ने ऐसे कहा तब कुंभज मुनि ने कहा, हे राजन्! अब भी सर्वत्याग नहीं हुआ । जो तेरा है उसका त्याग कर कि सब दुख तेरे निवृत्त हो जावें । फिर राजा ने कहा, हे भगवन्! अब और मेरे पास कुछ नहीं रहा, नंगा होकर तुम्हारे आगे खड़ा हूँ; अब एक रक्त माँस की देह इन्द्रियों को धारनेवाली है जो कहो तो इसका भी त्याग करूँ पर्वत पर जाकर डाल दूँ? ऐसे कहकर राजा पर्वत को दौड़ा पर कुंभज मुनि ने रोका और कहा, हे राजन्! ऐसे पुण्यवान् देह को क्यों त्यागता है? इसके त्यागे से सर्वत्याग नहीं होता! जिसके त्याग ने से सर्वत्याग हो उसका त्याग कर । इस देह में क्या दूषण है? वृक्ष में फूल फल होते हैं और जब वायु चलती है तब गिरते हैं, सो फूल फल गिरने का कारण वायु है, वृक्ष में दूषण कुछ नहीं, तैसे ही देह में कुछ दूषण नहीं । देह को पालनेवाला जो अभिमान है उसका त्याग करो तो सर्वत्याग सिद्ध हो देह तो जड़ है जो कुछ इसको देता है वही लेता है आगे से बोलता नहीं, जड़ है इसके त्यागे क्या सिद्ध होता है? जैसे पवन से वृक्ष हिलता है और भूकम्प से पर्वत काँपते हैं, तैसे ही देह आप कुछ नहीं करती, और की प्रेरी चेष्टा करती है । जैसे पवन से समुद्र के तरंग तृणों को जहाँ ले जाते हैं तहाँ वे चले जाते हैं तैसे ही देह आपसे कुछ नहीं करती, इसका जो प्रेरणेवाला है उसके बल से यह चेष्टा करती है इससे देह के प्रेरणेवाले का त्याग कर तो सुखी हो । हे राजन्! जिससे सर्व है, जिसमें सर्व शब्द हैं और जो सर्व ओर से त्यागने योग्य है उसका त्याग करो । राजा ने पूछा, हे भगवन्! वह कौन है जो सर्व है और जिसमें सर्व शब्द है और जो सर्व ओर से त्यागने योग्य है? हे तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ! जिसके त्यागे से जरा मृत्यु नष्ट हो जावे सो कहिये । तब कुम्भज ने कहा, हे राजन्! जिसका नाम चित्त (आकार) है उसका त्याग करो और बाहर जो नाना प्रकार के आकार चित्त ही से दृष्टि आते हैं, इससे चित्त का ही त्याग करो । हे राजन! जैसे सर्प बिल में बैठा हो तो बिल का कुछ दूषण नहीं विष सर्प में है जिससे वह डसता है इस लिये उसके नाश करने का उपाय करो और सर्व शब्द भी इस चित्त में ही है । आत्मा तो चिन्मात्र है उसमें न एक कहना है और न द्वैत कहना है सब ओर से इसी चित्त का त्याग करना योग्य है । जब इस चित्त का त्याग करोगे तब त्यागरूपी अमृत से अमर हो जावोगे और जरा मृत्यु से रहित होगे जो चित्तका त्याग न करोगे तो फिर देह धारणकर दुःख भोगोगे । जैसे एक क्षेत्र में अनेक दाने उत्पन्न होते हैं और जब क्षेत्र ही जल जाता है तब अन्न नहीं उपजता, तैसे ही यह जो देह और जरा मृत्यु दुःख संसार है इनका बीज चित्त ही है । जैसे अनेक दानों का कारण क्षेत्र है, तैसे ही असंख्य संसार के दुःख का कारण चित्त है, इससे हे राजन्! चित्त का त्याग कर जब इसका त्याग करेगा तब

www.tantrik-astrologer.in

सुखी होगा । हे राजन! जिसने सर्वत्याग किया है वह सुखी हुआ है । जैसे आकाश सब पदार्थों से रहित है, किसी का स्पर्श नहीं करता और सबसे बड़ा और सुखरूप है और सब पदार्थों के नष्ट होने पर भी ज्यों का त्यों रहता है, तैसे ही हे राजन्! तुम भी सर्वत्यागी रहो । राज, देह और कुटुम्ब और गृहस्थ आदिक जो आश्रम हैं सो सब चित्त ने कल्पे हैं । जो एक का त्याग नहीं होता तो कुछ नहीं त्यागा । जब चित्त का त्याग करो तब सर्वत्याग हो । हे राजन्! यह धर्म, वैराग्य और ऐश्वर्य तीनों चित्त के कल्पे हुए हैं । जब चित्त पुण्य क्रिया में लगता है तब पुण्य ही प्राप्त होता है और जब पापक्रिया में लगता है तब पाप ही प्राप्त होकर अधर्म और दरिद्र होता है जब पुण्य का फल उदय होता है तब सुख प्राप्त होता है और जब पाप का फल उदय होता है तब दुःख प्राप्त होता है इससे जन्ममरण के दुःख नहीं मिटते । जब चित्त का त्याग होता है तब सब दुःख नष्ट हो जाते हैं । हे राजन् जो पुरुष किसी वस्तु को नहीं चाहता उसकी बहुत पूजा होती है और जो कहता है कि इस वस्तु को मुझको देदो तो उसको कोई नहीं देता । इससे सर्वत्याग कर कि सुखी हो । सर्वत्याग किये से सर्व तू ही होगा और सर्वात्मा होकर संपूर्ण ब्रह्माण्ड अपने में देखेगा । जैसे माला के दानों में तागा होता� है, और दाने भी तागे के आधार होते हैं, उनमें और कुछ नहीं होता, तैसे ही देखोगे कि मैं सर्वमय और एकरस हूँ, मेरे ही में ब्रह्माण्ड स्थित है और मैं ही हूँ मुझसे कुछ भिन्न नहीं । हे राजन्! जिसने सबका त्याग किया है वह सुखी है और समुद्र की नाईं स्थित है उसको कोई दुःख नहीं । इससे तुम चित्त का त्याग करो कि रागद्वेष मिट जावे । इस चित्त के इतने नाम हैं-चित्त, मन, अहंकार, जीव और माया । हे राजन्! अपने ऐश्वर्य के त्यागने, औरों की भिक्षा लेने से तो चित्त वश नहीं होता चित्त तभी वश होता है जब पुरुष निर्वासनिक होता है । जब तक चित्त फुरता है तब तक सर्वत्याग नहीं होता । जब यह फुरना निवृत्त होता है तब चित्त का त्याग होता है । चित्त के त्याग से भी त्याग के अभिमान से रहित हो तब सर्वात्मा होगे । जब चित्त को त्यागोगे तब उस पद को प्राप्त होगे जो जितने ऐश्वर्य और सुख हैं उनका आश्रय है और जितने दुःख हैं उनका नाश करनेवाला है और जिसके जाने से किसी पदार्थ की इच्छा न रहेगी, क्योंकि सर्व आनन्द का धारने वाला तेरा स्वरूप है, फिर इच्छा किसकी रहे । जैसे आकाश के आश्रय देवलोक से आदि सर्वविश्व रहता है और आकाश को कुछ इच्छा नहीं और जो इच्छा नहीं करता तो भी सर्व आकाश ही में है और सबको धारने हारा है । हे राजन्! जब तुम भी किसी की इच्छा न करोगे, तब निर्वासनिक होकर अपने स्वरूप में स्थित होगे और जानोगे कि सर्वका आत्मा मैं ही हूँ, सबको धार रहा हूँ और भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल भी मेरे आश्रय हैं । जैसे समुद्र के आश्रय तरंग हैं तैसे ही मेरे आश्रय काल है । चित्त का सम्बन्ध तुझे प्रमाद से है और प्रमाद यही है कि चिन्मात्रपद में चित्त होकर फुरता है । चित्त कैसा है कि जड़ भी है और चेतन भी है । इसी का नाम चिद्जड़ग्रन्थि है । जब यह ग्रन्थि खुल जावेगी तब अपने आपको वासुदेवरूप जानोगे । जब निर्वासनिक होगे तब संसाररूपी वृक्ष नष्ट हो जावेगा । जैसे बीज में वृक्ष होता है, तैसे ही चित्त में संसार है और जैसे बीज के जलने से वृक्ष भी जल जाता है तैसे ही वासना के दग्ध हुए से संसार भी दग्ध होता है । हे राजन्! जैसे किसी डब्बे में रत्न होते हैं तो रत्नों के नाश हुए डब्बा नहीं नष्ट होता और डब्बे के नष्ट हुए रत्न नष्ट होते हैं । डब्बा क्या है और रत्न क्या है सो भी सुनो डब्बा तो चित्त है और रत्न देह है । इससे चित्त के नष्ट होने का उपाय करो । जब चित्त नष्ट होगा तब देह से रहित होगे । देह के नष्ट हुए चित्त नष्ट नहीं होता और चित्त के नष्ट हुए देह नष्ट हो जाती है । जब चित्तरूपी धूलि से रहित होगा तब तू केवल शुद्ध आकाश रहेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तत्यागवर्णनन्नाम त्रिसप्ततितमस्सर्गः ।।73।।

www.tantrik-astrologer.in

अनुक्रम

राजविश्रान्ति वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार कुम्भज ने कहा कि चित्त का त्यागना ही सर्व त्याग है तब शिखरध्वज ने पूछा, हे भगवन्! मैं चित्त को कैसे स्थित करूँ । संसार रूपी आकाश की चित्तरूपी धूलि है और संसाररूपी वृक्ष का चित्तरूपी वानर है जो कभी स्थित नहीं होता, इससे ऐसे चित्त को मैं कैसे स्थित करूँ? तब कुम्भज ने कहा, हे राजन्! चित्त का रोकना तो सुगम है । नेत्रों के खोलने और मूँदने में भी कुछ यत्न है परन्तु चित्त के रोकने में कुछ यत्न नहीं । दीर्घ दर्शी को सुगम है और अज्ञानी को कठिन है । जैसे चाण्डाल को पृथ्वी का राजा होना और तृण को सुमेरु होना कठिन है तैसे ही अज्ञानी को चित्त का रोकना कठिन है । राजा ने पूछा, हे देवपुत्र! पर्वत तोड़ना कठिन है तो भी हट जाता है परन्तु मन का रोकना अति कठिन है । जैसे बड़े मच्छ को बालक नहीं रोक सकता, तैसे ही मैं चित्त को नहीं रोक सकता । हे देवपुत्र! तुम कहते हो कि मन का रोकना सुगम है और मुझको तो ऐसा कठिन भासता है जैसे अन्धे पुरुष को लिखी हुई मूर्ति नेत्रों से नहीं दृष्टि आती तो वह उसे हाथ में कैसे ले, तैसे ही मन को वश करना मुझे कठिन भासता है । प्रथम चित्त का रूप मुझसे कहिये । कुम्भज बोले, हे राजन्! इस चित्त का रूप वासना है । जब वासना नष्ट होगी तब चित्त भी नष्ट हो जावेगा । इससे वासनारूपी बीज को तू नष्ट कर तो चित्तरूपी वृक्ष भी नष्ट हो और न कोई डाल रहे-- - न कोई फूल फल हों । यदि डाल को काटेगा तो वृक्ष फिर होगा, क्योंकि डाल के काटने से वृक्ष नष्ट नहीं होता फिर कई डालें लग जाती हैं । जब बीज को नष्ट करे तब वृक्ष भी नष्ट हो जावे । राजा बोले, हे भगवन्! चित्तरूपी फूल की संसाररूपी सुगन्ध है, चित्तरूपी कमल का संसाररूपी ताल है, देहरूपी तृण के उठाने और उड़ानेवाला चित्त रूपी तिल का जरा-मृत्यु और आधिभौतिक दुःख तेल है; चित्तरूपी आकाश को संसाररूपी अँधेरी है और हृदयरूपी कमल का चित्तरूपी भँवरा है । बीज क्या है? और डाल क्या है? डाल का काटना क्या है, वृक्ष क्या है और फूल, फल क्या है? सो कृपा कर कहो? कुम्भज बोले, हे राजन्! चैतन्यरूपी क्षेत्र स्वच्छ और निर्मल है, उसमें अहंभाव बीज है उसी को अहंकार, चित्त, मन, जड़ और मिथ्या कहते हैं । उस अहंकार में जो संवेदन है वही देह और इन्द्रियाँ हो फैली है और उसमें जो निश्चय है वह बुद्धि है । उस बुद्धि में जो निश्चय है कि `यह मैं हूँ' यही संसार है और वही जीव का अहंकार है अहंकार इस वृक्ष का बीज है; चित्तरूपी वृक्ष की डालें और सुख दुःख इस चित्तरूपी वृक्ष के फल हैं । हे राजन्! एकान्त बैठकर और चिन्तना से रहित होकर एक आश्रय का त्याग करना और दूसरे का अंगीकार करना और इस प्रकार स्थित होना कि मैं ऐसा त्यागी हूँ इसकी चिन्तना ही उस डाल का काटना है । हे राजन्! इस डाल के काटे से वृक्ष नहीं नष्ट होता, क्योंकि यह तो ऐसा होकर स्थित होता है कि मैं हूँ । वासना त्याग करे और कुछ न फुरे ।जब अहंरूपी बीज नष्ट हो जाता है तब जगत्ूरूपी वृक्ष भी नष्ट हो जाता है क्योंकि इसका बीज अहं ही है । जब अहंभाव बीज नष्ट हुआ तब वृक्ष भी नष्ट हो जाता है; इससे चित्तरूप बीज को तुम नष्ट करो । राजा बोले, हे देवपुत्र! तुम्हारा! निश्चय मैंने यह जाना कि जगत् के त्यागने से चित्त का नष्ट करना श्रेष्ठ है । हे भगवन्! इतने काल मैं डालें काटता रहा हूँ; इसी से मेरे दुःख नष्ट हुए और आपने कहा कि अहं ही दुःखदायी है इसलिये कृपा करके कहिये कि अहं कैसे उत्पन्न होता है? कुम्भज बोले, हे राजन्! शुद्ध चैतन्य में जो चैतन्योन्मुखत्व अहं का फुरना हुआ कि `मैं हूँ' सो ही दृश्यरूप हुआ है और मिथ्या संवेदन से हुआ है । जैसे शान्त समुद्र में पवन से लहरें होती हैं तैसे ही शुद्ध आत्मा में

www.tantrikastrologer.in

अहं फुरता है और उससे संसार हुआ है । इससे अहंभाव को नष्ट करो कि शान्तपद में स्थित हो । जो दुःखदायक वस्तु है उसको नष्ट करे तो शान्त हो । राजा ने पूछा, हे भगवन्! कौन वस्तु है जो जलाने योग्य है और वह कौन अग्नि है जिसमें वह जलती है? कुम्भज बोले, हे त्यागवानों में श्रेष्ठ राजा! तेरा जो अपना स्वरूप है उसका विचारकर कि `मैं क्या हूँ' और `यह संसार क्या है' इसका दृढ़ विचार करना ही अग्नि है और मिथ्या अनात्मा अर्थात् देह, इन्द्रियादिक में अहंभाव है उसको अवास्तवरूप विचार अग्नि में जलावो । जब विचार अग्नि से अहंकार बीज को जलावोगे तब केवल चिन्मात्र रहेगा । हे राजन्! मेरे उपदेश से तू आपको क्या जानता है सो मुझसे कह? राजा ने कहा मैं राजा, पृथ्वी, पर्वत, आकाश, दशोंदिशा, रुधिर, माँस, देह, कर्म इन्द्रियाँ, ज्ञानइन्द्रियाँ मन, बुद्धि और अहंकार नहीं; मैं इनसे रहित शुद्ध आत्मा हूँ; परन्तु हे भगवन्! अहंरूपी कलंकता मुझे कहाँ से लगी है कि उस कलंक को मैं दूर नहीं कर सकता? तब कुंभज ने कहा हे राजन्! उसी अहं का त्याग करो जो मैंने त्याग किया है; बल्कि यह फुरना भी न फुरे, नितान्त शून्य हो रहे । जब इसका त्याग करोगे तब चैतन्य आकाश ही रहेगा हे राजन्! तू अपने स्वरूप को जान कि कौन है । राजा ने कहा, हे भगवन्! मैं यह जानता हूँ कि मेरा स्वरूप वही आत्मा है जो सबका आत्मा है; मैं आनन्दरूप हूँ और सब मेरा प्रकाश है परन्तु मैं यह नहीं जानता कि अहं भाव कलना कहाँ से लगी है? इसको मैं नाश नहीं कर सकता पर यह मैंने जाना है कि संसार का बीज चित्त ही है और चित्त का बीज अहंकार है । तुम्हारी कृपा से मैंने जाना है कि मेरा स्वरूप आत्मा है और `अहं', `त्वं' मेरे में कोई नहीं । तुम भी इस अहंरूप कलंकता को दूर कर रहे हो-पर मुझसे दूर नहीं होता फिर फिर आ फुरता है कि मैं शिखर ध्वज हूँ । इस अहं से मैं संसारी हूँ । इसके नाश करने का उपाय आप कहिये । कुम्भज बोले, हे राजन्! कारण बिना कार्य नहीं होता । जो कारण बिना कार्य भासे तो जानिये कि भ्रममात्र और मिथ्या है और जिसका कारण पाइये उसे जानिये कि सत्य है । इससे तुम कहो कि इस अहंकार का कारण क्या है तब मैं उत्तर दूँगा? राजा बोले, हे भगवन् अहंकार का शुद्ध आत्मा है । शुद्ध आत्मा में जो जानना हुआ है कि मैं हूँ यही उत्थान है और दृश्य की ओर लगा है सो जानना संवेदन ही अहं का कारण है । कुम्भज बोले, हे राजन्! इस जानने का कारण क्या है? प्रथम तू यह कह पीछे दूर करने का उपाय मैं करूँगा । हे राजन्! जिसका कारण सत् होता है सो कार्य भी सत् होता है और जो कारण झूठ होता है तो कार्य भी झूठा होता है । जैसे भ्रम दृष्टि से जो दूसरा चन्द्रमा आकाश में दीखता है उसका कारण भ्रम है । इससे इस जानने रूप संवेदन का कारण कह सो जानना ही दृष्टा और दृश्य रूप होकर स्थित हुआ है राजा बोले, हे देवपुत्र! जानने का कारण देहादिक दृश्य है, क्योंकि जानना तब होता है जब जानने योग्य वस्तु आगे होती है और जो आगे वस्तु नहीं होती है तो वह जाना भी नहीं जाता । इससे जानने का कारण देहादिक हुए । कुम्भज बोले, हे राजन्! ये देहादिक मिथ्या भ्रम से हुए हैं, इनका कारण तो कोई नहीं । राजा बोले, हे देवपुत्र! देह का कारण तो प्रत्यक्ष है क्योंकि पिता से इसकी उत्पत्ति हुई है और प्रत्यक्ष कार्य करता दृष्टि आता है, आप कैसे कहते हैं कि कारण बिना है और मिथ्या है? कुम्भज बोले, हे राजन्! पिता का कारण कौन है? पिता भी मिथ्या है । जैसे स्वप्न में पिता और पुत्र देखिये सो दोनों मिथ्या हैं । इससे कह पिता का कारण क्या है? राजा बोले, हे भगवन्! पुत्र का कारण पितामह है, इसी प्रकार परम्परा से सबका कारण ब्रह्म प्रत्यक्ष है, क्योंकि सबकी उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई है । कुम्भज बोले, हे राजन्! ब्रह्मा से आदि काष्ठ पर्यन्त सर्वसृष्टि संकल्प की रची है और देह भी भ्रम करके भासता है । जैसे मृग तृष्णा का जल और सीपी में रूपा भासता है तैसे ही आत्मा में देह भासता है । जैसे आकाश में दो चन्द्रमा भ्रम से दीखते हैं

www.tantrik-astrologer.in

तैसे ही आत्मा में यह संसार भ्रम से भासता है । जो तू कहे कि क्रिया कैसे दृष्टि आती है तो सुन । जैसे कोई कहे कि बन्ध्या के पुत्र को भूषण पहराये हैं, तो जब बन्ध्या का पुत्र ही नहीं तो भूषण किसने पहिरे? अथवा स्वप्न में सब क्रिया भ्रममात्र होती हैं, तैसे ही यह संसार तेरे भ्रम में है जब भ्रम निवृत्त होगा तब केवल आत्मा ही भासेगा । हे राजन्! जैसे तू अपना देह जानता है तैसे ही ब्रह्मा को भी जान । ब्रह्मा का कारण कौन है? इससे इस भ्रम से जाग कि तेरा भ्रम नष्ट हो जावे । राजा बोले, हे भगवन्! मैं अब जागा हूँ और मेरा भ्रम नष्ट भया है । मैंने यह संसार अब मिथ्या जाना है कि केवल संकल्पमात्र है । जो कुछ दृश्य है सो मिथ्या है और एक आत्मा ही मेरे निश्चय में ही सत् हुआ है । हे भगवन्! ब्रह्मा का कारण ब्रह्म है और वह अद्वैत अविनाशी और सर्वात्मा है, ब्रह्म का कारण यह हुआ । कुम्भज बोले, हे राजन्! कारण और कार्य द्वैत में होते हैं सो असत् हैं क्योंकि इस कारण देश, वस्तु और काल से अन्त हो जाता है और परिणामी होता है जो वस्तु परिणामी हो सो मिथ्या है । हे राजन्! आत्मा अद्वैत है, जिसमें न एक कहना है, न द्वैत कहना है, न वह भोगता है, न भोग है, न कर्म है, न अद्वैत है । जो वह स्वरूप से परिणाम को नहीं प्राप्त होता और सर्वात्मा है, जो सर्व देश और सर्व काल भी है, जो सर्व वस्तु में पूर्ण और अद्वैत है और जो अद्वैत है तो कारण कार्य किसका हो? कारण कार्य का सम्बन्ध द्वैत में होता है और परिणामी होता है और जिसमें देशकाल का अन्त है सो अद्वैत आत्मा है । उसमें न कोई देश है न काल है और न कोई वस्तु है, वह केवल चिन्मात्र है । हे राजन्! मैं जानता हूँ कि तू जाग्रत होगा, क्योंकि क्षीण हो जाती है तैसे ही तेरा अज्ञान नष्ट हो जाता है, अज्ञान के नष्ट हुए से तू आत्मा ही होगा । तू अपने प्रत्येक चैतन्यस्वरूप में स्थित हो और देख कि ब्रह्म आदिक सर्व परमात्मा का किंचन है । परमात्मा ही ऐसे होकर स्थित हुआ है और जो दृष्टि पड़ता है उस सर्वका अपना आप आत्मा है । जब जागेगा, तो जानेगा, जागे बिना नहीं जान सकता । राजा बोला, हे भगवन्! तुम्हारी कृपासे अब मैं जागा हूँ और जानता हूँ कि मेरा स्वरूप आत्मा है और मैं निर्मल हूँ । अब मेरा मुझको नमस्कार है । एक मैं ही हूँ मेरे से भिन्न कुछ नहीं और मैंने आपको जाना है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजविश्रान्तिवर्णनन्नाम चतुःसप्ततितमस्सर्गः ||74||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

निर्वाणप्रकरण

राजा ने पूछा, हे भगवन्! आप कैसे कहते हैं कि ब्रह्मा का कारण कोई नहीं? आत्मा ऐसा अनन्त, अच्युत, अव्यक्त और अद्वैत ईश्वर है वह षट् परिणामों का विषय नहीं और परमब्रह्म तो ब्रह्मा का कारण है? कुम्भज बोले, हे राजन्! तूही कहता है कि आत्मा अनन्त है। जो अनन्त हे उसको देश, काल और वस्तु का परिच्छेद नहीं होता जो सर्वदेश, सर्वकाल, और सर्ववस्तु में पूर्ण है सो कारण कार्य किसकी हो? कारण तब हो जब प्रथम द्वैत हो सो आत्मा अद्वैत है और कारण उसको कहते हैं जो कार्य से पूर्व हो- और पीछे भी वही हो- जैसे घट के आदि मृत्तिका है और अन्त भी मृत्तिका होती है; वह कारण कहाता है पर आत्मा में न आदि है, न अन्त है। वह तो आत्मा अनन्त है कारण तब होता है जब परिणाम होता है सो आत्मा अच्युत है, अपने स्वरूप से कदाचित् नहीं गिरा और भोक्ता भी द्वैत से होता है सो आत्मा अद्वैत है। भोग और भोक्ता दोनों नहीं और आत्मा में कर्म भी नहीं। आत्मा से आदि कौन है जिससे आत्मा सिद्ध है? वह किसी का कार्य भी नहीं, क्योंकि कार्य इन्द्रियों का विषय होता है तो है सो आत्मा अव्यक्त है और जो कार्य होता है सो आत्मा सर्वका आदि है उसका कारण कौन हो? जो सर्वात्मा है और स्वच्छ आकाशवत् निर्मल है सो ही तेरा स्वरूप है। राजा ने पूछा, हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है! मैंने जाना है कि आत्मा अद्वैत है वह न किसी का कारण है, न कार्य है और अनुभवरूप है सो मैं हूँ। मैं निर्मल हूँ, विद्या-अविद्या के कार्य से रहित हूँ, निर्वाणपद हूँ और निर्विकल्प हूँ, मेरे में फुरना कोई नहीं और मैं ही हूँ मेरा मुझको नमस्कार है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पञ्चसप्ततितमस्सर्गः ||75||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

शिखरध्वजबोधन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! राजा शिखरध्वज कुम्भज मुनि के उपदेश से प्रबोध हो और ऐसे वचन कहकर केवल निर्वाणपद में स्थित हुआ। जब निर्विकल्प और फुरने से रहित हो एक मुहूर्त पर्यन्त स्थित रहा-जैसे वायु से रहित दीपक स्थित होता है-तब कुम्भज ने उसे जगाकर कहा; हे राजन! तेरा समाधि से क्या है और उत्थान से क्या है? तू तो केवल आत्मा है। मैं जानता हूँ कि तू परमज्ञान से शोभित हुआ है। जैसे डब्बे में रत्न होता है तो उसका प्रकाश बाहर नहीं दृष्टि आता और जब डब्बे से निकालकर देखिये तब बड़ा प्रकाश भासता है, तैसे ही अविद्यारूपी डब्बे से तू निकला है और परमज्ञान से शोभित हुआ है। हे राजन्! अब तेरे में न कोई क्षोभ है और न कोई उपाधि है। अब तू संसार के राग द्वैष से रहित, शान्तरूप, जीवन्मुक्त होकर विचारपूर्वक बिचर तो तुझे कोई उपाधि न लगेगी।
वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार कुम्भज मुनि ने कहा तब राजा शान्तरूप हो गया और बोला, हे भगवन्! जो कुछ आपने आज्ञा की है उसे मैंने भली प्रकार जाना पर अभी एक प्रश्न है और उसका उत्तर कृपा करके कहो कि मैं दृढ़ स्थित होके रहूँ। हे भगवन्! आत्मा तो एक है और शुद्ध और केवल आकाशरूप चैतन्यरूप है उसमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य त्रिपुटी कहाँ से उपजी? कुम्भज बोले, हे राजन्! जो कुछ स्थावर- जंगम संसार है वह महाप्रलय पर्यन्त है। जब महाप्रलय होता है तब केवल आत्मा ही शेष रहता है जो स्वच्छ और निर्मल है, तहाँ न तेज होता है, न अन्धकार है, वह केवल अपने आप स्वभाव

में स्थित होता है । जो कुछ आनन्द है उसका अधिष्ठान आत्मा है और सत् असत् से रहित है । जिसको बुद्धि `इदं' करके कहती है उसे सत् कहिये और जिसको नहीं कहती उसे असत् कहिये । वह सत् असत् से रहित और सब शुभ लक्षणों से संयुक्त है और अपना स्वभावमात्र है उसमें कोई उपाधि नहीं और सर्वदा प्रकाशवान और उदयरूप है । यह संसार उस परमात्मा का चमत्कार है जैसे रत्न का चमत्कार लाट होती है तैसे ही ब्रह्म का चमत्कार यह संसार है इससे ब्रह्मरूप है, जो ब्रह्म से भिन्न है उसे मिथ्याभ्रम ही जानना । जो कुछ आकार भासते हैं सो असत् हैं । हे राजन् जो सब आकार मिथ्या हैं तो तेरी संवेदन भी मिथ्या है । आत्मा में अहं त्वं का कोई उत्थान नहीं, वह केवल ज्ञानमात्र है, केवल सत् और आनन्दरूप है और अविद्यातम से रहित प्रकाश रूप है वह प्रमाणों से जाना नहीं जाता क्योंकि इन्द्रियों का विषय नहीं और मन की चिन्तना से रहित है, क्योंकि सबका द्रष्टा है और सबका अपना आप अनुभवरूप है । हे राजन्! तू उसी में स्थित हो । आत्मा, बड़े से बड़ा है, सूक्ष्म से सूक्ष्म है और स्थूल से स्थूल है जिसमें आकाश भी अणु सा है उसमें ब्रह्माण्ड भी तृण समान है, वह अपने आपसे पूर्ण है, उससे किंचित भी उत्पन्न नहीं हुआ और नाना प्रकार करके स्थित हुआ है । फुरने से जगत् भासता है और फुरने के निवृत्त हुए केवल शुद्ध आत्मा है । राजा ने पूछा, हे भगवन् आप कहते हैं कि संसार फुरने मात्र है और आत्मा शुद्ध शान्तिरूप और निर्विकल्प है- तो उसमें संवेदन फुरना कहाँ से आया है? कुम्भज बोले, हे राजन! फुरना भी आत्मा का चमत्कार है जैसे पवन में स्पन्द और निःस्पन्द दोनों शक्ति हैं, जब फुरता है तब चलना प्रकट होता है और जब ठहर जाता है तब प्रकट नहीं होता, तैसे ही संवेदन जब फुरता है तब नाना प्रकार होते हैं और जगत् भासता है और जब फुरना मिट जाता है तब केवल शुद्ध आत्मा भासता है । हे राजन्! आत्मा सत्तामात्र है और संसार भी सन्मात्र आत्मा ही है जो सम्यक्दृष्टि से देखिये तो आत्मा ही भासता है और जो असम्यक्‌दृष्टि से देखिये तो आत्मा ही भासता है और जो असम्यक्दृष्टि से देखिये तो दुःखदायक जगत् भासता है । जिसके मन में संसार भावना है उसको दुःखदायक भासता है और जिसके हृदय में आत्मभावना होती है उसको आत्मा ही भासता है और सुखरूप होता है, क्योंकि आत्मा अपने आपका नाम है । जिसने जगत् को अपना आप जाना है उसको दुःख कहाँ? हे राजन्! यह संसार भावना मात्र है, जैसी भावना होती है तैसा ही हो भासता है । जिसकी भावना विष में अमृत की होती है उसे विष भी अमृत हो जाता है और जिसकी भावना अमृत में विष की होती है तो उसे अमृत भी विष हो जाता है, क्योंकि संसार भावनामात्र है । जैसी भावना दृढ़ करता है यद्यपि आग वह वस्तु न हो तो भी हो जाती है, इससे संसार भावनामात्र मिथ्या है । ज्ञानवान् को दुःख कदाचित् नहीं होता और अज्ञानी को सुख कदाचित् नहीं होता । हे राजन्! अहंता और संवेदन, चित्त और चैत्य ये भी आत्मा ही की संज्ञा हैं । जैसे आकाश शून्य, नभ ये सब संज्ञा आकाश ही की हैं तैसे ही वह संज्ञा आत्मा की हैं, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं । `अहं,' त्वं' सब आत्मा के आश्रय हैं । जैसे भूषण सुवर्ण के आश्रय होते हैं परन्तु सुवर्ण से भूषण तब होता है जब कि अपने पूर्वरूप को त्यागता है, आत्मा तैसे भी नहीं वह केवल एकरस है और अपने आप में स्थित है, कदाचित् परिणाम को नहीं प्राप्त होता । यह संवेदन आत्मा का चमत्कार है और आत्मा सत् असत् से परे है जो कुछ दृश्य है सो आत्मा में नहीं चित्त से रचा है, इससे परे है । हे राजन्! वह कारण-कार्य जिसका हो? कारण-कार्य तब होता है जब दृश्य होता है सो आत्मा किसी का विषय नहीं तो कारणकार्य किसका हो । विश्व के आदि भी आत्मा है अन्त भी वही है और मध्य में भी आत्मा ही है । जो कुछ और भासता है सो भ्रममात्र है-जैसे आकाश में जो घर मण्डल और पुर दृष्ट आते हैं उनकी आदि भी आकाश है, अन्त भी आकाश है और

www.tantrikastrologer.in

मध्य भी आकाश है और जो घर, मण्डल, पुर भासते है सो मिथ्या हैं जैसे अग्नि नाना प्रकार दृष्टि आती है सो सब मिथ्या आकार है एक अग्नि ही है तैसे ही सबके आदि, मध्य और अन्त एक आत्मा ही सार है । हे राजन्! जल में भी देश काल होता है क्योंकि दृश्य है और इन्द्रियों का विषय है जैसे यह तरंग अमुक स्थान से उठा और अमुक स्थान में लीन हुआ यहाँ स्थान देश हुआ और उपजकर इतना काल रहा सो काल हुआ और जिसको इन्द्रियाँ विषय न कर सकें उसमें देश काल कैसे हो? राजा बोले, हे भगवन्! अब मैंने भली प्रकार जाना है कि आत्मा चिन्मात्र है और ज्ञान इन्द्रियों से परे है । देश काल और इन्द्रियाँ मन से जानी जाती हैं कि अमुक देश है और अमुक काल है पर जहाँ इन्द्रियाँ और मन ही न हो वहाँ देश काल कहाँ है? कुम्भज बोले, हे राजन्! जो तूने ऐसे जाना तो तू जागा है । आत्मा में देश, काल कोई नहीं । यह मन और इन्द्रियों से जानता है कि यह देश और काल है । जो इनसे रहित होकर देखे तो आत्मा ही भासे और जो इन सहित देखे तो संसार ही दृष्टि आवेगा । हे राजन्! इनसे रहित होकर देख, तुझमें कुछ संसार न रहे कि अमुक प्रश्न किया और अब अमुक प्रश्न करूँ । संसार तबतक होता है जबतक इनका संयोग अपने साथ होता है । हे राजन्! ब्रह्म से ब्रह्म को देख और पूर्ण को देख कि तू भी पूर्ण हो । जब तू पूर्ण होगा तब सब ओर आपको ही जानेगा, सब संज्ञा तेरी ही होगी और उस निर्वाच्य पद को प्राप्त होगा जहाँ इन्द्रियों की गम नहीं, केवल आकाशरूप है । जैसे आकाश अपनी शून्यता से पूर्ण है तैसे ही तू भी अपने चैतन्य स्वभाव से आप पूर्ण होगा । जब तू मनसहित षट् इन्द्रियों से रहित होकर देखेगा तब अपने आपको फिर यदि इन सहित भी देखेगा तो भी तुझे चैतन्य आत्मा ही भासेगा और संसार का शब्द और अर्थ तेरे हृदय से उठ जावेगा-शब्द यह कि संसार है और अर्थ यह कि उसको सत् जानना और केवल आकाशरूप आत्मा ही भासेगा । संसार संवेदन मात्र है और संवेदन चित्तशक्ति का चमत्कार है यही चित्तशक्ति ब्रह्मा हो स्थित हुई है और संसार देखने लगी है ।जब यह शक्ति अन्तर्मुख होती है तब आत्मा ही दृष्टि आता है जो सदा एकरस है और जब बहिर्मुख होती है तब संसार दृष्टि आता है । जैसे जीव भावना करता है तैसे ही आगे दृष्टि आता है, जब संसार की भावना होती है तब संसार ही भासता है और जब आत्मा की भावना होती है तब आत्मा ही भासता है । आत्मा सदा एकरस और असंसारी है, इससे हे राजन्! तू आत्मा की भावना कर कि तुझे आत्मा ही भासे । इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे षट्सप्ततितमस्सर्गः ।।76।।

....

.... कुम्भज बोले, हे राजन्! यह संसार जो तुझे भासता है सो आत्मा में नहीं । केवल शुद्ध आत्मा में जो अहं उत्थान है वही संसार है पर अहं का वह चमत्कार न सत् है, न असत् है, न भीतर है, न बाहर है, न शून्य है, न अशून्य है, केवल आपमें आप स्थित है । संसार का प्रध्वंसाभाव भी नहीं होता अर्थात् पहले हो और पीछे नाश हो जावे ऐसा नहीं होता । आत्मा में संसार उदय अस्त नहीं होता केवल अपने आपमें स्थित है इससे कुछ भिन्न नहीं । किन्तु आत्मा को यह भी नहीं कह सकते कि केवल अपने आपमें स्वाभाविक स्थित है, उसमें वाणी की गम नहीं ।वाणी उसको कहते हैं जहाँ दूसरा होता है पर जहाँ दूसरा न हो वहाँ वाणी क्या कहे । यह कहना भी तेरे उपदेश के निमित्त कहा है आत्मा में किसी शब्द की प्रवृत्ति नहीं । हे राजन्! ऐसा आत्मा किसका कारण कार्य हो । आत्मा तो शुद्ध, निर्विकार और प्रमाणों से रहित है । जो किसी लक्षण से प्रमाण नहीं किया जाता सो आकार स्थित हुआ है और शान्तरूप है । हे राजन्! ऐसा आत्मा किसका कारण कार्य हो? कारण कार्य तब होता है जब प्रथम परिणाम और क्षोभ को प्राप्त है पर आत्मा तो शान्तरूप है और कारण तब हो जब क्रिया से कार्य को उत्पन्न करे आत्मा? अक्रिय है । अर्थात् क्रिया से रहित है । कारण को कार्य से जाना जाता है पर

www.tantrik-astrologer.in

आत्मा चिह्न से रहित है और प्रमाणों का विषय नहीं इससे आत्मा कारण कार्य किसी का नहीं और आत्मा को कारण कार्य मानने से मुझे आश्चर्य आता है । हे राजन्! जो वस्तु उपजती है सो नष्ट भी होती है सो उपजती भी है पर आत्मा सबके आदि है और अजन्मा और निर्विकार है उसमें स्थित हो कि तेरा संसार निवृत्त हो जावे । यह संसार अज्ञान से भासता है । जब तू स्वरूप में स्थित होकर देखेगा तब न भासेगा, और ऐसे भी न भासेगा कि आगे था अब निवृत्त हुआ है तब तो एकरस आत्मा ही भासेगा और केवल शून्य आकाश हो जावेगा । संसार से रहित होने को शून्य कहते हैं । चैतन्यस्वरूप नाना होके भी वही है और एक भी वही है, शून्य है और शून्य से रहित भी वही है, द्वैतरूप भी वही है और अद्वैतरूप भी वही है, ऐसा भासेगा । इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजप्रथमबोधनं नाम सप्तसप्ततितमस्सर्गः ॥77॥ कुंभज बोले, हे राजन्! जो कुछ तू देखता है सो सब चैतन्य घन है उसमें `अहं' `त्वं' शब्द कोई नहीं । `अहं' `त्वं' शब्द प्रमाद से होते है, जब आत्मा में स्थित होकर देखोगे तब आत्मा से भिन्न कुछ न भासेगा तो `अहं' `त्वं' शब्द कहाँ भासे? हे राजन् यह नाना प्रकार की संज्ञा चित्त ने कल्पी है जब चित्त से रहित होगे तब नाना और एक कोई संज्ञा न रहेगी । हे राजन्! `सर्व ब्रह्म' है, यह वाक्य वेद का सार है । जब इस वाक्य में दृढ़ भावना बुद्धि होगे तब एकरस आत्मा ही दृष्टि आवेगा और चित्त नष्ट हो जावेगा । जब चित्त नष्ट हुआ तब केवल महाशुद्ध आकाश की नाईं स्थित होकर निर्दुःख पद को प्राप्त होगे जो पद का आदि है और सर्वदा मुक्तिरूप है । राजा बोले, हे भगवन्! आपने कहा कि चित्त के नष्ट हुए से कोई दुःख न रहेगा और चित्त के नष्ट होने का उपाय भी आपने कहा है परन्तु मैं भली भाँति नहीं समझा, मेरे दृढ़ होने के निमित्त कृपा करके फिर कहिये कि चित्त कैसे नष्ट होता है? कुम्भज बोले, हे राजन्! यह चित्त न किसी काल का है, न किसी को है और न यह देखता है, चित्त है ही नहीं तो भी मैं तुझे क्या कहूँ और जो चित्त तुझको दृष्ट आता है तो तू आत्मा ही जान, आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं । हे राजन्! महासर्ग के आदि और अन्त कोई सृष्टि नहीं केवल आत्मा है और आत्मा में कुछ नहीं कह सकते मैंने तेरे जानने के निमित्त कहा है । मध्य जो कुछ दृष्टि आता है सो अज्ञानी की दृष्टि है आत्मा में सृष्टि कोई नहीं और आत्मा किसी का उपादानकारण और निमित्तकारण भी नहीं क्योंकि अच्युत है-परिणाम को नहीं प्राप्त होता । उपादान भी परिणाम से होता है आत्मा शुद्ध निराकार आकाशरूप है सो कारणकार्य हो? चित्त भी वासनारूप है और वासना तब होती है जब वास होती है । जो आगे सृष्टि नहीं तो वासना किसकी फुरे और चित्त में संसार की स्थिति कैसे हो? इससे चित्त कुछ नहीं । यह विश्व आत्मा का चमत्कार है और सृष्टि आत्मा में कोई नहीं, वह निरालम्ब केवल अपने आप में स्थित है । हे राजन्! संसार भी नहीं हुआ और चित्त भी नहीं हुआ तो `अहं' `त्वं' आदिक शब्द भी आत्मा में कोई नहीं । ये शब्द तब होते हैं जब चित्त होता है और चित्त तबतक है जबतक वासना है । जब निर्वासनिक पद को प्राप्त हुआ तब कोई कल्पना नहीं रहती । हे राजन्! यह महाप्रलय में नष्ट हो जावेगा और सत् असत् संसार कुछ न रहेगा, एक आत्मा ही शेष रहेगा जो निराकार और शुद्ध है । जब तक महाप्रलय नहीं होता तबतक संसार है । महाप्रलय क्या? सो भी सुनो? एक क्षण आत्मा के साक्षात्कार होने से सृष्टि का शेष भी न रहेगा । ज्ञान ही महाप्रलय (अत्यन्त प्रलय) है और अब जो दृष्टि आता है सो मिथ्या है । यह क्रिया भी मिथ्या है और इसका भान होना भी मिथ्या है । जैसे स्वप्न की क्रिया भी मिथ्या है और उसका भान होना भी मिथ्या है तैसे ही जाग्रत संसार स्वप्न मात्र है और कारण बिना ही भासता है । जो कारण बिना है सो मिथ्या है इसका कारण अज्ञान ही है कि अपना न जानना, जब आपको जाना तब अपना आपही भासेगा । जैसे स्वप्न में अपने न जानने

www.tantrikastrologer.in

से भिन्न आकार भासते हैं पर जब जगा तब अपना आपही जानता है कि मैं ही था । हे राजन्! मुझे तो एक आत्मा ही दृष्टि आता है, आत्मा से भिन्न संसार कोई नहीं भासता । इस संसार की स्थिति मानना मूर्खता है, यह सदा अचल रूप है! वेद शास्त्र और लोक भी कहता है कि संसार मिथ्या है और आप भी जानता है कि संसार मिथ्या है और आप भी जानता है कि नष्ट होता दृष्टि आता है तो फिर उसमें आस्था करनी मूर्खता है । आत्मा में संसार नाना अनाना कोई नहीं, आत्मा सर्वदा अपने आपमें स्थित है और शुद्ध और अच्युत ज्यों का त्यों है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधनन्नामाष्टसप्ततितमस्सर्गः ||78||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

शिखरध्वजबोध वर्णन

शिखरध्वज बोले, हे भगवन्! अब मेरा मोह नष्ट हुआ है और अपना आप मैंने जाना है । तुम्हारी कृपा से मेरा संसारभ्रम निवृत्त हुआ है और शोकसमुद्र को अब मैं तरकर शान्त पद को प्राप्त हुआ हूँ । `अहं' `त्वं' शब्द मेरे में कोई नहीं, अब मैं निर्वाणपद को प्राप्त हुआ हूँ और अच्युत चिन्मात्र केवल हूँ और शून्य हूँ । कुम्भज बोले,, हे राजन्! आत्मा शुद्ध और आकाश की नाईं निर्मल है, बल्कि आकाश से भी अति निर्मल है पर उसमें अहं मल अहंमोह से उपजा है और मोह अविचार का नाम है ।जब विचार होता है तब कोई अहं नहीं पाया जाता । यह विश्व संवेदन में है और संवेदन सबके आदि होकर स्थित हुआ है । जब संवेदन अन्तर्मुख होता है तब सब विश्व लीन हो जाता है, संवे दन ही में बन्ध और मुक्ति है, जब बहिर्मुख होता है तब बन्ध है और जब अन्तर्मुख होता है तब मोक्ष है । जिसने मन और इन्द्रियों से रहित होकर अपना आप देखा है उसको ज्यों का त्यों दृष्टि आता है-और जो मोहसंयुक्त देखता है उसको विपर्यय भासता है । जैसे सम्यक््दृष्टि से भूषण में सुवर्ण भासता है और जब भूषण के आकार मिट जाते हैं तब भी सुवर्ण ही है और मूर्ख को सोने में भूषण दृष्टि आते हैं । चिरकाल के अभ्यास से जो बुद्धि इनमें फुरती है तो भी प्रारब्ध वेग पर्यन्त चेष्टा होती है तब चेष्टा में भी आत्मा ही दृष्टि आता है -इससे केवल आत्मा ही का किञ्चन होता है । जैसे सोने में भूषण, आकाश में नीलता और वायु में स्पन्द है, तैसे ही आत्मा में सृष्टि है । जैसे आकाश में नीलता देखनेमात्र है वास्तव कुछ नहीं, तैसे ही आत्मा में सृष्टि वास्तव कुछ नहीं, भ्रान्तिमात्र ही है । जब भ्रान्ति निवृत्त होती है तब जगत् का शब्द अर्थ सब ओर से शान्त हो जाता है और शब्द अर्थ की भावना से जो चेष्टा होती है उससे जब अभिलाषा निवृत्त हो जाती तब कोई दुःख नहीं होता । इसी को मुनीश्वर निर्वाण कहते हैं । जब निर्वाणपद का ऐसा निश्चय होता है तब शान्तरूप शून्यपद को पाकर स्थित होता है । हे राजन्! अहं का उत्थान होना ही बन्धन है और अहं के निर्वाण होने से ही मुक्ति है । अहं के होने से संसार का दुःख है, जबतक अहं का उत्थान है तब तक संसार है और जबतक संसार है तब तक अहं का उत्थान है । जब संसार की सत्ता जाती रहेगी तब अहं फुरना भी नष्ट हो जावेगा और जब फुरना नष्ट हुआ तब अहं भी नष्ट हो जावेगा । जब अहं नष्ट हुआ तब केवल शुद्ध आत्मा ही शेष रहेगा और उसी का भान होगा तब अहं ब्रह्म का उत्थान भी शान्त हो जावेगा और चैतन्यमात्र ही रहेगा । हे राजन्! जिस को सर्वब्रह्म की बुद्धि हुई है उसको संसार की बुद्धि है उसको ब्रह्मबुद्धि नहीं होती । जैसी जैसी भावना दृढ़ होती है तैसा ही आगे भासता है, जिसको ब्रह्मभावना दृढ़ होती है वह ब्रह्मरूप हो जाता है और जिसको जगत् की भावना दृढ़ होती है उसको जगत् ही भासता है । हे राजन्! तू अब जागा है और ब्रह्मस्वरूप हुआ है, जो शुद्ध, निर्मल और प्रत्येक है और जो शब्द और लक्षणों का विषय नहीं और इन्द्रियों का विषय भी नहीं । हे राजन्! ऐसी आत्मा जो केवल अद्वैत है और विश्व जिसका चमत्कार है वह कारण-कार्य किसका हो जैसे समुद्र में नाना प्रकार के तरंग पवन से उपजते हैं तो भी समुद्र से भिन्न नहीं, तैसे ही आत्मा में नाना प्रकार की विश्व संवेदन फुरने से उपजती है तौ भी आत्मा से कुछ भिन्न नहीं-फुरने मात्र है । जैसे थम्भे में मनोराज से कोई पुरुष पुतलियाँ कल्पता है और नाना प्रकार की चेष्टा करता है पर उसकी चेष्टा तबतक है जबतक संकल्प है और जब संकल्प निवृत्त हुआ तब शून्य थम्भा ही रह जाता है जैसा आगे था, क्योंकि शिल्पी की संवेदन में सृष्टि थी, तैसे ही यह संसार संकल्पमात्र है, जब संकल्प अन्तर्मुख होता है तब संसार की सत्ता

www.tantrik-astrologer.in

जाती रहती है । हे राजन्! संसार सत्ता इस कारण जाती रहती हे कि आगे ही असत् है जो वस्तु सत् होती है उसका कदाचित् नाश नहीं होता । इससे संसार केवल संवेदन ने कल्पा है । जैसे एक शिला में पुरुष पुतलियाँ कल्पता है तो शिला में तो पुतली कोई नहीं, ज्यों की त्यों शिला ही है, तैसे ही फुरने से आकार दृष्ट आते हैं । जब चित्त फुरने से रहित होगा तब आत्मा को अपना आप जानोगे और अशब्दपद को प्राप्त होगे जो शान्तिपद शुद्ध आकाशरूप है । हे �राजन् । सर्व शब्द और अर्थ की अभावना करना ही ब्रह्मज्ञान है, वहाँ कोई कल्पना नहीं । जब सम्यक््दृष्टि होती है तब शेष आत्मा ही भासता है और यह भावना भी उठ जाती है कि यह संसार है और यह ब्रह्म है, तब केवल ज्ञेयमात्र ही हो रहता है अर्थात् शिला की नाईं अचल निश्चय होता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधवर्णनन्नाम एकोनाशीतितमस्सर्गः ||79||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

परमार्थ उपदेश

राजा बोले, हे भगवन्! जैसे आप कहते हैं सो सत्य है और मैं भी ऐसे ही जानता हूँ कि संसार आत्मा का कार्य है और आत्मा कारण है । जो आत्मा का कार्य हुआ तो आत्मस्वरूप हुआ आत्मा से भिन्न नहीं । कुम्भज बोले, हे राजन्! आत्मा चैतन्यमात्र है, कारण कार्य किसी का नहीं । आत्मा अप्रत्यक्ष और अक्रिय और निरस है और जो अशब्दपद है वह कार्य किसका हो? कारण को कार्य द्वारा जाना जाता है पर आत्मा किसी प्रमाण का विषय नहीं, अप्रत्यक्ष और अरूप है । कारण तब होता है जब क्रिया होती है पर वह न किसी का कारण-कार्य है न कर्म है केवल ज्यों का त्यों अपने आपमें स्थित है और चैतन्यमात्र शिवरूप शुद्ध है । यह विश्व भी चैतन्यमात्र है । जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसे ही आत्मा में विश्व आत्मरूप स्थित है । ऐसा विश्व चैतन्यमात्र है पर उसमें असम्यक्् दर्शी अज्ञान से नाना प्रकार कल्पता है । वस्तु जो परमात्मा है तिसके प्रमाद से वासनारूप चित्त से विश्व को कल्पता है सो विश्व शब्दमात्र है अर्थात् कुछ नहीं । जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा, समुद्र में तरंग, मृगतृष्णा में जल और परछाहीं में वैताल भासता है तैसे असम्यक््दर्शी आत्मा में विश्व कल्पता है और सम्यक््दर्शी ऐसे जानता है कि आत्मा शुद्ध, अजन्मा, अविनाशी और परम निरञ्जन है । हे राजन्! जब तू सम्यक् दृष्टि से देखेगा तब संसार का प्रध्वंसाभाव भी न देखेगा, क्योंकि चित्त का कल्पा हुआ है और चित्त अज्ञान से उपजा है । स्वरूप में न चित्त है, न अज्ञान और न संसार है, केवल अद्वैतमात्र है, वहाँ एक कहाँ और द्वैत कहाँ, वह तो केवल मात्रपद है । जब अज्ञान नष्ट होगा तब `अहं' `त्वं' चित्त फुरना सब नष्ट हो जावेगा और फिर भ्रम दृष्टि न आवेगा । हे राजन्! आत्मा से भिन्न जो कुछ भासता है सो अज्ञान से भासता है और विचार किये से नहीं रहता । राजा बोले, हे भगवन्! अज्ञान क्या है और कैसे नाश होता है सो कहिये? कुम्भज बोले, हे राजन्! एक ज्ञान है और दूसरा अज्ञान है । ज्ञान यह कि पदार्थ को प्रत्यक्ष को जानना और अज्ञान यह कि पदार्थों को न जानना । एक ज्ञान भी अज्ञान है सो भी सुन । मृगतृष्णा का जल देखकर आस्था करनी और रस्सी में सर्प और सीपी में रूपा देखना और उसको सत्य जानना यह ज्ञान भी अज्ञान है, क्योंकि सम्यक््दर्शी होकर नहीं देखता यह अज्ञान है और एक अज्ञान यह भी है कि शुद्ध आत्मा निराकार और अच्युत है उसमें मैं हूँ और मेरा अमुक वर्णाश्रम है और नाना प्रकार का विश्व है । यह ज्ञान भी अज्ञान और मूर्खता है । हे राजन् न कोई जन्मता है और न कोई मृतक होता है, ज्यों का त्यों आत्मा ही स्थित है, उसमें जन्म मरण आदिक विकार देखना ज्ञान भी अज्ञान है । हे राजन् जैसे कोई ब्राह्मण हो और ऊँची बाँह करके कहे कि मैं शूद्र हूँ और मुझे वेद का अधिकार नहीं और जैसे कोई पुरुष कहे कि मैं मुआ हूँ और उसको मैं जानता हूँ, तैसे ही आपको कुछ वर्णाश्रम का अभिमान लेकर कहना मूर्खता है, क्योंकि यह असम्यक््दर्शन है । जब ज्यों का त्यों जाने तब दुःखी न हो । हे राजन्! ऐसा ज्ञान जो सम्यक््दर्शन से नष्ट हो जावे सो अज्ञान ही है । जैसे सूर्य की किरणों में जल बुद्धि होती है और किरण के ज्ञान से नष्ट हो जाता है सर्प बुद्धि अज्ञान है और सम्यकदर्शन से नष्ट होती है । जब ऐसे सम्यक्दर्शी होंगे तब आध्यात्मिक तापों से निवृत्त होकर शुद्ध होगे । आत्मा जो अज, शान्तरूप, सत्-असत् से परे है उसमें भिन्न कुछ नहीं और वह प्रकाशरूप है । ऐसा तू है । हे राजन्! अज्ञान भी और कोई नहीं, इस चित्त के उदय होने का ही नाम अज्ञान है । अज्ञान का कारण चित्त है । जो पदार्थ चित्त से उदय हुआ है सो नष्ट भी चित्त से ही होता है, इससे तू शुद्ध चित्त से चित्त को नाश कर । जैसे अग्नि पवन से उपजती है और पवन से शान्त होती है तैसे ही शुद्ध चित्त से चित्त को नष्ट कर । हे राजन्! न तू है, न मैं हूँ, न इन्द्रिय हैं, न संसार है और न यह जगत्

www.tantrik-astrologer.in

है केवल शुद्ध आत्मा है । हे राजन्! जो चित्त ही न हो तो चित्त का कार्य विश्व कहाँ हो? यह अज्ञानी को भासता है कि चित्त है और विश्व है, आत्मा केवल अपने आपमें स्थित है । हे राजन्! चित्त का उदय होना अज्ञान से है । जब अज्ञान नष्ट होता है तब चित्त और `अहं' `त्वं' सब नष्ट हो जाते हैं । हे राजन्! तू शुद्ध आत्मा, एक, प्रकाशरूप, अच्युत और निरन्तर है, देह इन्द्रियादिक रूप होकर भी तू ही स्थित हुआ है और इच्छा अनिच्छा भी तू ही है । जैसे चन्द्रमा की किरणें चन्द्रमा से भिन्न नहीं, तैसे ही तू है । तू निर्विकल्प है और तुझमें कुछ स्फुर्ति नहीं, तू केवल ज्यों का त्यों स्थित है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थोपदेशोनामाशीतितमस्सर्गः ।।80।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

शिखरध्वजबोध वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब ऐसे कुम्भज मुनि ने कहा तब शिखरध्वज सुनके शान्ति को प्राप्त हुआ और नेत्र मूँदके सब अंगों की चेष्टा से रहित हुआ । जैसे शिला पर पुतली लिखी हो तैसे ही स्थित हो एक मुहूर्त पर्यन्त वह निर्विकल्प स्थित रहा और फिर उठा तब कुम्भज ने कहा, हे राजन्! आत्मा जो निर्विकल्प है उस निर्विकल्प शिला में तूने शयन किया है और जो जानने योग्य है उसे तूने जाना है । अब अज्ञान तेरा नष्ट हुआ अथवा नहीं और तू शान्ति को प्राप्त हुआ अथवा नहीं सो कह? राजा बोले, हे भगवन्! तुम्हारी कृपा ने मुझे उत्तमपद को प्राप्त किया है । हे भगवन्! तत्त्ववेत्ताओं के संग से जैसा अमृत मिलता है तैसा क्षीरसमुद्र से भी नहीं मिलता और जो देवताओं से भी नहीं मिलता । तुम्हारी कृपा से मैंने ऐसे अमृत को पाया है जिसका आदि अन्त कोई नहीं और जो अनन्त और अमृतसार है । अब मेरे सब दुःख नष्ट हो गये है और मैं जगा हूँ । अब मैंने अपने आपको जाना है कि मैं आत्मा हूँ, मेरे साथ चित्त कोई नहीं और मैं केवल अपने आपमें स्थित हूँ । अब मुझे कोई इच्छा नहीं मैंने अपने स्वभाव को पाया है और सबके आदि पद को प्राप्त हुआ हूँ । जिसमें कोई क्षोभ नहीं ऐसे निर्विकल्पपद को मैं प्राप्त हुआ हूँ । हे भगवन्! ऐसा मेरा अपना आप है जिससे सब प्रकाशते हैं । उसके जाने बिना मैंने कोटि जन्म पाये थे । अब मेरे दुःख नष्ट हुए हैं और तुम्हारी कृपा से एक क्षण में जाना है । आगे भी श्रवण किया था पर क्या कारण है जो आगे न जाना और अब जाना? कुम्भज बोले, हे राजन्! अब तेरे कषाय (पाप) परिपक्व हुए हैं । जैसे फल परिपक्व होता है तब यत्न बिना ही वृक्ष से गिर पड़ता है तैसे ही अब तेरा अन्तःकरण शुद्ध हुआ है और अज्ञान नष्ट हो गया है । जब अन्तःकरण शुद्ध होता है तब सन्तों के वचन नहीं लगते और जब अन्तःकरण मलिन होता है तब सन्तों के वचन लगते हैं । जैसे कोमल कमल की जड़ को बाण लगे तो शीघ्र ही बेध जाता है तैसे ही शुद्ध अन्तःकरण में उपदेश शीघ्र ही प्रवेश करता है । हे राजन्! अब तेरी योग्य वासना नष्ट हुई है और स्वरूप जानने की तेरी इच्छा हुई है, इससे तू जगा है । हे राजन्! मैंने उपदेश तब किया है जब तेरा अन्तःकरण शुद्ध हुआ है । प्रतिबिम्ब भी वहाँ पड़ता है जहाँ निर्मल ठौर होता है । जैसे श्वेत वस्त्र पर केशर का रंग शीघ्र ही चढ़ जाता है और रंग भी चटक होता है, तैसे ही शुद्ध अन्तःकरण में सन्तों के वचन शीघ्र ही प्रवेश करते हैं और शोभा पाते हैं । हे राजन् जबतक अन्तःकरण मलिन होता है तब तक चाहे जितना उपदेश कीजिये स्थित नहीं होता । जब भोग से वैराग्य होता है तब वासना कोई नहीं रहती केवल आत्मपद की इच्छा होती है और तभी स्वरूप का साक्षात्कार होता है । हे राजन्! अब तेरा सर्वत्याग सिद्ध हुआ है और अज्ञान नष्ट हुआ है, क्योंकि और उपाधि कोई नहीं रही । चित्त ही बड़ी उपाधि है, जब चित्त नष्ट हुआ तब कोई दुःख नहीं रहता । अब तू सुख से बिचर, तुझको दुःख शोक और भय कोई नहीं अब तू शान्तिपद को प्राप्त हुआ है । राजा ने पूछा, हे भगवन्! अज्ञानी को�चित्त का सम्बन्ध है और ज्ञानवान् को चित्त का सम्बन्ध नहीं होता । जो स्वरूप में स्थित हैं वह चित्त बिना जीवन्मुक्त क्रिया में कैसे वर्तता है? कुम्भज बोले, हे राजन्! तू सत् कहता है कि ज्ञानी को चित्त का सम्बन्ध नहीं । जैसे पत्थर की शिला में अंकुर नहीं उपजता तैसे ही ज्ञानी को चित्त का सम्बन्ध नहीं होता । हे राजन् चित्त वासनारूप है और वासना जन्ममरण का कारण है पर जीवन्मुक्त की वासना नहीं रहती । ज्ञानवान् का चित्त सत्य पद को प्राप्त है और अज्ञानी चित्त में बन्धायमान है, इससे वह जन्मता भी है और मरता भी है । ज्ञानी का चित्त जो शान्ति में स्थित है इससे उसको न बन्ध है, न मोक्ष है और वह प्रारब्ध अनुसार भोग भोगता है और

www.tantrikastrologer.in

सर्वात्मा ही देखता है । यद्यपि इन्द्रियों से वह चेष्टा भी करता तो भी सर्व ब्रह्म ही देखता और क्रिया करने में इस अभिमान से रहित होता है कि मैं कर्ता हूँ और भोक्ता हूँ अज्ञानी आपको कर्ता मानता है । और उसको संसार सत्य भासता है इससे संकल्प विकल्प कर्ता है ज्ञानवान् को संसार की सत्यता नहीं भासती, वह आपको अकर्ता, अभोक्ता देखता है और अभिलाष से रहित चेष्टा करता है जबतक चित्त का सम्बन्ध है तबतक जीव संसार को सत्य जानकर अपने में क्रिया देखता है पर जब चित्त ही नष्ट हो गया तब संसार और फुरना कहाँ रहे? हे राजन्! अब तूने चित्त का त्याग किया है इससे सर्वत्यागी हुआ है और आगे सर्वत्याग न किया था इससे तेरा अज्ञान न नष्ट हुआ था । अब तेरा अहंभाव दूर हुआ है । जब अज्ञान नष्ट हुआ तब अहंभाव भी न रहा । अहं के त्याग करने से सर्वत्याग सिद्ध हुआ । आगे तूने राज्य का त्याग किया था, पर राज्य में तेरा कुछ न था, फिर तम का त्याग किया, फिर वन से आदि सर्व सामग्री का त्याग किया, पर अब तूने उसका त्याग किया जो त्यागने योग्य अहंभाव है- इससे सर्वत्याग हुआ । जो कुछ जानने योग्य है सो अब तूने जाना है और शान्तपद को प्राप्त हुआ है । हे राजन्! तू आत्मा सब दुःखों से रहित है । जैसे मन्दराचल पर्वत से रहित क्षीरसमुद्र शान्तपद को प्राप्त हुआ है तैसे ही अज्ञान से रहित तू शान्तपद को प्राप्त हुआ है । अब तू जागा है और चित्त का त्याग किया है इससे अद्वैत सर्वात्मा हुआ है । हे राजन्! जब दो अक्षर होते हैं तब उनकी संज्ञा नाना प्रकार की होती है-जैसे अमृत-विष, सुख-दुःख और धर्म-अधर्म । जो एक ही अक्षर होता है वह सबका आत्मा है, तैसे ही तेरा दूसरा अज्ञान नष्ट हुआ है और तू सत्य पद को प्राप्त हुआ जो शुद्ध निर्मल है । हे राजन्! जो ज्ञानवान् है उसने सम्यक् दृष्टि से चित्त का त्याग किया है और उसको कोई दुःख नहीं होता । तू उस पद को प्राप्त हुआ है जिसमें कोई दुःख नहीं और जहाँ स्वर्गादिक सुख भी तुच्छ हैं, क्योंकि स्वर्ग में भी अतिशय और क्षय होती है । अतिशय इसे कहते हैं कि जो बड़े पुण्यवाले किसी को आपसे ऊँचा देखते हैं तो चाहते हैं कि हम भी इसी के से हो जावें और क्षय इसे कहते हैं कि ऐसा न हो कि इन सुखों से गिरूँ । निदान स्वर्ग में दोनों प्रकार दुःख होता है पर तूने पुण्य पाप दोनों का त्याग किया है इससे सर्वत्यागी है । अज्ञानी जो पापी जीव हैं उनको स्वर्ग ही भला है । जैसे सुवर्ण का पात्र न पाइये तो पीतल का भी भला है तैसे ही सुवर्ण का पात्र जो ज्ञान है जबतक प्राप्त न हो तबतक पीतल के पात्र जो स्वर्गादिक हैं सो नरक से भले हैं, पर तुम जैसे को कुछ नहीं । आत्मा में सर्व पदार्थ की पूर्णता है और सर्वकी उत्पत्ति आत्मा से ही है । हे राजन्! वर्णाश्रम में क्या आस्था करनी है? जहाँ से इनकी उत्पत्ति है, जहाँ लीन होते हैं और मध्य में जिसके अज्ञान से दृष्टि आते हैं उसमें स्थित हो । हे राजन्! संकल्प विकल्प जो उठते हैं उनमें मत स्थित हो पर जिसमें ये उत्पन्न और लीन होते हैं उसमें स्थित हो । तपादिक क्रिया से क्या सिद्ध होता है? जिससे तप आदिक सिद्ध होते हैं उसमें स्थित हो । बूँद में क्या स्थित होना है? जिस मेघ से बूँद उत्पन्न होते हैं उसमें स्थित होइये । हे राजन्! जैसे स्त्री भर्ता से कोई पदार्थ चाहे और आप न कहे तैसे ही तपा दिक क्रिया से क्या सिद्ध होता है? जो इनसे आत्मपद की इच्छा करे तो प्राप्त नहीं हो सकता अपने आपसे पाता है । हे राजन्! आत्मा तेरा अपना आप है उससे सर्वसिद्धि होती है । जो वस्तु पीछे त्याग करनी हो उसको ज्ञानवान् प्रथम ही अंगीकार नहीं करता जो कुछ तपादिक हैं उनको चित्त से क्या रचता है अपने आपको देख कि अनुभवरूप है और सर्वदा निरन्तर अपने आपमें स्थित है । जब तू अपने आपसे देखेगा तब तपादिक क्रिया को दूर करके शोभा पावेगा । जैसे बादल के दूर हुए प्रकाशवान् चन्द्रमा शोभा पाता है तैसे ही तू भी भोग की चपलता को त्यागकर शोभा पावेगा । जब इन्द्रियों को जीतकर किसी पदार्थ में आसक्त न होगा और सर्ववासना का त्याग करेगा

www.tantrik-astrologer.in

तब ज्ञानवान् होगा । जिसने सर्ववासना का त्याग किया है उसको विष्णु जानना, वह सर्वराज्य का स्वामी है और जिसने मन जीता है सो चेष्टा में भी ज्यों का त्यों रहता है और समाधि में भी ज्यों का त्यों है । जैसे पवन चलने और ठहरने में तुल्य है तैसे ही ज्ञानवान् को कहीं खेद नहीं होता । राजा ने पूछा, हे सर्व संशयों के नाशकर्ता! स्पन्द और निस्पन्द में ज्ञानी ज्यों का त्यों कैसे रहता है सो कृपा करके कहिये? कुम्भज बोले, हे राजन्! चैतन्य आकाश आकाश से भी निर्मल है, जब उसका साक्षात्कार होता है तब जहाँ देखे तहाँ चैतन्य ही भासता है । जैसे समुद्र के जाने से तरंग और बुद्बुदे सब जल ही भासते हैं तैसे ही चित्त बिना आत्मा के देखे से फुरने में भी आत्मा ही दृष्टि आता है और जिसने आत्मा को नहीं जाना उसको नाना प्रकार का जगत् ही भासता है । जैसे जल के जाने बिना तरंग बुदबुदे भिन्न भिन्न दृष्टि आते हैं और जल के जानने से तरंग भी जलमय भासते हैं । हे राजन्! सम्यक्ःदर्शी को जगदात्मास्वरूप है और असम्यक्ःदर्शी को जगत् है । इससे तू सम्यक्ःदर्शी होकर देख कि जगत् भी आत्मरूप है । सम्यक्ःदर्शी जैसे प्राप्त होता है सो भी श्रवण कर । सम्यक्ःदर्शन सन्त के संग करने और सत्ःशास्त्र के विचार से प्राप्त होता है । भावना करिये तब कितने काल में स्वरूप का साक्षात्कार होता है । काल की अपेक्षा भी दृढ़ विचार के निमित्त कही है ।जब दृढ़ विचार के निमित्त कही है । जब दृढ़ विचार होता है तब साक्षात्कार होता है और जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब स्पन्द और निस्पन्द में एक समान होता है । हे राजन्! जिसके समीप शहद है वह शहद के निमित्त पर्वत क्यों खोजे और दौड़े तैसे ही तेरे घर में ब्रह्मवेत्ता चुड़ाला थी उसको त्यागकर तूने वन में आ तप का आरम्भ किया इससे बड़ा कष्ट पाया परन्तु अब तू जागा है और तेरा दुःख नष्ट हुआ है अब तू शान्तपद को प्राप्त हुआ । जैसे रस्सी के न जानने से सर्प भासता है और भली प्रकार जानने से रस्सी ही भासती है तैसे ही जिसने भली प्रकार निस्पन्द होकर अपना आप देखा है उसको फुरने में भी आत्मा ही भासता है जब मन की चपलता मिटती है तब तुरीयातीत पद को प्राप्त होता है, जिस पद को वाणी नहीं कह सकती । हे राजन्! तू भी अब उसी पद को प्राप्त हुआ है जो मन और वाणी से रहित तुरीयातीतपद है वहाँ कोई क्षोभ नहीं केवल शान्तिपद है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधवर्णनन्नामैकाशीतितमस्सर्गः ॥81॥

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

शिखरध्वजस्त्री प्राप्ति

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब राजा को कुम्भज मुनि ऐसे उपदेश कर चुके, उसके उपरान्त बोले, हे राजन्! अब हम जाते हैं, क्योंकि स्वर्ग में ब्रह्माजी के पास नारद मुनि आये हैं वे यदि मुझे देवताओं की सभा में न देखेंगे तो क्रोध करेंगे । हे राजन्! जो कल्याणकृत पुरुष हैं वे बड़ों की प्रसन्नता लेते हैं । जो उपदेश तुझे किया है उसको भली प्रकार विचारना । सब शास्त्रों का सार यही है कि सम्पूर्ण वासना का त्याग करना और किसी में चित्त को बन्धवान् न करना । मेरे आने तक स्वरूप में स्थित रहकर किसी चेष्टा में न लगना और स्वरूप को भली प्रकार जानकर चाहे तैसे विचरना । ऐसे कहकर जब कुम्भज मुनि उठ खड़े हुए तब राजा ने अर्घ्य और फूल चढ़ाने के निमित्त हाथ में लिये पर जल और फूल हाथ ही में रहे और कुम्भज मुनि अन्तर्धान हो गये । जब राजा ने कुम्भज मुनि को अपने आगे न देखा तब विचार करने लगा कि देखो ईश्वर की नीति जानी नहीं जाती कि नारद मुनि कहाँ था, उसका पुत्र कुम्भज कहाँ और मैं राजा शिखरध्वज कहाँ? मालूम होता है नीति ही ने कुम्भज मुनि का रूप धारणकर मुझको जगाया है । कुम्भज बड़ा मुनि दृष्टि आया जिसने मुझे उपदेश करके जगाया है । अब मैं अज्ञान रूपी गढ़े से निकलकर स्वरूप को प्राप्त हुआ हूँ, मेरे संपूर्ण संशय नष्ट हुए हैं और मैं निर्दुःख पद में स्थित होकर अज्ञाननिद्रा से जागा हूँ-बड़ा आश्चर्य है । हे राम जी! ऐसे कहकर राजा शिखरध्वज सम्पूर्ण इन्द्रियों, प्राण और मन को स्थित करके चेष्टा से रहित हुआ और जैसे शिला के ऊपर पुतली लिखी होती है और पर्वत का शिखर स्थित होता है तैसे ही स्थित हुआ । इधर चुड़ाला कुम्भजरूप शरीर को त्यागकर और अपना सुन्दर रूप धारणकर उड़ी और आकाश को लाँघकर अपने नगर में आई । अन्तःपुर में जहाँ स्त्रियाँ रहती थीं प्रवेश करके मन्त्रियों को आज्ञा दी कि तुम अपने-अपने स्थान में स्थित हो और आप राजा के स्थान में स्थित होके भली प्रकार प्रजा की खबर लेने लगी । निदान तीन दिन रहकर फिर वहाँ से उड़ी और जहाँ वन में राजा था वहाँ आ पहुँची और कुम्भज का रूप धारकर देखा कि राजा समाधि में स्थित है इससे बहुत प्रसन्न हुई । हे रामजी! ऐसे प्रसन्न होकर चुड़ाला ने विचार किया कि बड़ा सुख कार्य हुआ कि राजा ने स्वरूप में स्थित पाई और शान्ति को प्राप्त हुआ । फिर यह विचारकर कि इसको जगाऊँ सिंह की नाईं गरजी और ऐसा शब्द किया कि उससे वन के पशु पक्षी सब डर गये परन्तु राजा न जगा । फिर उसे हाथ से हिलाया तो भी राजा न जागा । जैसे मेघ के शब्द से पर्वत का शिखर चला यमान नहीं होता तैसे ही राजा चलायमान न हुआ और काष्ठ और पाषाण की नाईं स्थित रहा । तब रानी ने विचार किया कि कहीं राजा शरीर को त्याग न दे, पर फिर विचारा कि जो राजा ने शरीर का त्याग किया हो तो मैं भी त्यागूँगी । हे रामजी! चुड़ाला ने शरीर न त्यागा परन्तु आरम्भ करने लगी कि राजा और मुझको इकट्ठा शरीर त्यागना है । फिर विचार करने लगी कि इसकी भविष्यत् क्या होनी है । तब राजा के नेत्रों पर हाथ लगाया और देह से देह का स्पर्श कर देखा कि राजा के शरीर में प्राण हैं । फिर भविष्यत् का विचार किया कि इसकी सत्त्व शेष रहती है इससे जीवन्मुक्त होकर राज्य में बिचरेगा । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुमने कहा कि राजा काष्ठ और पाषाणकी नाईं स्थित हुआ और फिर कहा कुम्भज ने हाथ लगाकर देखा कि इसमें प्राण हैं तो कुम्भज ने क्योंकर जाना? यह मुझको संशय है सो दूर करो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस शरीर में पुर्यष्टका होती है उसमें कान्ति होती है । हे रामजी! अज्ञानी का चित्त रहता है और ज्ञानी का सत्त्व रहता है जो प्रारब्ध वेग से फुरता है और ब्रह्माकार वृत्ति फुरने से फिर शरीर पाता है । ज्ञानी इष्ट-अनिष्ट में एक समान रहता है और

www.tantrikastrologer.in

अज्ञानी एक समान नहीं रहता, वह इष्ट में प्रसन्न और अनिष्ट की प्राप्ति में शोकवान् होता है । हे रामजी! ज्ञानी जब शरीर को त्यागता है तब ब्रह्मसमुद्र में स्थित होता है और जबतक सत्त्व शेष है तब तक फुरता है । अज्ञानी जब शरीर को त्यागता है तब उसमें सूक्ष्म संसार होता है-जैसे बीज में वृक्ष, फूल और फल सूक्ष्मता से स्थित होता है सो काल पाकर फिर निकलता है । उसी प्रकार राजा का सत्त्व शेष रहता था उस कारण फिर फुरेगा । तब कुम्भजरूप चुड़ाला ने विचार किया कि इसके भीतर प्रवेश करके जगाऊँ और जो मैं न जगाऊँगी तो भी नीति से इसमें जागना है । ऐसे विचारकर उसने अपने शरीर को त्यागा और चेतना में स्थित हो, फुरने को लेकर उसमें प्रवेश किया और उसकी चेतनता का जो सत्त्व शेष था उसको फोड़ा और बड़ा क्षोभ किया । जब राजा वहाँ से हिला तब आप निकल आई और अपने शरीर में प्रवेश किया । जैसे पखेरू आकाश में उड़ता है और फिर आलय में आ प्रवेश करता है तैसे ही वह अपने शरीर में आन स्थित हुई और सामवेद का गायन स्वर से करने लगी । राजा यह सुनकर कि कोई सामवेद गाता है जागा और देखा कि कुम्भज मुनि बैठे हैं । इन्हे देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और फूल और जल चढ़ाकर बोला, हे भगवन्! मेरे बड़े भाग्य हैं-मैं आपका दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुआ । हे भगवन्! कुलरूपी पर्वत है उसमें जो देहरूपी वृक्ष है सो अब फूला है और तुमने हमको पावन किया है । हे भगवन्! किसी की सामर्थ्य नहीं कि तुम जैसों के चित्त में प्रवेश करे । जिसमें सर्वदा आत्मा का निवास है उस चित्त में मेरी स्मृति हुई है कि आपका दर्शन किया । इससे मेरे बड़े भाग्य है । हे भगवन्! अमृतरूपी वचनों से तुमने प्रथम मुझे पवित्र किया था और अब जो स्मरण किया है सो मुझे पावन किया है । कुम्भज बोले, हे राजन्! तेरा दर्शन करके मैं भी बहुत प्रसन्न हुआ हूँ और तुम्हारी जैसी प्रीति मैंने आगे किसी में नहीं देखी । हे राजन्! तेरे निमित्त मैं स्वर्ग से आया हूँ । स्वर्ग के सुख मुझे भले न लगे और तू बहुत प्रियतम है इसी निमित्त आया हूँ । अब मैं स्वर्ग को भी न जाऊँगा, तेरे ही पास रहूँगा । राजा बोले, भगवन्! जिस पर तुम जैसों की कृपा होती है उसको स्वर्ग आदिक सुख भले नहीं लगते तो तुम्हारी क्या बात है? यह वन है और यह झोंपड़ी है इसमें विश्राम करो, मेरे बड़े भाग्य हैं जो तुम्हारा चित्त यहाँ चाहता है । कुम्भज बोले, हे राजन्! अब तुझे शान्ति प्राप्त हुई है और संकल्परूप जीव नष्ट हुआ है । जैसे नदी के किनारे पर की बेलि जल के प्रवाह से मूल समेत गिरती है तैसे ही तेरे संकल्पबीज नष्ट हुए हैं अब तू यथाप्राप्ति में सन्तुष्ट है कि नहीं और हेयोपादेय से रहित हुआ है कि नहीं और जो पाने योग्य पद है सो पाया है कि नहीं अपना अनुभव कह? राजा बोले, हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से अब मैंने सबसे श्रेष्ठपद पाया है जहाँ संसारसीमा का अन्त है । अब मुझे उपदेश का अधिकार नहीं रहा, क्योंकि मेरे सम्पूर्ण संशय नष्ट हुए हैं और हेयोपादेय से रहित हूँ इससे सुखी विचरता हूँ । जो कुछ जानने योग्य था सो भी मैंने जाना है । अब मुझको कोई संशय नहीं रहा और मैं सब ठौर तृप्त, नित, प्राप्तरूप आत्मा अपने निर्मल स्वभाव में स्थित, सर्वात्मा और निर्विकल्प हूँ । मुझमें फुरना कोई नहीं, मैं शान्त-रूप हूँ और चिर पर्यन्त सुखी हूँ । इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार राजा और कुम्भज का तीन मुहूर्त संवाद हुआ फिर उसके उपरान्त दोनों उठ खड़े हुए और चले । निकट एक तालाब था जहाँ बहुत कमलिनी लगी थीं वहाँ पहुँच दोनों ने स्नान करके गायत्री और सन्ध्या की और पूजा करके फिर वहाँ से चले और वन कुञ्जों में आये । तब कुम्भज ने कहा चलिये । राजा ने कहा भली बात है चलिये । निदान दोनों चले और बहुत नगरों, देशों, ग्रामों और तीर्थों को देखते नाना प्रकार के वनों में जो फूल और फलसंयुक्त थे और मरुस्थल में बिचरे । हे रामजी! ऐसे वे दोनों तीर्थ आदिक सात्त्विकी स्थानों, सुन्दर वन आदिक राजसी स्थानों और मरुस्थलादिक तामसी स्थानों में बिचरे

www.tantrikastrologer.in

पर हर्ष शोक को न प्राप्त हुए और समता में रहे । हे रामजी! कुम्भज के फिरने का यह प्रयोजन था कि देखें राजा शुभ अशुभ स्थानों को देखकर हर्ष शोक करेगा अथवा न करेगा पर राजा हर्ष शोक को न प्राप्त हुआ । फिर उन्होंने बड़े पर्वतों की कन्दरा, वन, कुञ्ज और बड़े कष्ट के स्थान देखे और एक वन में जा रहे । कुछ काल में राजा और कुम्भज एक ही से हो गये दोनों इकट्ठे स्नान करें, एकही से जाप जपें, एकसी पूजा करें और एक से दोनों सुहृद हुए । किसी ठौर वे शरीर में माटी लगावें, किसी ठौर चन्दन का लेप करें, किसी ठौर शरीर में भस्म लगावें, किसी ठौर दिव्य वस्त्र पहरें, किसी ठौर केले के पत्रों पर सोवें, किसी ठौर फूल की शय्या हो और किसी ठौर क्रूर स्थानों में शयन करें हे रामजी! ऐसे शुभ अशुभ ठौरों में भी वे ज्यों के त्यों रहे और हर्ष शोक को न प्राप्त हुए । केवल शुद्ध सत्त्व में वे दोनों स्थित रहे अपर आत्मा के सिवाय और कुछ न फुरा एकबेर रानी के मन में विचार हुआ कि यह मेरा भर्त्ता है मैं इसको भोगूँ, क्योंकि हमारी अवस्था है । जो भले कुल की स्त्री है वे भर्त्ता को प्रसन्न रखती हैं और राजा का शरीर भी देवता का सा हुआ है और स्थान भी शुभ है जबतक शरीर है तबतक शरीर के स्वभाव भी साथ हैं । फिर विचार किया कि राजा की परीक्षा भी करूँ कि क्या कहे । इतना विचारकर कुम्भज ने कहा हे राजन्! अब हम स्वर्ग में जाते हैं, क्योंकि चैत्रशुक्ल एक को ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न की है, इसी दिन वर्ष उत्सव होता है और वहाँ नारदमुनि भी आवेंगे । मेरे आनेतक तुम ध्यान में रहना और जब ध्यान से उतरो तो फूलों को देखना । ऐसे कहकर उसने फूलों की मञ्जरी राजा को दी और राजा ने भी कुम्भज को फूल की मञ्जरी दी । जैसे नन्दनवन में स्त्री भर्तार के हाथ दे और भर्तार स्त्री के हाथ दे तैसे ही परस्पर दोनों ने दी । फिर कुम्भज आकाश को उड़ा और जैसे मेघ को मोर देखता है तैसे ही राजा देखता रहा जहाँ तक राजा की दृष्टि पड़ती थी वहाँ तक रानी ने कुम्भज का शरीर रक्खा और जब दृष्टि से अगोचर हुई तब फूलों की माला जो गले में थी तोड़कर राजा के ऊपर डाल दी और चुड़ाला का शरीर धारणकर आकाश को लाँघ अपने अन्तःपुर में पहुँची । निदान राजा के स्थान पर बैटकर सबको अपने अपने स्थानों में स्थित किया और प्रजा की खबरें सुनकर फिर उड़ी । सूर्य की किरणों के मार्ग से मेघमण्डल को लाँघती हुई जहाँ राजा का स्थान था वहाँ आकर देखा कि राजा वियोग से शोकवान् है इसलिये आप भी कुम्भजरूप में दिलगीर राजा के आगे आई । राजा ने कहा, हे भगवन्! तुमको शोक कैसे हुआ है? ऐसा कौन कष्ट तुमको स्वर्ग में हुआ है? सब दुःखों का नष्ट करनेवाला ज्ञान है, जो तुम ऐसे ज्ञानवानों को शोक हो तो और की क्या बात कहनी है । हे मुनि! तुमको दुःख का कारण कोई नहीं, तुम क्यों शोकवान् होते हो तो और तुमको कौन अनिष्ट प्राप्त हुआ है? तब कुम्भज ने कहा, हे राजन्! मुझे एक दुःख है सो कहता हूँ जो मित्र पूछे तो सत् ही कहा चाहिये और दुःख भी नष्ट होता है जैसे मेघ जड़ और श्याम होता है और उसका सज्जन जो है क्षेत्र और पृथ्वी तिसके ऊपर वह वर्षा करता है तो इसकी जड़ता और श्यामता नष्ट होती है–इससे मैं तुझसे कहता हूँ । हे राजन्! जबतक स्वर्ग में सभा स्थित थी तबतक मैं नारद के पास रहा और जब सभा उठी तब नारदमुनि भी उठे और मुझसे कहा कि जहाँ तेरी इच्छा हो तहाँ जा और मैं भी जाता हूँ–क्योंकि नारद एक ही ठौर में नहीं ठहरते विश्व में घूमते फिरते हैं ।तब मैं आकाश को चला तो एक ठौर सूर्य से मिलाप हुआ और मेघ के मार्ग से तीक्ष्ण वेग से चला जैसे नदी परवत से तीक्ष्ण वेग से आती है तैसे ही मैं तीक्ष्ण वेग से चला आता था– तो देखा कि दुर्वासा ऋषीश्वर महामेघ की नाईं श्यामवस्त्र पहिरे हुए और भूषण संयुक्त जैसे बिजली का चमत्कार होता है उड़े आते हैं । भूषणों का चमत्कार देखकर मैंने दण्डवत् करके कहा, हे मुनीश्वर! तुमने क्या रूप धारा है जो स्त्रियों की नाईं भासता है? दुर्वासा ने तब रुष्ट होकर मुझसे कहा, हे ब्रह्मा के पौत्र! तू कैसा वचन

www.tantrik-astrologer.in

कहता है? ऐसा वचनमुनीश्वर प्रति कहना उचित नहीं । हम क्षेत्र हैं, जैसा बीज क्षेत्र में बोइये तैसा उगता है; तूने मुझे स्त्री कहा है इससे तू भी स्त्री होजा और रात्रि को तेरे सब अंग स्त्री के होवेंगे । हे मुनीश्वर! जो कल्याणकृत ज्ञानवान पुरुष हैं उनमें नम्रता होती है जैसे फल संयुक्त वृक्ष नम्र होता है तैसे ही ज्ञानी भी नम्र होता है-ऐसा वचन तुझे कहना न चाहिये । हे राजन्! ऐसे सुनकर मैं तेरे पास चला आया हूँ और मुझे लज्जा आती है कि स्त्री का शरीर धारे देवताओं के साथ मैं कैसे बिचरूँगा-यही मुझको शोक है राजा ने कहा, क्या हुआ जो दुर्वासा ने कहा और स्त्री का शरीर हुआ? तुम तो शरीर नहीं, निर्लेप आत्मा हो? हे मुनीश्वर! तुम अपनी समता में स्थित रहते हो । ज्ञानवान् पुरुष को हेयोपादेय किसी का नहीं रहता वह तो अपनी समता में स्थिर रहता है? तब कुम्भज ने कहा,हे राजन्! तू सत्य कहता है । मुझे क्या दुःख है? जो शरीर का प्रारब्ध है सो होता है ।यह ईश्वर की नीति है कि जबतक शरीर होता है तब तक शरीर के स्वभाव भी रहते हैं । शरीर का स्वभाव त्याग करना भी मूर्खता है । जिस स्थान में ज्ञान की प्राप्ति हो उसी चेष्टा में बिचरिये और इन्द्रियों का रोकना और मन से विषय की चिन्तना करना भी मूर्खता है । इन्द्रियों और देह की चेष्टा ज्ञानवान् भी करते हैं परन्तु उसमें बन्धवान् नहीं होते । इन्द्रियाँ विषय में बर्तती हैं । ईश्वर की आदि नीति इसी प्रकार है । हे राजन्! नीति का त्याग किसी से नहीं किया जाता-इससे नीति का क्यों त्याग करिये । यह नीति है कि जबतक शरीर है तबतक शरीर के स्वभाव भी होते हैं । जैसे जबतक तिल है तबतक तेल भी होता है तैसे ही जबतक शरीर है तबतक शरीर के स्वभाव भी होते हैं । जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे देह और इन्द्रियों से चेष्टा भी करते हैं परन्तु बन्धायमान नहीं होते- और अज्ञानी बन्धायमान होते हैं चेष्टा ज्ञानी भी करते हैं । जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि जो ज्ञानवान् हैं वे सर्वचेष्टा भी करते हैं परन्तु बन्धायमान किसी में नहीं होते । हे राजन् तैसे जो अनिच्छित आ प्राप्त हो और जिसको शास्त्र प्रमाण करे उसको भोगने में दूषण कुछ नहीं । राजा बोले, हे भगवन्! ज्ञानवान् का दूषण कुछ नहीं । जो सत्ता समान में स्थित है उसे दूषण कुछ नहीं होता । अज्ञानी शरीर के दुःख अपने में देखता है उससे दुःखी होता है और ज्ञानवान् शरीर के दुःख अपने में नहीं देखता । हे रामजी! ऐसे कहते सूर्य अस्त हुआ तब राजा और कुम्भज दोनों ने सायंकाल में सन्ध्या करके जाप किया और जब रात्रि हुई, तारागण निकले और सूर्यमुखी कमलों के मुख मूँद गये तब कुम्भज ने कहा, हे राजन्! देख कि मेरे शिर के बाल बढ़ते जाते हैं, वस्त्र भी टखने तक हो गये और स्तन भी स्त्री की नाईं है । निदान चुड़ाला महासुन्दर स्त्री लक्ष्मी की नाईं हो गई और उसको देखकर राजा को एक मुहूर्त शोक रहा उसके उपरान्त सावधान होकर बोला, हे मुनि! क्या हुआ जो तेरा शरीर स्त्री का हुआ? तुमतो शरीर नहीं आत्मा हो-इससे शोक क्यों करते हो? तुम अपना सत्ता समान में स्थित रहो जब रात्रि हुई तो रानी ने महा सुन्दररूप धर के फूलों की शय्या बिछाई और उस पर दोनों इकट्ठे सोये । हे रामजी! समस्त रात्रि उनको कोई फुरना न फुरा और सत्ता समान में दोनों स्थित रहे और मुख से कुछ न बोले । जब प्रातःकाल हुआ तब फिर रानी ने कुम्भज का शरीर धार कर स्नान किया और गायत्री आदि जो कर्म हैं सो किये । इसी प्रकार चुड़ाला रात्रि को स्त्री बन जावे और दिन को कुम्भज पुरुष का शरीर धारे । जब कुछ काल ऐसे बीता तब दोनों वहाँ से चलकर सुमेरु पर्वत के ऊपर गये और मन्दराचल और अस्ताचल पर्वत आदि सब सुख दुःख के स्थानों को देखा पर एक दृष्टि को लिये रहे न कोई हर्षवान् हुआ और न शोकवान् ज्यों के त्यों रहे । जैसे पवन से सुमेरु पर्वत चलायमान नहीं होता तैसे ही शुभ अशुभ स्थानों में वे समान रहे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजस्त्रीप्राप्तिर्नाम द्वयशीतितमस्सर्गः ।।82।।

www.tantrikastrologer.in

अनुक्रम

विवाहलीला वर्णन

इतना कहकर वशिष्ठजी बोले हे रामजी! इस प्रकार बिचरते बिचरते वे मन्दराचल पर्वत की कन्दरा में पहुँचे तो वहाँ कुम्भजरूप चुड़ाला ने राजा से परीक्षा के निमित्त कहा , हे राजन्! जब मैं रात्रि को स्त्री होती हूँ तब मुझे भर्ता के भोगने की इच्छा होती है, क्योंकि ईश्वर की नीति ऐसी ही है कि स्त्री को अवश्यमेव पुरुष चाहिए । जो उत्तम कुल का पुरुष होता है उसको कन्या विवाह करके पिता देता है अथवा जिसको स्त्री चाहे उसको आप देख ले-इससे हे राजन्! मुझे तुझसे अधिक कोई नहीं दृष्टि आता । तू ही मेरा भर्ता है और मैं तेरी स्त्री हूँ । तू मुझे अपनी भार्या जानकर जो कुछ स्त्री पुरुष चेष्टा करते हैं सो किया कर । मेरी अवस्था भी यौवन है और तू भी सुन्दर है । ज्ञानवान अनिच्छित प्राप्त हुए का त्याग नहीं करते । यद्यपि मुझको इच्छा न हो तो भी ईश्वर की नीति इसी प्रकार है उसके उल्लंघन से क्या सिद्ध होगा? जो अपने स्वरूपसत्ता में स्थित है उसको ग्रहण त्याग की इच्छा नहीं, परन्तु जो नीति है वह करनी चाहिये । राजा बोला, हे साधु! जो तेरी इच्छा है सो कर मुझको तो तीनों जगत् आकाशरूप भासते हैं । मुझे प्राप्त होने से कुछ सुख नहीं और अप्राप्ति में दुःख नहीं और न कुछ हर्ष शोक है । जो तेरी इच्छा हो सो कर । कुम्भज बोले, हे राजन्! आज ही पूर्णमासी का भला दिन है और मैंने आगे से लग्न भी गिन रक्खा है इससे मन्दराचल पर्वत की कन्दरा में बैठकर विवाह करो । निदान राजा और कुम्भज दोनों उठे और जो कुछ सामग्री शास्त्र की रीति से थीं वे इकट्ठी कर दोनों ने गंगा में स्नान किया । वस्त्र, फूल, फल आदि जो विवाह की सामग्री हैं सो कल्पवृक्ष से लेकर दोनों ने फल भोजन किये और सूर्य अस्त हुआ तो दोनों ने सन्ध्योपासनकर कुम्भज ने राजा को दिव्य वस्त्र और भूषण पहिनाये और शिर पर मुकुट रक्खा । फिर कुम्भज ने अपना शरीर त्यागकर स्त्री का शरीर धारण किया और राजा से बोला हे राजन्! अब तू मुझे भूषण पहिरा । तब राजा ने सम्पूर्ण भूषण फूल और वस्त्र उसे पहिराये और वह पार्वती की नाईं सुन्दर बनी । तब चुड़ाला ने कहा, हे राजन्! मैं अब तेरी स्त्री हूँ और मेरा नाम मदनिका है और तू मेरा भर्ता है मुझे तू कामदेव से भी सुन्दर भासता है । वशिष्ठजी बोले हे रामजी! इसी प्रकार चुड़ाला ने बहुत कुछ कहा तो भी राजा का चित्त हर्ष को न प्राप्त हुआ और विराग से शोकवान् भी न हुआ-ज्यों का त्यों रहा । उसके उपरान्त जब विवाह का आरम्भ हुआ तो चन्दन आदि और पास सुवर्ण के कलश रखके देवताओं का पूजन किया और जो शास्त्र की विधि थी वह संपूर्ण करके मंगल किया । फिर रानी ने यह संकल्प किया कि संपूर्ण ज्ञाननिष्ठा तुझे दी और राजा ने संकल्प किया कि सम्पूर्ण ज्ञाननिष्ठा तुझे दी । जब रात्रि एक प्रहर रही तब राजा और रानी ने फूलों की शय्या बिछाके शयन की और आपस में चरचा ही करते रहे मैथुन कुछ न किया प्रातःकाल हुए कुम्भज ने स्त्री का शरीर त्यागकर कुम्भज का शरीर धारा और स्नान संध्यादिक कर्म किये । हे रामजी! इसी प्रकार एक मास पर्यन्त मन्दराचल पर्वत में वे रहे । रात्रि को रानी स्त्री का शरीर धरे और दिन को कुम्भज का शरीर धरे और जब तीसरा दिन हो तब राजा को शयन कराके राज्य की सुधि ले और फिर आकर राजा के पास शयन करे ।

www.tantrik-astrologer.in

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विवाहलीला वर्णनन्नाम त्र्यशीतितमस्सर्गः ||83|

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

मायाशक्रागमन वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे राजन्! जब वहाँ से वे चले तो अस्ताचल पर्वत में जाय रहे और उदयाचल, सुमेरु, केलास इत्यादिक पर्वतों कन्दरों और वनों में रहे । कहीं एक मास कहीं दश मास, कहीं पाँच दिन कहीं सप्तदिन रहे । इसी तरह जब एक वन में आये तब रानी ने विचार किया कि इतने स्थान राजा को दिखाये तो भी इसका चित्त किसी में बन्धवान् नहीं हुआ इससे अब और परीक्षा लूँ । ऐसे विचारकर उसने अपनी ऐसी माया फैलाई कि तैंतीस कोटि देवता संयुक्त इन्द्र के आगे किन्नर गन्धर्व, सिद्ध और अप्सरा नृत्य करती आई । सर्वसामग्री संयुक्त इन्द्र को देखकर राजा उठा और बहुत प्रीति संयुक्त उसकी पूजा करके बोला, हे त्रैलोक्य के पति! तुम किसलिये वन में आये हो सो कहो? इन्द्र ने कहा, हे राजन्! जैसे पक्षी ऊर्ध्व में उड़ता है और उसकी पेटी में तागा होता है- उससे उड़ता हुआ भी नीचे आता है, तैसे ही हम ऊर्ध्व के वासी तेरे तप और शुभ लक्षणों के तागेरूपी गुणों को श्रवण करके स्वर्ग से खैंचे चले आते हैं-इस प्रकार हमारा आना हुआ है । इससे हे राजन्! तू स्वर्ग को चल और स्वर्ग में स्थित होकर दिव्य भोगों को भोग । ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हो अथवा उच्चैश्रवा घोड़ा जो क्षीरसमुद्र के मथन से निकला है उसपर आरूढ़ होकर चल । अणिमा, महिमा, गरिमा आदि आठ सिद्धियाँ भी विद्यमान हैं जो इच्छा हो सो लो और स्वर्ग में चलो । हे राजन्! तुम तत्त्ववेत्ता हो, तुमको ग्रहण त्याग करना कुछ नहीं रहा परन्तु जो अनिच्छित प्राप्त हो उसका त्याग करना योग्य नहीं- इससे स्वर्ग में चलो । राजा बोले, हे देवराज! जाना तहाँ होता है जहाँ आगे न हुआ हो और जहाँ आगे ही हो वहाँ कैसे जावे? हे देवराज! हमको सब स्वर्ग ही दृष्टि आता है । जो वहाँ स्वर्ग हो और यहाँ न हो तो जाना भी उचित है परन्तु जहाँ हम बैठे हैं वहाँ ही स्वर्ग भासता है, इससे हम कहाँ जावें? हमको तीनों स्वर्ग दृष्टि आते हैं और सदा स्वर्गरूप जो आत्मा है हम उसी में स्थित हैं । हमको सर्वथा स्वर्ग भासता है और हम सदा तृप्त और आनन्दरूप हैं । इन्द्र बोले, हे राजन! जो स्थित पूर्णबोध हैं वे भी यथाप्राप्त भोगों को सेवते हैं तो तुम क्यों नहीं सेवते? ऐसे जब इन्द्र ने कहा तब राजा त्यों ही कहकर चुप हो गया । फिर इन्द्र ने कहा भला जो तुम नहीं आते तो हमहीं जाते हैं । तुम्हारा और कुम्भज का कल्याण हो । हे रामजी! ऐसे कहकर इन्द्र उठ खड़ा हुआ और चला पर जबतक दृष्टि आता था तब तक देवता भी साथ दीखते थे फिर जब दृष्टि से अगोचर हुए तब अन्तर्धान हो गये । जैसे समुद्र से तरंग उठ कर फिर लीन हो जाते हैं और जाना नहीं जाता कि कहाँ गये, तैसे ही इन्द्र अन्तर्धान हो गया । वह इन्द्र कुम्भजरूप चुड़ाला के संकल्प से उठा था जब संकल्प लीन हुआ तब अन्तर्धान हो गया और चुड़ाला ने देखा कि ऐसे ऐश्वर्य, सिद्ध और अप्सराओं के प्राप्त भये भी राजा का चित्त समता में रहा और किसी पदार्थ में बन्धवान् न हुआ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मायाशक्रागमनवर्णनंन्नाम चतुरशीतितमस्सर्गः ॥84॥

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

मायापिञ्जर वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब चुड़ाला इन्द्र का छल कर चुकी तब विचारने लगी कि ऐसा चरित्र मैंने राजा के मोहने के निमित्त किया तो भी राजा किसी में बन्धायमान न हुआ और ज्यों का त्यों ही रहा । बड़ा कल्याण हुआ कि राजा सत्तासमान में स्थित रहा-इससे बड़ा आनन्द हुआ । अब और चरित्र करूँ जिसमें इसको क्रोध और खेद दोनों हों । ऐसे विचारकर राजा की परीक्षा के निमित्त उसने यह चरित्र किया कि जब सायंकाल का समय हुआ तब गंगा के किनारे राजा संध्या करने लगा और कुम्भज वन में रहा और उसमें संकल्प का मन्दिर रचा । जैसे देवताओं की रचना होती है तैसे ही मन्दिर के पास फूलों की एक बाड़ी लगाई और उसमें कल्पवृक्ष आदि नाना प्रकार के फूल फल संयुक्त वृक्ष रचे । एवं संकल्प की शय्या रचकर एक संकल्प का महासुन्दर पुरुष रचा और उसके साथ अंग से अंग लगा और गले में फूलों की माला डाल कामचेष्टा करने लगी । जब राजा संध्या कर चुका तो रानी को देखने लगा पर वह दृष्टि न आई, निदान ढूँढ़ते उस मन्दिर के निकट आया तो क्या देखा कि एक कामी पुरुष के साथ मदनिका सोई हुई है और दोनों कामचेष्टा करते हैं । तब राजा ने विचारा कि भले आराम से दोनों सो रहे हैं इनके आनन्द में विघ्न क्यों कीजिये । हे रामजी! इस प्रकार राजा ने अपनी स्त्री को देखा तो भी शोक वान् न हुआ और क्रोध भी न किया ज्यों का त्यों शान्तपद में स्थित रहा । मन्दिर के बाहर निकलके वहाँ एक सुवर्ण की शिला पड़ी थी उस पर आन बैठा और आधे नेत्र मूँद कर समाधि में स्थित हुआ । दो घड़ी के उपरान्त मदनिका कामी पुरुष को त्यागकर बाहर आई और राजा के निकट आकर अंगों को नग्न किया और फिर वस्त्रों से ढाँपा जैसे और स्त्रियाँ काम से व्याकुल होती हैं तैसे ही चुड़ाला को देखकर राजा ने कहा, हे मदनिका! तू ऐसे सुख को त्यागकर क्यों आई है? तू तो बड़े आनन्द में मग्न थी अब वहीं फिर जा । मुझे तो हर्ष शोक कुछ नहीं मैं ज्यों का त्यों हूँ परन्तु तेरी और कामी पुरुष की प्रीति परस्पर देखी है जगत् में परस्पर ऐसी प्रीति नहीं होती है इससे तू उसको सुख दे वह तुझे सुख दे । तब मदनिका लज्जा से शिर नीचे करके बोली, हे भगवन्! क्षमा करो, मुझ पर क्रोध मत करो, मुझसे बड़ी अवज्ञा हुई है परन्तु मैंने जानके नहीं की जैसे वृत्तान्त है सो सुनो । जब तुम सन्ध्या करने लगे तब मैं वन में आई तो वहाँ एक कामी पुरुष का मिलाप हुआ, मैं निर्बल थी और वह बली था उसने पकड़कर मुझे गोद में बैठाया और जो कुछ भावना थी सो किया । मैंने जो पतिव्रता स्त्री की मर्यादा थी उसके अनुसार उस पर क्रोध किया और उस का निरादर किया और पुकार भी की-ये तीनों पतिव्रता की मर्यादा हैं सो मैंने कीं- परन्तु तुम दूर थे और वह बली था मुझे पकड़ और गोद में बैठाकर जो कुछ भावना थी वह किया । हे भगवन्! मुझमें कुछ दूषण नहीं, इससे तुम क्षमा करके क्रोध न करो । राजा बोले, हे मदनिका! मुझे कदाचित् क्रोध नहीं होता । आत्मा ही दृष्टि आता है तो क्रोध किस पर करूँ? मुझे न कुछ ग्रहण है और न त्याग है तथापि यह कर्म साधुओं से निन्दित है, इससे मैंने अब तेरा त्याग किया है सुख से बिचरूँगा ।हमारा गुरु जो कुम्भज है वह हमारे पास ही है, वह और हमसदा निरागरूप हैं और तू तो दुर्वासा के शाप से उपजी है तुझसे हमारा क्या प्रयोजन है, तू अब उसी के पास जा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मायापिञ्जरवर्णनन्नाम पञ्चाशीतितमस्सर्गः ।।85।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तब मदनिका नाम चुड़ाला ने विचार किया कि बड़ा कार्य हुआ जो राजा आत्मपद को प्राप्त हुआ । ऐसी सिद्धि और ऐश्वर्य देखे और क्रूर स्थान तो भी राजा शुभ अशुभ में ज्यों का त्यों रहा । इससे बड़ा कल्याण हुआ कि राजा को शान्ति प्राप्त हुई और रागद्वेष से रहित हुआ । अब मैं इसे अपना पूर्वरूप चुड़ाला का दिखाऊँ और सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा को जताऊँ । ऐसे विचार कर जब मदनिका शरीर से चुड़ालारूप भूषण और वस्त्रसहित प्रकट हुई तब राजा उसे देखकर महा आश्चर्य को प्राप्त हुआ और ध्यान में स्थित होकर देखा कि यह चुड़ाला कहाँ से आई है । फिर पूछा, हे देवि! तू कहाँसे आई है? तुझे देखकर तो मैं आश्चर्य को प्राप्त हुआ हूँ क्योंकि ऐसी मेरी स्त्री चुड़ाला थी । तू यहाँ किस निमित्त आई है और कबकी आई है? चुड़ाला बोली , हे भगवन्! मैं तेरी स्त्री चुड़ाला हूँ और तू मेरा स्वामी है । हे राजन्! कुम्भज से आदि इस चुड़ाला शरीरपर्यन्त सब चरित्र मैंने तेरे जगाने के निमित्त किये हैं । तू ध्यान में स्थित होकर देख कि ये चरित्र किसने किये हैं? मैंने अब पूर्व का चुड़ाला का शरीर धारा है । हे रामजी! जब ऐसे चुड़ाला ने कहा तब राजा ध्यान में स्थित होकर देखने लगा और एक मुहूर्तपर्यन्त स्थित रहकर सब वृत्तान्त देख लिया । उसके उपरान्त राजा ने आश्चर्य को प्राप्त होकर नेत्र खोले और रानी को कण्ठ से लगाकर मिला । निदान दोनों ऐसे हर्ष को प्राप्त हुए जो सहस्त्र वर्ष पर्यन्त शेषनाग उस सुख को वर्णन करें तो भी न कह सकेंगे । वे ऐसे सत्तासमान में स्थित होकर शान्ति को प्राप्त हुए जिसमें क्षोभ कदाचित नहीं । राजा और रानी दोनों कण्ठ लगके मिले थे इससे अंगों में उष्णता उपजी थी इस कारण शनैः शनैः करके उन्होंने अंग खोले और हर्षवान् होकर राजा की रोमावलि खड़ी हो आई और नेत्रों से जल चलने लगा । ऐसी अवस्था से राजा बोला, हे देवि! मुझपर तूने बड़ा अनुग्रह किया है । तेरी स्तुति मैं नहीं कर सकता । जो कुछ संसार के पदार्थ हैं वे सब मायामय और मिथ्या है । तूने मुझे सत्पद को प्राप्त किया है इससे मैं तेरी क्या प्रशंसा करूँ । हे देवि! मैंने अब जाना है कि मैंने राज्य का त्याग किया है और इस चुड़ाला के शरीरपर्यन्त सब तेरे ही चरित्र हैं । तूने मेरे वास्ते बड़े कष्ट सहे और बड़े यत्न किये । आना और जाना, शरीर का स्वांग धारना और उड़ना इत्यादिक तूने बड़ा कष्ट पाया है और बड़े यत्न से मुझे संसारसमुद्र से पार करके बड़ा उपकार किया । तू धन्य है और जितनी देवियाँ अरुन्धती, ब्रह्माणी, इन्द्राणी, पार्वती, सरस्वती और श्रेष्ठकुल की कन्या और पति व्रता है उन सबसे तू श्रेष्ठ है । जिस पुरुष को पतिव्रता प्राप्त होती है उसके सब कार्य सिद्ध होकर बुद्धि शान्ति, दया, शक्ति कोमलता और मैत्री प्राप्त होती है । हे देवि! मैं तेरे प्रसाद से शान्तपद को प्राप्त भया हूँ । अब मुझे कोई क्षोभ नहीं और ऐसा पद शास्त्रों और तप से भी नहीं मिलता । चुड़ाला बोली, हे राजन्! तू काहे को मेरी स्तुति करता है मैंने तो अपना कार्य किया है । हे राजन्! तू राज्य का त्यागकर वन में मोह अर्थात् अज्ञान को साथ ही लिये आया था इससे नीच स्थान में पड़ा । जैसे कोई गंगाजल त्याग कर कीचड़ के जल का अंगीकार करे तैसे ही तूने आत्मज्ञान और अक्रियपद का त्यागकर तप को अंगीकार किया था । जब मैंने देखा कि तू कीचड़ में गिरा है तो मैंने तेरे निकालने के लिये इतने यत्न किये हैं । हे राजन् मैंने अपना कार्य किया है । राजा बोले हे देवि! मेरा यही आशीर्वाद है कि जो कोई पतिव्रता स्त्री हों वे सब ऐसे कार्य करें जैसे तूने किये हैं । जो पतिव्रता स्त्री से कार्य होता है वह और से नहीं होता । हे देवि, अरुन्धती आदि जितनीपतिव्रता स्त्रियाँ हैं उनमें तू प्रथम गिनी जायगी । मैं जानता हूँ कि ब्रह्मा जी ने क्रोधकर तुझे इस निमित्त उपजाया है कि अरुन्धती आदि देवियों ने जो गर्व किया होगा उस गर्व

www.tantrikastrologer.in

को मिटावें । इससे, हे देवि! तू धन्य है । तूने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया है । हे देवि! तू फिर मेरे अंग से लग । तूने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है । हे रामजी । ऐसे कहकर राजा ने रानी को फिर कण्ठ लगाया । जैसे नेवला और नेवली मिलें और मूर्ति की नाईं लिखे हों । चुड़ाला बोली, हे भगवन्! एक तो मुझसे यह कह कि ज्ञानरूप आत्मा के अंश में जगत् लीन हो जाते हैं, ऐसा तू है सो आपको अब क्या जानता है? अब तू कहाँ स्थित है? राज्य तुझे कुछ दिखाई देता है वा नहीं और अब तुझे क्या इच्छा है? शिखरध्वज बोले, हे देवि! जो स्वरूप तूने ज्ञान से निश्चय किया है वही मैं आपको जानता हूँ और शान्तरूप हूँ । इच्छा अनिच्छा मुझको कोई नहीं रही-केवल शान्त रूप हूँ हे देवि! जिस पद की अपेक्षा करके ब्रह्मा , विष्णु और रुद्र की मूर्तियाँ भी शोकसंयुक्त भासती हैं उस पद को मैं प्राप्त भया हूँ, जहाँ कोई उत्थान नहीं, जो निष्किंचन है और जिसमें किंचिन्मात्र भी जगत् नहीं । मैं जो था वही हुआ हूँ, इससे और क्या कहूँ । हे देवि! तूने संसार समुद्र से मुझे पार किया है इससे तू मेरी गुरु है । ऐसे कहकर राजा चुड़ाला के चरणों पर गिर पड़ा और बोला मुझे अज्ञान कदाचित् स्पर्श न करेगा; जैसे ताँबा पारस के संग से सुवर्ण होकर फिर ताँबा नहीं होता, तैसे ही मैं तेरे प्रसाद से मोहरूपी कीचड़ से निकला हूँ और फिर कदाचित् न गिरुँगा । अब मैं इस जगत् के सुख दुःख से तुष्ट हुआ ज्यों का त्यों स्थित हूँ और रागद्वेष के उठानेवाला चित्त मेरा नष्ट हो गया है । अब मैं प्रकाशरूप अपने आपमें स्थित हूँ । जैसे जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है और जल के नष्ट हुए प्रतिबिम्ब भी सूर्यरूप होता है, तैसे ही मेरा चित्त भी आत्मरूप हुआ है ।अब मैं निर्वाण पद को प्राप्त हो सबसे अतीत हुआ हूँ और सबमें स्थित हूँ । जैसे आकाश सब पदार्थों में स्थित है और सब पदार्थों से अतीत है, तैसे ही मैं भी हूँ । `अहं' `त्वं' आदिक शब्द मेरे नष्ट हुए हैं और मैं शान्ति को प्राप्त हुआ हूँ, अब मुझमें ऐसा तैसा शब्द कोई नहीं मैं अद्वैत और चिन्मात्र हूँ और न सूक्ष्म हूँ, न स्थूल हूँ । चुड़ाला बोली, हे राजन! जो तू ऐसे स्थित हुआ है तो तू अब क्या करेगा और तुझे अब क्या इच्छा है? राजा बोले हे देवि! न मुझे कुछ अंगीकार करने की इच्छा है और न त्याग करने की इच्छा है, जो कुछ तू कहेगी सो करूँगा । तेरे कहने को अंगीकार करूँगा और जैसे मणि प्रति बिम्ब को ग्रहण करती है तैसे ही मैं तेरे वचनों को ग्रहण करूँगा । चुड़ाला बोली, हे प्राणपति, हृदय के प्रियतम राजा! अब तू विष्णु हुआ है । यह बड़ा उत्तम कार्य हुआ है कि तेरी इच्छा नष्ट हुई है । हे राजन्! अब उचित है कि तू और हम मोह से रहित होकर अपने प्राकृत आचार में बिचरें । अखेद जीवन्मुक्त होकर अपने प्राकृत आचार को त्यागेंगे तो और किसी को ग्रहण करेंगे । इससे हम अपने आचार में बिचरते हैं और भोग मोक्ष दोनों को भोगते हैं । हे रामजी! ऐसे परस्पर विचार करते दिन व्यतीत हुआ और सायंकाल की संन्ध्या राजा ने की । फिर शय्या को आरम्भ किया उस पर दोनों सोये और रात्रिभर परस्पर चर्चा ही करते एकक्षण की नाईं रात्रि बिताई!

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे षडशीतिततमस्सर्गः ।।86।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

शिखरध्वजचुड़ालाख्यान

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब ऐसे रात्रि व्यतीत होकर सूर्य की किरणें फैली और सूर्यमुखी कमल खिल आये तब राजा ने स्नान का आरम्भ किया और चुड़ाला ने मन के संकल्प से रत्नों की मटकी रच हाथ में ली और उसमें गंगादिक सम्पूर्ण तीर्थों का जल डाला और राजा को स्नान कराके शुद्ध किया तब राजा ने संध्यादिक सब कर्म किये । तब चुड़ाला ने कहा, हे राजन्! मोह का नाश करके सुख से ही अपने राज्य कार्य करने चाहिये कि जिससे सुख भोगें । राजा बोले, हे देवि! जो तुझे सुख भोगने की इच्छा हो तो स्वर्ग में भी हमारा राज्य है और सिद्धलोक में भी हमारा राज्य है इससे स्वर्ग में ही विचरें? चुड़ाला बोली, हे राजन् । हमको न सुख भोगने की इच्छा है, न त्यागने की इच्छा है, हम तो ज्यों के त्यों हैं । इच्छा और अनिच्छा तब होती है जब आगे कुछ पदार्थ भासता है पर हमको तो केवल आत्मा दृष्टि आता है, स्वर्ग कहाँ और नरक कहाँ हम सदा एक रस स्थित है । हे राजन्! यद्यपि हमको कुछ भेद नहीं तो भी जब तक शरीर का प्रारब्ध है तब तक शरीर रहता है इससे चेष्टा भी होनी चाहिये और की चेष्टा करने से अपने प्राकृत आचार को न कीजिये कि रागद्वेष से रहित होकर अपने राज्य को भोगें? इससे अब उठो और अष्टवसु के तेज को धारकर राज्य करने को सावधान हो । राजा ने कहा बहुत अच्छा और अष्टवसु के तेजसंयुक्त हो बोला, हे देवि! तू मेरी पटरानी है और मैं तेरा भर्ता हूँ तो भी तू और मैं एक ही हूँ । राज्य तब होता है जब सेना भी हो इससे सेना भी रच । इतना सुन चुड़ाला ने सम्पूर्ण सेना और हाथी, घोड़े, रथ, नौबत, नगारे, निशान इत्यादि राज्य की सामग्री रची और सब प्रत्यक्ष आगे आन स्थित हुई । नौबत, नगारे, तुरियाँ और शहनाई बजने लगीं और जो कुछ राज्य की सामग्री है वे अपने अपने स्थान में स्थित हुईं राजा के सिर पर छत्र फिरने लगा और राजा और रानी हाथी पर आरूढ़ होकर मन्दराचल पर्वत के ऊपर चले और आगे पीछे सब सेना हुई । राजा ने जिस जिस ठौर पर तप किया था सो रानी को दिखाता गया कि इस स्थान में इतने काल रहा हूँ । इसमें इतना रहा हूँ । ऐसे दिखाते दिखाते तीक्ष्ण वेग से चले । मन्त्री, पुरवासी और नगरवासी राजा को लेने आये और बड़े आदरसंयुक्त पूजन किया । इस प्रकार दोनों अपने मन्दिर पहुँचे और आठदिन तक राजा से लोकपाल और मण्डलेश्वर मिलने को आते रहे । इसके उपरान्त राजसिंहासन पर बैठकर दोनों राज्य करने लगे और समदृष्टि को लिये दश सहस्त्र वर्ष तक राज्य किया फिर चुड़ाला संयुक्त जीवन्मुक्त होकर विचरे और दोनों विदेहमुक्त हुए । हे रामजी! दश सहस्त्र वर्ष पर्यन्त राजा और चुड़ाला ने राज्य किया और दोनों सत्तासमान में स्थित रहे । किसी पदार्थ में वे रागवान् न हुए और किसी से द्वेष भी न किया ज्यों के त्यों शान्तपद में स्थित रहे । जितनी राज्य की चेष्टा हैं सो करते रहे परन्तु अन्त में किसी में बन्धवान् न हुए-केवल आत्मपद में अचल रहे । फिर राजा और चुड़ाला विदेहमुक्त हुए-जैसे आपको जानते थे उसी के बल परमाकाश अक्षोभपद में जाय स्थित हुए और जैसे तेल बिना दीपक निर्वाण होता है तैसे ही प्रारब्धवेग के क्षय हुए निर्वाणपद में प्राप्त हुए । हे रामजी! जैसे शिखरध्वज और चुड़ाला जीवन्मुक्त होकर भोगों को भोगते विचरे हैं तैसे ही तुम भी रागद्वेष से रहित होकर बिचरो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजचुड़ालाख्यानसमाप्तिर्नाम सप्ताशीतितमस्सर्गः ||87||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

बृहस्पति बोधन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शिखरध्वज का सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा, ऐसी दृष्टि का आश्रय करो जो पाप को नाश करती है और उस दृष्टि के आश्रय से जिस मार्ग शिखरध्वज तत्पद को प्राप्त हुआ और जीवन्मुक्त होकर राज्य व्यवहार करता रहा तैसे ही तुम भी तत्पद का आश्रय करो और उसी के परायण हो आत्मपद को पाकर भोग और मोक्ष दोनों भोगो । इसी प्रकार बृहस्पति का पुत्र कच भी बोधवान् हुआ है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जिस प्रकार बृहस्पति का पुत्र कच बोधवान् हुआ है सो भी संक्षेप से कहिये वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कच बालक जब अज्ञात अवस्था को त्यागकर पद पदार्थ को जानने लगा तब उसने अपने पिता बृहस्पति से प्रश्न किया कि हे पिता! इस संसार पिंजरे से मैं कैसे निकलूँ? जितना संसार है वह जीवत्व से बाँधा हुआ है-जीवत्व अनात्मदेहादिकों में मिथ्या अभि मान करने को कहते हैं जिसमें `अहं' `त्वं' माना जाता है उस संसार से कैसे मुक्त होऊँ? बृहस्पति बोले, हे तात! इस अनर्थरूप संसार से जीव तब मुक्त होता है जब सबका त्याग करता है । सर्वत्याग किये बिना मुक्ति नहीं होती, इससे तू सर्व त्याग कर कि मुक्त हो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पति ने कहा तब कच ऐसे पावन वचनों को सुन ऐश्वर्य का त्याग कर वन को गया और एक कन्दरा में स्थित होकर तप करने लगा । हे रामजी! बृहस्पति को कच के जाने से कुछ खेद न हुआ, क्योंकि ज्ञानवान् पुरुष संयोग वियोग में समभाव रहते हैं और हर्षशोक को कदाचित् प्राप्त नहीं होते । जब आठ वर्ष पर्यन्त उसने तप किया तब बृहस्पति ने जाकर देखा कि कच एक कन्दरा में बैठा है तब वह कच के पास आन स्थित हुआ और कच ने पिता का पूजन गुरु की नाईं किया । बृहस्पति ने कच को कण्ठ लगाया और कच ने गद्गदवाणी सहित प्रश्न किया, हे पितः! आठ वर्ष बीते हैं कि मैंने सर्वत्याग किया है तो भी शान्ति को नहीं प्राप्त हुआ? जिससे मुझे शान्ति हो सो कहो । बृहस्पति ने कहा, हे तात! सर्वत्यागकर कि तुझे शान्ति हो । ऐसे कहकर बृहस्पति उठ खड़ा हुआ और आकाश को चला गया । हे रामजी! जब ऐसे बृहस्पति कहकर चला गया तब कच आसन और मृगछाला को त्याग कर वन को चला और एक कन्दरा में जाकर स्थित हुआ । तीन वर्ष वहाँ व्यतीत हुए तो फिर बृहस्पति आये और देखा कि कच स्थित है । तब कच ने भली प्रकार गुरु की नाईं उनका पूजन किया और बृहस्पति ने कच को कण्ठ लगाया । तब कच ने कहा; हे पितः! अब तक मुझे शान्ति नहीं हुई और मैंने सर्वत्याग भी किया, क्योंकि अपने पास कुछ नहीं रक्खा । इससे जिस करके मेरा कल्याण हो वही कहो । बृहस्पति ने कहा, हे तात! अब भी सर्वत्याग नहीं हुआ, सबके कारणप्रद चित्त का जब त्याग करेगा तब सर्वत्याग होगा, इससे चित्त का त्याग कर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे कहकर जब बृहस्पति आकाश को चले गये-तब कच विचारने लगा कि पिता ने सर्वपद चित्त को कहा है सो चित्त क्या है । प्रथम वन के पदार्थों को देखकर विचारने लगा कि यह चित्त है, फिर देखा कि यह भिन्न भिन्न है इससे यह चित्त नहीं और नेत्र भी चित्त नहीं, क्योंकि नेत्र श्रवण नहीं और श्रवण नेत्रों से भिन्न हैं और श्रवण भी चित्त नहीं । इसी प्रकार सर्व इन्द्रियाँ चित्त नहीं क्योंकि एक दूसरे का अभाव है इससे चित्त क्या है जिसको जानकर त्याग करूँ । फिर विचार किया कि पिता के पास स्वर्ग में जाऊँ । हे रामजी! ऐसे विचारकर उठ खड़ा हुआ और दिगम्बर आकार से आकाश को चला । जब पिता के पास पहुँचा तब पिता का पूजन करके बोला, हे देवताओं के गुरु! चित्त का रूप क्या है? उसका त्याग करूँ । बृहस्पति बोले, हे पुत्र! चित्त अहंकार का नाम है । वह अज्ञान से उपजा है और आत्म ज्ञान से इसका नाश होता है । जैसे रस्सी के अज्ञान से

www.tantrik-astrologer.in

सर्प भासता है और रस्सी के जानने से सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है इससे अहंभाव का त्यागकर और स्वरूप में स्थित हो कच बोले, हे पितः! अहंभाव का त्याग कैसे करूँ `अहं' तो मैं ही हूँ फिर अपना त्याग करके स्थित कैसे होऊँ । इसका त्याग करना तो महाकठिन है । बृहस्पति बोले, हे तात अहंकार का त्याग करना तो महासुगम है । फूल के मलने में और नेत्रों के खोलने और मूँदने में भी कुछ यत्न है परन्तु अहंकार के त्यागने में कुछ यत्न नहीं । हे पुत्र अहंकार कुछ वस्तु नहीं, भ्रम से उठा है । जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पता है, रस्सी में सर्प भासता है, मरुस्थल में जल की कल्पना होती है और आकाश में भ्रम से दो चन्द्रमा भासते हैं, तैसे ही परिच्छिन्न अहंकार अपने प्रमाद से उपजा है आत्म शुद्ध आकाश से भी निर्मल है और देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित सत्तासामान्य चिन्मात्र है । उसमें स्थित हो जो तेरा स्वरूप है, तू आत्मा है, तुझमें अहंकार कदाचित् नहीं है । हे साधो! आत्मा सर्वदा सर्व प्रकार, सर्व में स्थित है उसमें अहंभाव किंचित् नहीं । जैसे समुद्र में धूलि कदाचित् नहीं तैसे ही उसमें अहंकार कदा चित् नहीं । आत्मा में न एक है और न दो केवल अपने आपमें स्थित है और जो आकार दृष्टि आते हैं वे चित्त के फुरने से हैं । चित्त के नष्ट हुए आत्मा ही शेष रहता है, इससे अपने स्व रूप में स्थित हो जिससे तेरा दुःख नष्ट हो जावे । जो कुछ यह दृष्टि आता है उसमें भी आत्मा है जैसे पत्र , फूल, फल सब बीज से उत्पन्न होते हैं तैसे ही सब आत्मा का चमत्कार है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबोधनन्नामाष्टाशीतितमस्सर्गः ||88||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

मिथ्यापुरुषाकाश रक्षाकरणं

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पति ने उत्तम उपदेश किया तब कच उसे सुनके स्वरूप में स्थित हुआ और जीवन्मुक्त होकर बिचरा । हे रामजी! जैसे कच जीवन्मुक्त होकर बिचरा और निरहंकार हुआ तैसे ही तुम भी निराश होकर बिचरो और केवल अद्वैतपद को प्राप्त हो जो निर्मल और शुद्ध है और जिसमें एक और दो कहना नहीं बनता । तुम उसी पद में स्थित हो । तुममें दुःख कोई नहीं तुम आत्मा हो और तुममें अहंकार नहीं, तुम ग्रहण त्याग किसका करो । जो पदार्थ हो ही नहीं तो ग्रहण त्याग क्या कहिये? हे रामजी! जैसे आकाश के वन में फूल नहीं है तो उसका ग्रहण क्या और त्याग क्या, तैसे ही आत्मा में अहंकार नहीं । जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे अहंकार का ग्रहण और त्याग नहीं करते । मूर्ख को एक आत्मा में नाना आकार भासते हैं इससे किसी का शोक करता है और कहीं हर्ष करता है । तुम कैसे दुःख का नाश चाहते हो? दुःख तो तुम में है ही नहीं तो तुम कैसे नाश करने को समर्थ हुए हो? जो कुछ आकार भासते हैं वे मिथ्या हैं पर उनमें जो अधिष्ठान है वह सत् है, मूर्ख मिथ्या करके सत् की रक्षा करते हैं कि मेरे दुःख नाश हो । रामजी बोले, हे भगवन्! तुम्हारे प्रसाद से मैं तृप्त हुआ हूँ और तुम्हारे वचनरूपी अमृत से अघाया हूँ । जैसे पपीहा एक बूँद को चाहता है और मेघ कृपा करके उस पर वर्षा करके उसको तृप्त करता है तैसे ही मैं तुम्हारी शरण को प्राप्त हुआ था और तुम्हारे दर्शन की इच्छा बूँद की नाईं करता था पर तुमने कृपा करके ज्ञानरूपी अमृत की वर्षा की, उस वर्षा से मैं अघाया हूँ । अब मैं शान्तपद को प्राप्त हुआ हूँ, मेरे तीनों ताप मिट गये हैं और कोई फुरना मुझ में नहीं रहा । तुम्हारे अमृतरूप वचनों को सुनता मैं तृप्त नहीं होता । जैसे चकोर चन्द्रमा को देखकर किरणों से तृप्त नहीं होता, तैसे ही तुम्हारे अमृतरूपी वचनों से मैं तृप्त नहीं होता, इससे एक प्रश्न करता हूँ उसका उत्तर कृपा करके दीजिये । हे भगवन्! मिथ्या क्या है और सत् क्या है जिसकी रक्षा करते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस पर एक आख्यान है सो कहता हूँ कि जिसके सुनने से हँसी आवेगी । आकाश में एक शून्य वन है और उसमें एक मूर्ख बालक है जो आप मिथ्या है और सत्य के रखने की इच्छा करता है कि मैं इसकी रक्षा करूँगा । अधिष्ठान जो सत्य है उसको वह नहीं जानता । मूर्खता करके दुःख पाता है और जानता है कि यह आकाश है, मैं भी आकाश हूँ, मेरा आकाश है, और मैं आकाश की रक्षा करूँगा । ऐसे विचारकर उसने एक दृढ़ गृह इस अभिप्राय से बनाया कि इसके द्वारा आकाश की रक्षा करूँगा । हे रामजी! ऐसे विचार करके उसने गृह की बहुत बनावट की और वह जो किसी ठौर से टूटे तो फिर बना ले । जब कुछ काल इस प्रकार बीता तो वह गृह गिर पड़ा तब वह रुदन करने लगा कि हाय मेरा आकाश नष्ट हो गया । जैसे एक ऋतु व्यतीत हो और दूसरी आवे तैसे ही काल पाकर जब वह गृह गिर गया तो उसके उपरान्त उसने एक कुआँ बनाया और कहने लगा कि यह न गिरेगा, क्योंकि इसकी भली प्रकार रक्षा करूँगा । हे रामजी! इस प्रकार कुयें को बनाकर उसने सुख माना । जब कुछ काल बीता तो जैसे सूखा पात वृक्ष से गिरता है तैसे ही वह कुआँ भी गिर पड़ा और वह बड़े शोक को प्राप्त हुआ कि मेरा आकाश गिर पड़ा और नष्ट हो गया अब मैं क्या करूँगा ऐसे शोकसंयुक्त जब कुछ काल बीता तब उसने एक खाँही बनाई-जैसे अनाज रखने के निमित्त बनाते हैं-और कहने लगा कि अब मेरा आकाश कहाँ जावेगा? मैं अब इसकी भली प्रकार रक्षा करूँगी । ऐसी खाँहीं बनाकर उसने बहुत सुख माना और अति प्रसन्न हुआ पर जब कुछ काल पाकर वह खाँही भी टूट पड़ी, क्यों कि उपजी वस्तु का विनाश होना अवश्य है- तो फिर वह रुदन करने लगा कि मेरा आकाश नष्ट हो गया । जब कुछ काल शोकसंयुक्त

www.tantrikastrologer.in

बीता तो उसने एक घट बनाया और घटाकाश की रक्षा करने लगा । कुछ काल में वह घट भी जब नष्ट हो गया तब उसने एक कुण्ड बनाया और कुंडाकाश की रक्षा करने लगा । कुछ काल के उपरान्त कुण्ड भी नष्ट हो गया तब शोकवान् हो उसने एक हवेली बनाई और कहने लगा कि अब मेरा आकाश कहाँ जावेगा । मैं अब इसकी भली प्रकार रक्षा करूँगा । ऐसा विचारकर, वह बड़े हर्ष को प्राप्त हुआ पर जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब वह हवेली भी गिर पड़ी तो वह दुःख को प्राप्त हो कहने लगा कि हाय! हाय मेरा आकाश नष्ट हो गया और मुझे बड़ा कष्ट हुआ है । हे रामजी! आत्मज्ञान और आकाश के जाने बिना वह मूर्ख बालक इसी प्रकार दुःख पाता रहा । जो आपको भी यथार्थ जानता और आकाश को भी ज्यों का त्यों जानता तो यह कष्ट काहे को पाता ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मिथ्यापुरुषाकाशरक्षाकरणं नामैकोननवतितमस्सर्गः ।।89।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

मिथ्यापुरुषोपाख्यान

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह मिथ्यापुरुष कौन था, जिसकी रक्षा करता था वह आकाश क्या था और जो गृह, कूप आदिक बनाता था सो क्या थे यह प्रकट करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मिथ्यापुरुष तो अहंकार है जो संवेदन फुरने से उपजा है, आकाश चिदाकाश हे उसे वह उपजा जानता है कि मैं आकाश की रक्षा करूँ और गृह, घटादिक जो कहा सो देह हैं। उनमें आत्मा अधिष्ठान है उस आत्मा की रक्षा करने की इच्छा वह मूर्खता से करता है और आपको नहीं जानता कि मेरा स्वरूप क्या है। उसे अपने स्वरूप को न जानने से वह दुःख पाता है आप मिथ्या है और मिथ्या होकर आकाश को कल्पकर रखने की इच्छा करता है अर्थात् देह से देही के रखने की इच्छा करता है कि मैं जीता रहूँ पर देह तो काल से उपजा है-फिर देह के नष्ट होने से शोकवान् होता है और अपने वास्तव स्वरूप को नहीं जानता जिसका नाश कदाचित् नहीं होता ऐसे विचार से रहित क्लेश पाता है। हे रामजी! जिसमें भ्रम उपजा है वह अधिष्ठान असत् नहीं होता। सर्व का अपना आप आत्मा है सो कदाचित् नाश नहीं होता उसमें मूर्खता से अहंकारादि संसार को जीव कल्पता है। अहंकार मन,जीव, बुद्धि, चित्त, माया, प्रकृति और दृश्य ये सब इसके नाम है पर मिथ्या हैं और इसका अत्यन्त अभाव है, अनहोता ही उदय हुआ है और क्षत्रिय, ब्राह्मण इत्यादि वर्ण और गृहस्थादि आश्रम, मनुष्य, देवता, दैत्य इत्यादि की कल्पना करता है। हे रामजी! यह कदाचित हुआ नहीं , न होगा और न किसी काल को है केवल अविचार सिद्ध है और विचार किये से कुछ नहीं रहता। जैसे रस्सी के अज्ञान से जीव सर्प कल्पता है और जानने से नष्ट हो जाता है, तैसे ही स्वरूप के प्रमाद से अहंकार उदय हुआ है, तुम्हारा स्वरूप आत्मा है जो प्रकाशरूप, निर्मल, विद्या अविद्या के कार्य से रहित, चैतन्यमात्र और निर्विकल्प है। वह ज्यों का त्यों स्थित है अद्वैत है और परिणाम को कदाचित् नहीं प्राप्त होता आत्मतत्त्व मात्र है उसमें संसार और अहंकार कैसे हो? सम्यक््दर्शी को आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता और असम्यक््दर्शी को संसार भासता है, वह पदार्थो को सत् जानता है संसार को वास्तव जानता है अपने वास्तव स्वरूप को नहीं जानता है कि मैं कौन हूँ। जिसके जानने से अहंकार नष्ट हो जाता है। जितनी कुछ आपदा हैं उनकी खानि अहंकार है और सर्वताप अहंकार से ही उत्पन्नहोते हैं उसके नष्ट हुए अपने स्वरूप में स्थित होता है। और विश्व भी आत्मा का चमत्कार है-भिन्न नहीं, जैसे समुद्र में पवन से नाना प्रकार के त रंग और सुवर्ण में नाना प्रकार के भूषण भासते हैं सो वही रूप हैं- भिन्न कुछ नहीं तैसे ही आत्मा से विश्व भिन्न नहीं। सुवर्ण परिणाम से भूषण और समुद्र परिणाम से तरंग होता है पर आत्मा अच्युत है और परिणाम को नहीं प्राप्त होता, इससे समुद्र और सुवर्ण से भी विलक्षण है। आत्मा में संवेदन से चमत्कारमात्र विश्व है सो आत्म स्वरूप है, न कदाचित् जन्मता है, न मृत्यु को प्राप्त होता है, न किसी काल में और न किसी से मृतक होता है ज्यों का त्यों स्थित है। जन्ममृत्यु तो तब हो जब दूसरा हो पर आत्मा तो अद्वैत है। जिसको एक नहीं कह सकते तो दूसरा कहाँ हो इससे प्रत्येक आत्मा अपना अनुभवरूप है उसमें स्थित हो कि दुःख और ताप सब नष्ट हो जावें। वह आत्मा शुद्ध और निराकार है। हे रामजी! जो निराकार और शुद्ध है उसे किससे ग्रहण कीजिये, कैसे रक्षा करिये और किसकी सामर्थ्य है कि उसकी रक्षा करे। जैसे घट के नष्ट हुए तटाकाश नष्ट नहीं होता है तैसे ही देह के नष्ट हुए देही आत्मा का नाश नहीं होता। आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है और जन्ममरण पुर्यष्टका से भासते हैं। जब पुर्यष्टका देह से निकल जाती है तब मृतक भासता है और जब पुर्यष्टका संयुक्त है तब जीवत् भासता है आत्मा सूक्ष्म से सूक्ष्म है और स्थूल से स्थूल

www.tantrik-astrologer.in

है उसका ग्रहण कैसे हो और रक्षा कैसे करिये । स्थूल भी उपदेश के जताने के निमित्त कहते हैं आत्मा तो निर्वाच्य और भाव अभावरूप संसार से रहित है । वह सबका अनुभवरूप है उसमें स्थित होकर अहंकार का त्याग करो और अपने स्वरूप प्रत्यक्ष आत्मा में स्थित हो!

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मिथ्यापुरुषोपाख्यानसमाप्तिर्नाम नवतितमस्सर्गः ||90||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

परमार्थयोगोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार आत्मरूप है और जैसे इसकी उत्पत्ति हुई है सो सुनो । निर्विकल्प शुद्ध आत्मा में चेतन लक्षण मनरूप स्थित हुआ है और आगे उसने जगत् कल्पना की है । जैसे समुद्र में तरंग; सुवर्ण में भूषण, रस्सी में सर्प और सूर्य की किरणों में जलाभास है तैसे ही आत्मा का विवर्त मन है पर आत्मा से भिन्न नहीं । जिसको तरंग का ज्ञान है उसको समुद्रबुद्धि नहीं होती वह तरंग को और जानता है, जिसको भूषण का ज्ञान है वह सुवर्ण नहीं जानता, सर्प के ज्ञान से रस्सी को नहीं जानता तैसे ही नाना प्रकार के विश्व के ज्ञान से जीव परमात्मा को नहीं जानता । जैसे जिस पुरुष ने समुद्र को जाना है कि जल है उसको तरंग और बुद्बुदे भी जल ही भासते हैं जल से भिन्न कुछ नहीं भासता और जिसको रस्सी का ज्ञान हुआ है उसको सर्पबुद्धि नहीं होती, जिसको सुवर्ण का ज्ञान हुआ है उसको भूषणबुद्धि नहीं होती और जिसको किरणों का ज्ञान हुआ है उसको जलबुद्धि नहीं होती ऐसा पुरुष निर्विकल्प है तैसे ही जिस पुरुष को निर्विकल्प आत्मा का ज्ञान हुआ है उसको संसार भावना नहीं होती-ब्रह्म ही भासता है । ऐसा जो मुनीश्वर है वह ज्ञानवान् है । हे रामजी! मन भी आत्मा से भिन्न नहीं । आदि परमात्मा से `अहं' `त्वं' आदिक मन फुरकर उसमें जो अहंभाव हुआ सो उत्थान है । बहिर्मुख होने से अपने निर्विकल्प चिन्मात्र आत्मस्वरूप का प्रमाद हुआ है और उस प्रमाद होने से आगे विश्व हुआ है । मन भी कदाचित् उदय नहीं हुआ, आत्म स्वरूप है इससे उदय हुए की नाईं भासता है । मन और संसार सत् भी नहीं और असत् भी नहीं, जो दूसरी वस्तु हो तो सत् अथवा असत् कहिये पर आत्मा तो अद्वैत ज्यों का त्यों स्थित है और उसका विवर्त मन होकर फुरा है । वही मन कीट है और वही ब्रह्मा है । फिर ब्रह्मा ने मनोराज करके स्थावर जंगम सृष्टि कल्पी है सो न सत्य है और न असत्य है । हे रामजी! सर्वप्रपञ्च मन ने कल्पा है और उसी ने नाना प्रकार के विचार रचे हैं मन, बुद्धि, चित्त अहंकार जीव सब मन के नाम हैं । जब मन नष्ट हो जावे तब न संसार है और न कोई विकार हैं । यदि मन दृश्य से मिलकर कहे कि मैं संसार का अन्त लूँ तो कदाचित् अन्त न पावेगा, क्योंकि संसरना ही संसार है तो फिर संसरने संयुक्त संसार का अन्त कहाँ? अन्त लेनेवाला वाणी से आगे फुरकर देखता है- जैसे कोई पुरुष दौड़ता जावे और कहे कि मैं अपनी परछाहीं का अन्त लूँ कि कहाँ तक जाती है तो हे रामजी! जब तक वह पुरुष चला जावेगा तबतक परछाहीं का अन्त नहीं होता और जब ठहर जाता है तब परछाहीं का अन्त हो जाता है, तैसे ही जबतक फुरना है तबतक संसार का अन्त नहीं होता और जब फुरना नष्ट हो जाता है तब संसार का भी अन्त होता है और आत्मा ही दृष्टि आता है और संसार का अत्यन्त अभाव हो जाता है पर जो स्फूर्त्ति संयुक्त देखेगा तो संसार ही भासेगा । हे रामजी! जिस पदार्थ को मन देखता है वह पदार्थ पूर्व कोई नहीं, चित्त के फुरने से उदय होता है । जब चित्त फुरा कि यह पदार्थ है तब आगे पदार्थ हुआ और फुरने से रहित होकर देखे तो पदार्थ कोई नहीं भासता, केवल शान्तपद है । हे रामजी! अहंकार का त्याग करके यह जो नाना प्रकार की कल्पना है उससे रहित निर्विकल्प ब्रह्मपद में स्थित हो । अहंकार नामरूप से और देह और वर्णाश्रम में माया से कल्पित है । जब उससे रहित होकर देखोगे तब केवल सत्ृचिदानन्द आत्मपद शेष रहेगा और जब उस पद को अपना आप जानोगे तब तुमहीं सर्वात्मा होकर बिचरोगे और तुमको कोई दुःख न रहेगा । हे रामजी! मन ही संसार है और मन ही ब्रह्मा से कीट पर्यन्त है, मन ही सुमेरु है और मन ही तृण है और विश्व रूप होकर स्थित हुआ है और वह भी आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे फल ही में सम्पूर्ण वृक्ष हैं तैसे ही मन आत्मस्वरूप है, आत्मा से

www.tantrik-astrologer.in

भिन्न मन कुछ वस्तु नहीं । ऐसे जानकर आत्मस्वरूप होगे यह जो बन्ध और मोक्ष संज्ञा है इनका त्याग कर, न बन्ध की वाच्छा करो और न मोक्ष की इच्छा करो । इस कल्पना से रहित हो, ऐसे नहीं कि मुक्त हो और यह बन्ध है, केवल सत्तासमान आत्मपद में स्थित हो । यही भावना करो जिसमें तुम्हारा सर्वदुःख नष्ट हो जावे । ऐसा जो पुरुष है उसका चित्भाव नहीं रहता उसको सर्वआत्मा भासता है । जैसे जिस पुरुष ने सूर्य को जाना है उसको किरणें भी सूर्य ही दृष्टि आती हैं तैसे ही जिसको आत्मा का साक्षात्कार हुआ है उसको जगत् भी आत्मस्वरूप भासता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशोनामैकनवतितमस्सर्गः ।।91।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

महाकर्त्राद्युपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! महाकर्त्ता, महाभोक्ता और महात्यागी हो रहे हो और सब शंकाओं को त्यागकर निरन्तर धैर्य धारकर स्थित हो । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! महा कर्त्ता, महाभोक्ता और महात्यागी किसे कहते हैं सो कृपा करके कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे प्रश्न एक आख्यान है सो सुनिये । एकसमय सुमेरु पर्वत की उत्तरी दिशा के शिखर से सदाशिवजी आये, जो चन्द्रमा को मस्तक में धारे थे ओर गणों संयुक्त गौरौ बायें अंग में जिनके साथ थीं । तब भृंगीगण ने जोमहातेजवान् था और जिसे आत्म जिज्ञासा उपजी थी हाथ जोड़कर प्रश्न किया कि हे भगवन्! देवों के देव! यह संसार मि थ्या भ्रम है, इसमें मैं सत्य पदार्थ कोई नहीं देखता यह सदा चलरूप भासता है और जो सत् पदार्थ है उसको मं नहीं जानता, मेरे ताप नष्ट नहीं हुए और मैं शान्त नहीं हुआ इससे आपको दुःखी देखता हूँ । जिससे शान्ति हो सो कृपा करके कहो जिसमें खेद से रहित होकर मैं चेष्टा में बिचरूँ पर खेद से रहित होकर मैं चेष्टा में बिचरूँ । पर खेद से रहित तब होता है जब कोई आसरा होती है । संसार तो मिथ्या है मैं किसका आसरा करूँ? इससे मुझसे वह कहिये कि किसका आश्रय किये मेरे दुःख नष्ट हों? ईश्वर बोले, हे भृंगिन! तुम महाकर्त्ता, महाभोक्ता और महात्यागी हो रहो और सर्व शंकाओं को त्यागकर निरन्तर धैर्य का आश्रय करो , इससे तुम्हारे दुःख नष्ट होंगे । हे रामजी! ऐसे भृंगीगण ने जिसको शिवजी ने पुत्र करके रक्खा है श्रवण करके प्रश्न किया है कि हे परमेश्वर! महाकर्त्ता, महा भोक्ता और महात्यागी किसे कहते हैं सो कृपा करके ज्यों का त्यों मुझसे कहिये? ईश्वर बोले, हे पुत्र! सर्वात्मा जो अनुभवरूप है उसका आश्रय करके बिचरो कि दुःख से रहित हो । इन तीनों वृत्तियों से तुम्हारे दुःख नष्ट हो जावेंगे । जो कुछ शुभ क्रिया आ प्राप्त हो उसको शंका त्याग के करे वह पुरुष महाकर्ता है, धर्म अधर्म क्रिया जो अनिच्छित प्राप्त हो उसको रागद्वेष से रहित होकर जो करे वह पुरुष महा कर्त्ता है, जो पुरुष मौनी, निरहंकार, निर्मल और मत्सर से रहित है वह पुरुष महाकर्त्ता है, जो अनिच्छित प्राप्त हुए का त्याग न करे और जो नहीं प्राप्त हुआ उसकी वान्छा नकरे वह पुरुष महाकर्त्ता है, जो पुण्य पाप क्रिया अनिच्छित प्राप्त हों उनको अहंकार से रहित होकर करे, पुण्यक्रिया करने से आपको पुण्यवान् न माने पाप किये से पापी न माने सदा आपको अकर्त्ता जाने वह पुरुष महाकर्त्ता है, जो सर्वत्र में विगतस्नेह है, सत्यवत् स्थित है और निरिच्छित वर्तता है वह महाकर्त्ता है । जो दुःख के प्राप्त हुए शोक नहीं करता और सुख के प्राप्त हुए से हर्षवान् नहीं होता, स्वाभाविक चित्त समता को देखता है वह कदाचित् विषमताको नहीं प्राप्त होता । सुख की जो भिन्न भिन्न विषमता हैं इससे जो रहित है वह पुरुष महाकर्त्ता है और जिस पुरुष ने सुख दुःख का त्याग किया है वह पुरुष महाकर्त्ता है । हे भृंगिन! जो पुरुष प्राप्त हुई वस्तु को रागद्वेष से रहित होकर भोगता है सो महाभोक्ता है और जो बड़ा कष्ट प्राप्त हो उसमें भी द्वेष नहीं करता और बड़े सुख की प्राप्ति में हर्षवान् नहीं होता वह पुरुष महाभोक्ता है । जो बड़े राज्य के सुख भोगने में आपको सुखी नहीं मानता और राज्य के अभाव होने और भिक्षा माँगने में आपको दुःखी नहीं मानता सदा स्वरूप में स्थित है वह महाभोक्ता है । जो मान, अहंकार और चिन्तना से रहित केवल समता में स्थित है वह महाभोक्ता है और जो कोई कुछ दे तो आपको लेनेवाला नहीं मानता और शुभक्रिया में भोक्ता हुआ आपको कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं मानता वह पुरुष महाभोक्ता है । जो मीठा, खट्टा, तीक्ष्ण. सलोना, कटु, छहों रसों के भोगने में समचित्त रहता है और सम जानता है वह महाभोक्ता है । जो रसवान् पदार्थ प्राप्त हुए से हर्षवान् नहीं होता और विरस के प्राप्त हुए द्वेषवान् नहीं होता ज्यों का त्यों रहता है और जैसा बुरा भला प्राप्त हो उस को दुःख से रहित होकर भोगता है वह पुरुष महाभोक्ता है । जो कुछ शुभ, अशुभ, भाव, अभाव क्रिया है

www.tantrik-astrologer.in

उसके सुख दुःख से चलायमान नहीं होता सो पुरुष महाभोक्ता है और जिसको मृत्यु का भय नहीं और जीने की आस्था नहीं और उदय अस्त में समान है वह महाभोक्ता है जो बड़े सुख प्राप्त में हर्षवान् नहीं होता और दुःख की प्राप्ति में शोकवान् नहीं ज्योंका त्यों रहता है वह महाभोक्ता है । जो कुछ अनिच्छित प्राप्त हो उसको करता हुआ अहंकार से जो रहित है वह पुरुष महाभोक्ता है । जो पुरुष शत्रु मित्र और सुहृद में समबुद्धि रखता है और विषमता को कदाचित् नहीं प्राप्त होता वह पुरुष महाभोक्ता है । जो कुछ शुभ अशुभ, दुःख सुख, प्राप्त हो उसको जो धार लेता है कदाचित् विषमता को नहीं प्राप्त होता जैसे समुद्र में नदियाँ प्राप्त होती हैं उनको धारकर वह सम रहता है तैसे ही ज्ञानवान् शुभ अशुभ को धारकर सम रहता है । जो संसार, देह इन्द्रियाँ और अहंकार की सत्ता को त्यागकर स्थित हुआ है और जानता है कि `न मैं देह हूँ', `न मेरी देह है' मैं इनका साक्षी हूँ ऐसी वृत्ति का धारनेवाला महात्यागी है । और जो सर्वचेष्टा करता है और रागद्वेष से रहित है वह महात्यागी है । जो शुभ अशुभ प्राप्त हुए को अहंकार से रहित होकर करता है वह महात्यागी है और जो मन, इन्द्रियाँ और देह की भी इच्छा से रहित हुआ है वह सर्वचेष्टा भी करता है पर महात्यागी है । जो पुरुष समचित्त, इन्द्रियजित् और क्षमावान् है वह महात्यागी है । हे रामजी! जिस पुरुष ने धर्म अधर्म की देह और संसार के मद, मान, मनन इत्यादिक कल्पना का त्याग किया है वह महात्यागी है । हे रामजी! इस प्रकार सदाशिवजी ने जो हाथ में खप्पर लिये, बाघम्बर ओढ़े और चन्द्रमा मस्तक में धारे हुए परम प्रकाशरूप हैं भृंगीगण को उपदेश किया और जैसे भृंगीगण बिचरा तैसे ही तुम भी बिचरो तो तुम्हारे सब दुःख नष्ट होंगे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे महाकर्त्राद्युपदेशोनामद्विनवतितस्सर्गः ||92|

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

कलना निषेध

रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! जो आपने उपदेश किया वह मैं समझ गया । आपने आगे उपशम प्रकरण में उपदेश किया था कि आत्मा अनन्त और शुद्ध है तब मैंने प्रश्न किया था कि जो आत्मा अनन्त और शुद्ध है तो यह कलना कैसे उपजी है- जैसे समुद्र निर्मल है उसमें धूलि कैसे हो- तो आपने प्रतिज्ञा की थी कि इस प्रश्न का उत्तर सिद्धान्तकाल में कहेंगे सो मैं अब सिद्धान्त का पात्र हूँ मुझसे कहिये । जैसे स्त्री भर्त्ता से प्रश्न करती है और भर्त्ता कृपा करके उपदेश करता है तैसे ही मैं आपकी शरण हूँ कृपा करके मुझे उत्तर दीजिये, क्योंकि आशा और तृष्णा के फाँस मेरे टूटे हैं और आशारूपी जाल से मैं निकला हूँ मेरे हृदय से संशयरूपी धूलि उठ गई है उसको वचनरूपी वर्षा से शान्त करो और मेरे हृदय में अन्धकार है उसे वचनरूपी क्रीड़ा से निवृत् करो । आपके वचनरूपी अमृत से मैं तृप्त नहीं होता । हे भगवन् । गुरु के उपदेश किये बिना अपने विचार ज्ञान से नहीं शोभता । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पुरुष शान्तिमान, क्षमावान् और इन्द्रयजित् है और जिसने मन के संकल्प विकल्प को जीता है वह सिद्धान्त का पात्र है । हे रामजी! तुम अब सिद्धान्त के पात्र हो इससे उपदेश करता हूँ । जो पुरुष राग द्वेष सहित क्रिया में स्थित है और इन्द्रियों के सुख से जिसको आराम है वह सिद्धान्त के वाक्य "अहं ब्रह्मास्मि" और "सर्वब्रह्म" को सुनकर भोगों में स्थित होता है-और अधोगति पाता है, क्योंकि उसको निश्चय नहीं होता और उसका हृदय मलिन है इससे इन्द्रियों के सुख करके आपको सुखी मानता है और नीच स्थानों को प्राप्त होता है । जो पुरुष क्षमा आदिक साधनों से पवित्र हुआ है उसको "अहं ब्रह्मास्मि" और "सर्वब्रह्म" के सुनने से शीघ्र ही भावना से आत्मपद की प्राप्ति होती है । तुम जैसे पुरुष क्षमा आदिक साधनों से पवित्र हुए हैं उनको स्वरूप की प्राप्ति सुगम होती है और जिनका अन्तःकरण मलिन है उसको प्राप्त होना कठिन है । जैसे भूने बीज को पृथ्वी में बोइये तो उसका अंकुर नहीं होता तैसे ही इन्द्रियारामी पुरुष को आत्मा की प्राप्ति नहीं होती और तुम सरीखे जिनका हृदय शुद्ध है उनको ज्ञान की प्राप्ति होती है और वे ही इन वचनों को पाकर शोभते हैं । जैसे वर्षाकाल में धान पृथ्वी में वर्षा से शोभा पाते हैं तैसे ही सिद्धान्त के वचनों को पाकर वे ज्ञानरूपी दीपक से प्रकाशते हैं । जो ज्ञानवान् पुरुष ऊँची बाँह करके कहते हैं और सब शास्त्र भी कहते हैं उन सर्व शास्त्रों के सिद्धान्तों को और उनके दृष्टान्तों को मैं जानता हूँ, इससे सर्व सिद्धान्तों का सार कहता हूँ तुम सुनो तो जो तुम्हारा स्वरूप है उसको जानोगे । हे रामजी! जिसको अभ्यास करके एक क्षण भी साक्षात्कार हुआ है वह गर्भ में नहीं आता और उसको सत् असत् में कुछ भेद नहीं होता, संवेदन में भेद है । जैसे जाग्रत और स्वप्न के सूर्य के प्रकाश दोनों समान हैं, जाग्रत में जाग्रत सूर्य का प्रकाश अर्थाकार होता है और स्वप्न में स्वप्न का सूर्य अर्थाकार होता है पर प्रकाश दोनों का सम है और संवित् भिन्न है । स्वप्न को मिथ्या जानता है और जाग्रत को सत् जानता है तो संवेदन में भेद हुआ स्वरूप से भेद कुछ न हुआ । जैसे मन से एक बड़ा पर्वत रचिये तो संकल्प से दीखता है तो संवित् का भेद हुआ स्वरूप दोनों का तुल्य है जैसे समुद्र में तरंग हैं तो स्वरूप से जल और तरंगों का भेद कुछ नहीं पर जिसको जल का ज्ञान नहीं सो तरंग ही जानता है, इससे संवित् में भेद है, तैसे ही स्वरूप में सत् असत् तुल्य हैं । वास्तव में कुछ भेद नहीं, केवल शान्तरूप आत्मा है और शब्द अर्थ संवेदन है । शब्द अर्थात् नाम और अर्थ याने नामी संवेदन (फुरने) से हैं, जब फुरना नष्ट हो जावेगा तब सर्व अर्थ भी आत्मा ही भासेगा । जगत् की सत्ता तबतक है जबतक आत्मा का प्रमाद है और प्रमाद तबतक है जबतक अहंभाव नष्ट हो तब केवल आत्मा शेष रहेगा जो शुद्ध, विद्या-अविद्या के कार्य से रहित और कदाचित् स्पर्श नहीं करता । हे रामजी! अविद्या की दो शक्ति हैं.

www.tantrik-astrologer.in

एक आवरण और दूसरी विक्षेप । आत्मा के न जानने का नाम आवरण है और कुछ जानने को विक्षेप कहते हैं । वह आत्मा सदा ज्ञानरूप है, उसको आवरण कदाचित् नहीं होता और अद्वैत है, उससे कुछ भिन्न नहीं बना-इसी से वह शुद्ध, केवल और ज्ञानमात्र है । हे रामजी! जो आत्ममात्र और चिन्मात्र है और अहं का उत्थान नहीं केवल निर्वाणपद है और जहाँ एक और द्वैत कहना भी नहीं केवल अपने आपमें स्थित है उसमें कलनारूपी धूलि कहाँ हो? रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो सर्वब्रह्म है तो मन, बुद्धि आदिक क्या हैं जिनसे तुम यह शास्त्र उपदेश करते हो? वशिष्ठजी बोले, हे राम जी! व्यवहार के अर्थ शब्द हैं परमार्थ में कोई कल्पना नहीं! यह मन बुद्धि आदि कुछ वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है । जैसे तरंग जल से भिन्न कुछ नहीं । तैसे मनादिक हैं । आत्मतत्त्व नित्य, शुद्ध और सन्मात्र है, नाह की नाईं स्थित है । हे रामजी! ऐसे आत्मा में संसार अविद्या आदिक नाम कैसे हों? आत्मा ब्रह्म है उससे भिन्न कुछ नहीं । वह सर्व का अधिष्ठान, अविनाशी और देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहित है । इसी से ब्रह्म है । हे रामजी! ऐसा जो अपना आना आत्मा है उसी में स्थित हो । यह जगत् जो दृष्टि आता है सो सर्व चिदाकाश है भिन्न नहीं । जैसे स्वप्न में विश्व देखता है सो अनुभवमात्र है तैसे ही जाग्रत विश्व भी आत्मरूप है । ऐसा जो तुम्हार शुद्ध, नित्य उदित और अविनाशीरूप है उसमें जब स्थित होगे तब कलना जो तुमको भासती है सो नष्ट हो जावेगी ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कलनानिषेधो नाम त्रिनवतितमस्सर्गः ||93||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

सन्तलक्षण माहात्म्यवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसार का बीज अहंकार है ।जब अहंकार भाव होता है तब संसार होता है पर अहंकार कुछ वस्तु नहीं भ्रम से सिद्ध हुआ है । जैसे मूर्ख बालक परछाहीं में पिशाच कल्पता है सो पिशाच कुछ वस्तु नहीं उसके भ्रम से होता है तैसे ही अहंकार कुछ वस्तु नहीं स्वरूप के भ्रम से होता है । हे रामजी! जो वास्तव कुछ वस्तु नहीं तो उसके त्यागने में क्या यत्न है? तुम में अहंकार वास्तव नहीं है, तुम केवल शान्त रूप चैतन्यमात्र हो और उसमें अहंभाव होना उपाधि है उससे सुमेरु पर्वत आदिक जगत् बन जाता है सो संवेदनरूप है । चित्तरूपी पुरुष चैतन्य के आश्रय फुरता है और विश्व कल्पता है ।जैसे रस्सी के आश्रय सर्प फुरता है तैसे ही चैतन्य के आश्रय विश्व और चित्त फुरते हैं सो आत्मा से भिन्न नहीं । अहंकार हुए की नाईं हुआ है कि `मैं हूँ' ऐसा जो अहंभाव है सो दुःख की खानि है । सर्व आपदा अहंकार से होती है । जब अहंकार नष्ट होगा तब सब दुःख भी नष्ट होंगे । हे रामजी! जैसे सूर्य के आगे बादल होते हैं तो प्रकाश नहीं होता और जब बादल दूर होते हैं तब प्रकाशवान् भासता है और कमल प्रफुल्लित होते हैं, तैसे ही आत्मरूपी सूर्य को अहंकाररूपी बादल को आवरण हुआ है माया के किसी गुण से मिलकर कुछ आपको मानने को अहंकार कहते हैं । जब अहंकाररूपी बादल नष्ट होगा तब आत्मरूपी सूर्य का प्रकाश होगा और ज्ञानवान्रूपी कमल उस प्रकाश को पाकर बड़े आनन्द को प्राप्त होंगे । हे रामजी! इससे अहंकार के नाश का उपाय करो जो तुम्हारे दुःख नष्ट हो जावें । वह कौन पदार्थ है जो उपाय किये सिद्ध नहीं होता? अहंकार के नाश का उपाय करिये तो वह भी नष्ट हो जाता है । अहंकार के नष्ट करने का यह उपाय है कि सत्शास्त्रों अथवा ब्रह्मविद्या के बारम्बार अभ्यास और सन्त के संग द्वारा कथा की परस्पर चर्चा करने से अहंकार नष्ट हो जाता जाता है । जैसे पानी भरने की रस्सी से पत्थर की शिला घिस जाती है तैसे ही ब्रह्मविद्या के अभ्यास से अहंकार नष्ट होता है, बल्कि शिला के घिसने में तो कुछ यत्न भी है पर अहंकार के त्यागने में कुछ यत्न नहीं । हे रामजी!सदा अनुभवरूप जो आत्मा है उसका विचार करो कि मैं कौन हूँ? इन्द्रियाँ क्या हैं? गुण क्या हैं और संसार क्या है? ऐसे विचार से इनका साक्षीभूत हो कि मुझ में `अहं त्वं' कोई नहीं । इससे तुम अहंकार का नाश करो और शुद्ध हो । मेरा भी आशीर्वाद है कि तुम सुखी हो जाओ । जब अहंकार नष्ट होगा तब कलना कोई न फुरेगी केवल सुषुप्ति की नाईं स्थित होगे । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो आपका अहंकार नष्ट हुआ है तो प्रत्यक्ष उपदेश करते कैसे दिखते हो और जो अहंकार नहीं है तो सर्वशास्त्र और ब्रह्मविद्या कहाँ से उपजे हैं और उपदेश कैसे होता है? उपदेश में तो अन्तःकरण चारों सिद्ध होते हैं । प्रथम जब उपदेश करने की इच्छा होती है तब अहंकार सिद्ध होता है, जब स्मरण होता है कि उपदेश करूँ तब चित्त भी चैत्य सिद्ध होता है, फिर यह उपदेश करिये, यह न करिये ऐसे संकल्प किये से मन की सिद्धि होती है । फिर जब निश्चय किया कि यह उपदेश करिये तब बुद्धि की सिद्धि होती है । इससे चारों अन्तःकरण सिद्ध होते हैं आप कैसे कहते हैं कि अहंकार नष्ट हो जाता है और सर्व चेष्टा होती हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मरूप में अहंकार आदिक अन्तःकरण और इन्द्रियाँ कल्पित हैं वास्तव में कुछ नहीं । शास्त्र उपदेश भी कल्पना है आत्मा केवल आत्मत्वमात्र है उससे संवेदन करके अहंकारादिक दृश्य फुरे हैं उनके निवृत्त करने को प्रवर्तते हैं । जैसे रस्सी में भ्रम से सर्प भासता है तो उसके भय से आदमी दुःख पाता है पर जब कोई कहे कि यह सर्प नहीं रस्सी है तू भय मत कर इसको भली प्रकार देख, तो उसके उपदेश से वह भली प्रकार देखता है तब उसका भय और शोक निवृत्त हो जाता है, क्योंकि उसको भ्रम से सर्प भान हुआ

www.tantrikastrologer.in

था सो भी मिथ्या है और उसको रस्सी का उपदेश करना भी मिथ्या है, क्योंकि रस्सी तो आगे से सिद्ध है उपदेश से सिद्ध नहीं होती, तैसे ही रस्सी की नाईं आत्माहै उसका विवर्त जो चेतननरूप फुरना है उसको अहंभाव कहते हैं और उस अहंकार के निवृत्त करने को शास्त्र हुए हैं । आत्मरूपी रस्सी के प्रमाद से अहंकाररूपी सर्प फुरा है और उसके निवृत्त करने की शास्त्र के उपदेश हुए हैं और आत्मा को जता देते हैं । जब भली प्रकार रस्सी की नाईं आत्मा को जाना तब सर्प की नाईं जो परिच्छिन्न अहं कार है सो नष्ट हो जाता है । जैसे नेत्र का मैल जब अञ्जन के लगाने से नष्ट हो जाता है तब ज्यों के त्यों निर्मल नेत्र होते हैं, तैसे ही अज्ञानरूपी मैल गुरु और शास्त्र के उपदेशरूपी सुरमें नष्ट हो जाता है । वास्तव में न कोई अहंकार है और न शास्त्र है, क्योंकि आत्मा सर्वदा काल उदयरूप है परन्तु तो भी गुरु और शास्त्र से जाना जाता है । हे रामजी! ज्ञानवान् के साथ चारों अन्तःकरण और इन्द्रियाँ भी दृष्टि आती हैं पर उनमें सत्यता नहीं होती-जैसे भूना बीज दृष्टि आता है परन्तु उगने की सत्यता नहीं रखता और जैसे जला वस्त्र देखनेमात्र है पर उसमें सत्यता कुछ नहीं होती तैसे ही ज्ञानवान् को अभिलाषरूप अहंकार नहीं होता और उससे वह कष्ट नहीं पाता जैसे सूर्य की किरणों से मरुस्थल में जलाभास होता है और उसको देखकर पान करने के निमित्त मृग दौड़ता है और दुःखी होता है तैसे ही दृश्यरूपी मरुस्थल में पदार्थरूपी जलाभास को देखकर अज्ञानरूपी मृग दौड़ते हैं और दुःख पाते हैं । जब ज्ञानरूपी वर्षा से आत्मरूपी जल चढ़ा तब चित्तरूपी मृग कहाँ दौड़े । जब ज्ञानरूपी वर्षा होती है और अनुभवरूपी जल चढ़ता है तब चित्तरूपी मृग में यत्नरूपी जो फुरना था सो नष्ट हो जाता है । हे रामजी! अहंकार अविचार से सिद्ध है और विचार से क्षीण हो जाता है । जैसे बरफ की पुतली सूर्य की किरणों से क्षीण होती है और जब अधिक तेज होता है तब जलरूप हो जाती है, बरफ की संज्ञा नहीं रहती, तैसे ही अहंकाररूपी बरफ विचाररूपी किरणों से क्षीण हो जाती है । जब दृढ़ विचार होता है तब अहंकार संज्ञा नष्ट हो जाती है और केवल आत्मा ही रहता है । रामजी ने पूछा, हे सर्वतत्त्वज्ञ भगवन्! जिसका अहंकार नष्ट होता है उसका लक्षण क्या है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञानरूपी गढ़ा संसार है उसमें पदार्थ की सत् भावना से वह नहीं गिरता और जैसे समुद्र में नदियाँ स्वाभाविक आय प्राप्त होती हैं तैसे ही उसको क्षमा शान्ति आदिक शुभगुण स्वाभाविक प्राप्त होते हैं उसका क्रोध भी नष्ट हो जाता है- और देखनेमात्र यदि भासता भी है तो भी अर्थाकार नहीं होता, विषमता करके भिन्न वासना हृदय में नहीं फुरती और केवल सत्तासमान में स्थित होता है । जैसे शरत्‌काल का मेघ गर्जता है पर वर्षा से रहित होता है तैसे ही इन्द्रियों की चेष्टा वह अभिमान से रहित होकर करता है । जैसे वर्षाऋतु के जाने से कुहिरा नहीं रहता तैसे ही उसकी अभिमान चेष्टा नष्ट हो जाती है और लोभ भी मन से जाता रहता है । जैसे वन में अग्नि लगती है तो मृग और पक्षी उस वन को त्याग जाते हैं तैसे ही लोकरूपीमृग उसको त्याग जाते है और उसके मन में कोई कामना नहीं रहती । जैसे दिन में उलूक और पिशाच नहीं बिचरते तैसे ही जहाँ ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है वहाँ सम्पूर्ण कामनारूपी तम नष्ट हो जाता है और शान्तरूप आत्मा में स्थित रहता है । जैसे मजदूर दो पोटों को ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप में उठाता है और गर्मी में थकता है तो उसको डारकर वृक्ष के नीचे सुख से स्थित होता है तैसे ही वासनारूपी पोट है और अज्ञानरूपी धूप है उससे दुःखी होता है पर ज्ञानरूपी बलकर वासनारूपी पोट को डार के सुख से स्थित होता है हे रामजी! उस पुरुष की भोगवासना नष्ट हो जाती है और फिर उससे दुःख नहीं देती । जैसे गरुड़ को देखकर सर्प भागता है और फिर निकट नहीं आता, तैसे ही ज्ञानरूपी गरुड़ को देखकर भोगरूपी सर्प भागते है और फिर निकट नहीं आते । आत्मपद को पाकर ज्ञानी शान्तिरूपी दीपकवत् प्रकाशवान् होता है । और भाव-अभाव पदार्थ उसको स्पर्श नहीं करते

www.tantrikastrologer.in

और संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है । ज्ञान समझनेमात्र है कुछ यत्न नहीं । सन्तों के पास जाकर प्रश्न करना कि मैं कौन हूँ? जगत् क्या है? परमात्मा क्या है? भोग क्या है? और इससे तरकर कैसे परमपद को प्राप्त हूँ । फिर जो ज्ञानवान् उपदेश करे उसके अभ्यास से आत्मपद को प्राप्त होगा अन्यथा न होगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सन्तलक्षण माहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्णवतितस्सर्ग ||94||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

इक्ष्वाकुप्रत्यक्ष उपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस प्रकार तुम्हारे पुरुखा इक्ष्वाकुनामक बड़े राजा जीवन्मुक्त होकर बिचरे हैं तैसे ही तुम भी बिचरो, क्योंकि तुम भी उसी कुल में उपजे हो । वह सूर्यवंशी इक्ष्वाकु राजा मनु का पुत्र और सूर्य का पौत्र सब राजाओं से श्रेष्ठ हुआ है-जैसे पितरों का राजा धर्म है-और बर्फ की नाईं उसका शीतल स्वभाव था । जैसे सूर्य को देखकर मणि से तेज प्रकट होता है तैसे ही उसको देखकर शत्रु तपायमान होते थे और साधु, मित्र और प्रजा को रमणीय भासता था और वे सब उसको शान्तिमान् होते थे । जैसे चन्द्रमा को देखकर चन्द्रमुखी कमल प्रसन्न होते हैं तैसे ही उसको देखकर सब प्रसन्न हों । वह पापरूपी वृक्षों का काटनेवाला कुल्हाड़ा और मित्र का सुखदायक था- -जैसे मोरों को मेघ सुखदायक है । सुन्दर वह ऐसा कि जिसको देखकर लक्ष्मी स्थित हो रही थी और उसके यश से सम्पूर्ण पृथ्वी पूर रही थी । ऐसा राजा भली प्रकार प्रजा की पालना करता था कि एक काल उसके मन में विचार उपजा कि संसार में जरा मरण आदिक बड़े क्षोभ हैं इस संसार दुःख के तरने का क्या उपाय है । ऐसे वह विचारता था कि शम्भु मुनि ब्रह्मलोक से आये और उसने उनका भली प्रकार पूजन करके पूछा, हे भगवन्! आपकी कृपा का पराक्रम मेरे हृदय में बैठकर प्रश्न करने को प्रेरता है इससे मैं प्रश्न करता हूँ । हे भगवन्! मेरे हृदय में संसार फुरता है और जैसे समुद्र को बड़वाग्नि जलाती है तैसे ही मुझको जलाता है । इससे आप वही उपाय कहिये जिससे मुझको शान्ति हो । हे भगवन् यह संसार कहाँ से उपजा है, दृश्य का स्वरूप क्या है और कैसे निवृत्त होता है? जैसे जाल से पक्षी निकल जाता है, तैसे ही जन्म, मरण महाजाल संसार से मैं निकलना चाहता हूँ और जैसे वरुण समुद्र के सब स्थान जानता है तैसे ही तुम जगत् के सब व्यवहारों को जानते और संशय के निवृत्त करनेवाले हो । अज्ञानरूपी तम के नाशकर्ता तुम सूर्य हो और तुम्हारे अमृतरूपी वचनों से मैं शान्ति को प्राप्त हूँगा मुनि बोले, हे साधो! मैं चिरकाल पर्यन्त जगत् में बिचरता रहा हूँ परन्तु ऐसा प्रश्न मुझसे किसी ने नहीं किया-तुमने परमसार प्रश्न किया है? यह प्रश्न अनर्थ का नाश करनेवाला है और तेरी बुद्धि विवेक से विकासमान हुई दृष्टि आती है । हे राजन्! जो कुछ जगत् तुझको भासता है सो सब असत् है । जैसे रस्सी में सर्प, स्वप्न में गन्धर्वनगर, मरुस्थल में जल, सीपी में रूपा, आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासते हैं, तैसे ही यह जगत् असत्ूरूप है और जैसे जल में चक्र और तरंग असत्ूरूप है । जो मन सहित षट् इन्द्रियों से अतीत है और शून्य भी नहीं सो सत् और अविनाशी आत्मा कहाता है । वह निर्मल परब्रह्म सर्व ओर से पूर्ण और अनन्त है, उसी में जगत् कल्पित है । हे राजन! जैसे सर्ववृक्षों में एक ही रस व्यापक है तैसे ही सर्वपदार्थों में एक चिन्मात्रसत्ता व्यापक है और जैसे अचल समुद्र में द्रवता से तरंग फुरते हैं तैसे ही परमात्मा में जगत् फुरते हैं । उस महा दर्पण में सर्ववस्तु प्रतिबिम्बित होती हैं जैसे समुद्र में कोई तरंग और कोई बुद्बुदे, चक्रा दिक होते हैं तैसे ही आत्मा में जीवादिक आभास होते हैं । प्रथम फुरने रूप होते हैं और पीछे कारणकार्यरूप होते हैं सो चित्तशक्ति अपने संकल्प से भूतादिक देह रचकर उसमें स्वरूप के प्रमाद से आत्मा अभिमान करता है । जैसे कुसवारी की क्रिया अपने बन्धन के निमित्त होती है तैसे ही जीव को अपना संकल्प बन्धन का कारण होता है । हे राजन! जीवकला को स्वरूप का अज्ञान हुआ है । इससे जैसे बालक को अपनी परछाहीं यक्षरूप होकर भय देती है तैसे ही यह नाना प्रकार के आरम्भ को प्राप्त हुआ है और अकारण ही ब्रह्मशक्ति फुरने से कारणभाव को प्राप्त हुआ है । उसमें बन्ध और मोक्ष भासते हैं

www.tantrikastrologer.in

तैसे ही वास्तव में न बन्ध है और न मोक्ष है, निरामय ब्रह्म ही अपने आप बन्ध मोक्ष की कल्पना को त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशोनाम पञ्चनवतितमस्सर्गः ||95||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

राजाइक्ष्वाकुप्रत्यक्ष उपदेश

मुनि बोले, हे राजन्! जैसे द्रवता से जल ही तरंगभाव को प्राप्त होता है तैसे ही चिन्मात्र ही संकल्प के फुरने से जीव होता है और यह जीव संसार में कर्मों के वश से भ्रमता हुआ- आपको कर्ता देखता है पर सर्वात्मा परब्रह्म करता हुआ भी कुछ नहीं करता । जैसे सूर्य के प्रकाश से सब चेष्टा होती हैं और सूर्य अकर्ता है तैसे ही आत्मा की शक्ति से जगत् चेष्टा करता है और जैसे चुम्बक पत्थर के निकट लोहा चेष्टा करता है तैसे ही आत्मा की चेतनता से सब देहादिक चेष्टा करते हैं और आत्मा सदा अकर्ता है । जैसे जल में तरंग फुरते हैं तैसे ही आत्मा में देहादिक फुरते हैं । जैसे सुवर्ण में भूषण कल्पना होती है तैसे ही आत्मा में मोह से सुख दुःख कल्पते हैं पर आत्मा में कुछ कल्पना नहीं । शुद्ध आत्मा में मूढ़ों ने सुख दुःख की कल्पना की है पर जो ज्ञानवान् हैं उनको मन, चित्त, सुख, दुःख सब आकाशरूप हैं । वे देह से रहित केवल चिदाकाश भाव को प्राप्त होते हैं । जरा, मरण को नहीं प्राप्त होते और सब कार्य को करते दृष्टि आते हैं पर हृदय से सदा अकर्तारूप हैं । जैसे जल और दर्पण में पर्वत का प्रतिबिम्ब पड़ता है परन्तु स्पर्श नहीं करता तैसे ही ज्ञानवान् को क्रिया स्पर्श नहीं करती । शरीर के व्यवहवार में भी वह सदा निर्मलभाव है । हे राजन्! आत्मा सदा स्थितरूप है परन्तु भ्रम से चञ्चल भासता है । जैसे जल की चञ्चलता से पर्वत प्रतिबिम्ब भी चञ्चल होता है, तैसे ही देहादिक से आत्मा चलता भासता है पर आत्मा नित्य शुद्ध और अपने आपमें स्थित है । जैसे घट के नाश हुए से घटाकाश नहीं होता तैसे ही देह के नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता और जैसे शुद्ध मणि में नाना प्रकार के प्रतिबिम्ब होते हैं पर उनसे वह रञ्जित नहीं हो तो तैसे ही आत्मा में मन, इन्द्रियाँ और देह दृष्टि आते हैं पर स्पर्श नहीं करते । जैसे सब मिष्ट पदार्थों में एक आत्मसत्ता व्यापी है । हे राजन्! आत्मा सधा अचलरूप है परन्तु अज्ञान सेजलरूप भासता है । जैसे दौड़ते बालक को सूर्य दौड़ता भासता है तैसे ही आत्मा देह के संग से अज्ञानवश विकारवान् भासता है और जैसे प्रतिबिम्ब का विकार आदर्श को नहीं स्पर्श करता तैसे ही देह का विकार आत्मा को स्पर्श नहीं करता । जैसे अग्नि में सुवर्ण डालिये तो मैल दग्ध हो जाता है- पर सुवर्ण का नाश नहीं होता, तैसे ही देह के नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता जो नित्यशुद्ध, अवाच्य और अचिन्त्यरूप है । हे राजन्! वह चितवने में नहीं आता परन्तु चेतनवृत्ति से सब दीखता है । जैसे राहु अदृष्ट है परन्तु चन्द्रमा के संयोग से दृष्टि आता है, तैसे ही आत्मा अदृष्ट है परन्तु चेतनवृत्ति से जाना जाता है । जैसे शुद्धदर्पण में प्रतिबिम्ब होता है तैसे ही निर्मलबुद्धि से आत्मा साक्षात् होता है और संकल्प से रहित अपने आपमें स्थित है । जब बुद्धि निर्मल होती है तब अपने आपमें उसको पाती है । हे राजन्! जबतक अपनी बुद्धि निर्मल न हो तबतक शास्त्र और गुरु से ईश्वर नहीं मिलता और जब अपनी बुद्धि निर्मल हो तब अपने आपसे दीखता है । जब संसार की सत्यता हृदय से दूर हो और आत्मा का अभ्यास हो तब बुद्धि निर्मल होती है । हे राजन्! सर्व भाव-अभावरूप जो देहादिक पदार्थ हैं सो असत् और केवल भ्रममात्र हैं उनकी आस्था का त्याग करो । जैसे कोई मार्ग में चलता है तो अनेक पदार्थ मिलते हैं परन्तु उनमें वह कुछ राग, द्वेष नहीं करता तैसे ही देह और इन्द्रियों के स्नेह से रहित आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है और उसमें देहादिक इन्द्रजाल की नाईं मिथ्या हैं उनकी भावना दूर से त्यागकर नित्य आत्मा में स्थित हो । हे राजन्! जीव आपही अपना मित्र है और आपही अपना शत्रु भी है क्योंकि आत्मा में और का सद्भाव नहीं-आत्मा में आत्मा का ही भाव है-द्वैत नहीं । जो दृश्य पदार्थ की ओर से और अनात्मधर्म विषय से खींचकर चित्त को अपने आपमें स्थित करता है वह अपना आपही

www.tantrik-astrologer.in

मित्र है और जो अनात्मधर्म में पदार्थों की ओर चित्त लगाता है वह अपना आपही शत्रु है । वास्तव में जो कुछ दृश्यजाल है वह भी आत्मरूप है, आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं । जैसे समुद्र में जल से भिन्न कुछ वस्तु नहीं जल ही है, तैसे ही आत्मा से भिन्न जगत् कुछ वस्तु नहीं- सब अनुस्यूत एक आत्मसत्ता ही स्थित है । जैसे अनेक घटों के जल में एक ही सूर्य का प्रकाश प्रतिबिम्ब होता है, तैसे ही अनेक देहों में एक ही आत्मा व्याप रहा है । वह न अस्त होता है और न उदय होता है, सदा एकरस अविनाशी पुरुष ज्यों का त्यों स्थित है और उसमें अहंभावना करके संसार भासता है जैसे सीपी में रूपाकी बुद्धि होती है तैसे ही आत्मा में अहंबुद्धि संसार का कारण है और इसी बुद्धि से सर्व दुःख का भागी होता है । जैसे वर्षाकाल में सब नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं तैसे ही अनात्म अभिमान से सब आपदा प्राप्त होती हैं वास्तव में चिन्मात्र और जीव में रञ्चक भी भेद नहीं एक ही रूप है । ऐसी जो बुद्धि है सो बन्धन से मुक्ति का कारण है । आत्मा सबसे अनुस्यूत व्यापा है । जैसे सूर्य का प्रकाश सब ठौर में होता है परन्तु जहाँ शुद्ध जल है वहाँ भासता है तैसे ही आत्मा सब ठौर पूर्ण है परन्तु शुद्धबुद्धि में भासता है । जैसे तरंग और बुद्बुदों में जल ही व्याप रहा है तैसे ही अविनाशी आत्मा सर्वत्र व्यापा है पर जैसे सुवर्ण में भूषण नहीं तैसे ही आत्मा में जगत् का अभाव है । हे राजन् यह संसार आत्मा में नहीं है, केवल आत्मा ही है । जो एक वस्तु पात्र की नाईं होती है उसमें दूसरी वस्तु होती है पर आत्मा तो अद्वैत है दूसरी वस्तु संसार कहाँ हो? जैसे सुवर्ण में भूषण कल्पित हैं-वास्तव में कुछ नहीं, तैसे ही आत्मा में आत्मा मैं संसार अज्ञान से कल्पित है और वास्तव कुछ नहीं केवल चिदाकाश है । जैसे नदियाँ और समुद्र नाममात्र भिन्न हैं, वास्तवमें जल ही है, तैसे ही केवल चिदाकाश में विश्व नाममात्र है । जितने आकार भासते हैं उनको काल भक्षण करता है जैसे नदियों को समुद्र भक्षण करके नहीं अघाता तैसे ही पदार्थ समूहों को काल भक्षण करके नहीं अघाता । हे राजन्! ऐसे पदार्थों में क्या अभिलाषा करनी है? कोई कोटि सृष्टि उत्पन्न होती हैं और उनको काल भक्षण करता है-कोई पदार्थ काल से मुक्त नहीं होता जैसे समुद्र में तरंग और बुद्बुदे उपजते हैं और नष्ट हो जाते हैं । इससे तू काल से अतीतपद की भावना कर कि काल को भी भक्षण करे । कैसे भावना करिये और कैसे भक्षण करिये सो भी सुन । जैसे मन्दराचल ने अगस्त्यमुनि के आने की भावना करी है तैसे ही तुम भी अपने स्वरूप की भावना करो तब काल को भक्षण करोगे । जैसे अगस्त्यमुनि ने समुद्र को पान किया था- तैसे ही आत्मारूपी अगस्त्य कालरूपी समुद्र को भक्षण करेगा । हे राजन्! जन्म मरणा दिक जो विकार हैं सो भ्रम करके हैं और आत्मा के प्रमाद से भासते हैं जब आत्मा को निश्चय करके जानोगे तब कोई विकार न भासेगा, क्योंकि ये अज्ञान से रचे हैं-आकाश में कोई नहीं । जैसे भ्रम से रस्सी में सर्प भासता है सो तबतक है जबतक रस्सी को नहीं जाना और जब रस्सी को जाना तब सर्पभ्रम निवृत्त हो जाता है तैसे ही जन्म मरणादिक विकार आत्मा में तबतक भासते हैं जबतक आत्मा को नहीं जाना, जब आत्मा को जानोगे तब सब विकार नष्ट हो जावेंगे । हे राजन्! विकार से रहित आत्मा तेरा स्वरूप है उसकी भावना कर कि तेरे दुःख नष्ट हो जावें । आत्मपद को कहीं खोजने नहीं जाना है, न किसी वस्तु को जानकर ग्रहण करना है कि यह आत्मा है और न किसी काल की अपेक्षा ही है, आत्मा तेरा अपना स्वरूप है और सर्वदा अनुभवरूप है । तुझसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं तू आपको ज्यों का त्यों जान । आत्मा के न जानने से आपको दुःखी जानता है मैं मरूँगा, मैं दरिद्री हूँ, मैं दास हूँ इत्यादिक दुःख तब तक होते हैं जबतक आत्मा को नहीं जाना, जब आत्मा को जानोगे तब आनन्दरूप हो जावोगे । जैसे किसी स्त्री को गोद में पुत्र हो और वह स्वप्न में देखे कि बालक मेरे पास नहीं है तो बड़े दुःख को प्राप्त हो और रुदन करने लगे पर जब स्वप्न से जागे और देखे

www.tantrik-astrologer.in

कि बालक मेरी गोद में है तो बड़े आनन्द को प्राप्त होती है और दुःख शोक नष्ट हो जाते हैं । हे राजन्! उसी प्रकार तेरा आत्मा अपना आप है और सदा अनुभवरूप है, उसके प्रमाद से तू आपको दुःखी जानता है, जब अज्ञानरूपी निद्रा से तू जागेगा तब आपको जानेगा और तेरे दुःख और शोक नष्ट हो जावेंगे । देह और इन्द्रियादिक जो दृश्य हैं उनसे मिलकर आपको यह जानना कि `मैं हूँ' यही अज्ञाननिद्रा है । इससे रहित होकर देख कि आनन्द को प्राप्त हो । यह जो पदार्थ भासते हैं सो सब मिथ्या हैं जैसे बालक मृत्तिका में राजा सेना, हाथी और घोड़ा कल्पता है सो न कोई राजा है, न सेना है, न कोई हाथी घोड़ा है एक मृत्तिका ही है, तैसे ही चित्तरूपी बालक ने आत्मरूपी मृत्तिका में जो राजा और सेना आदि सम्पूर्ण विश्व कल्पा है सो सब मिथ्या है । हे राजन्! एक उपाय तुझसे कहता हूँ उसे कर कि तेरे दुःख नष्ट हो जावें एक वस्तु जो `अहं' अभिलाषा सहित फुरना है उसका त्याग करो, फिर जहाँ इच्छा हो वहाँ बिचरो तुझे दुःख का स्पर्श न होगा । संकल्प ही उपाधि है और उपाधि कोई नहीं । जैसे मणितृण से आच्छादित होती है तब दृष्टि नहीं आती और जब तृण दूर करिये तब मणि प्रकट हो आती है, तैसे ही आत्मारूपी मणि वासना रूपी तृण से ढँपा है, जब वासनारूपी तृण दूर कीजिये तब आत्मारूपी मणि प्रकट हो हे राजन् जाग्रत, स्वप्न! और सुषुप्ति से रहित जो आत्मपद है जब उसको प्राप्त होगे तब जानोगे कि मैं मुक्त हूँ । तेरा स्वरूप जो केवल आत्मरूप है उस पद में स्थित हो । वह अजन्मा और नित्य है और चैतन्यमात्र सबका अपना आप है उसके प्रमाद से दुःख होता है जैसे बालक मृत्तिका के खिलौने बनाते हैं और हाथी, घोड़ा आदि उनके नाम कल्पकर अभिमान करते हैं मेरे हैं और उनके नाश होने से दुःखी होते हैं, तैसे ही बालकरूप अज्ञानी स्वरूप के प्रमाद से अभिमान करता है कि यह मेरे हैं, मैं इनका हूँ और उनके नाश होने से दुःखी होता है-ऐसे नहीं जानता कि सत् का नाश नहीं होता । असत् के नाश होने से सत् का नाश मानता है । जैसे घट के नाश होने से घटाकाश नाश मानिये तैसे ही मूर्खता से दुःख पाता है । हे राजन्! तू आपको आत्मा ज्ञान । आत्मादिक संज्ञा भी शास्त्रों ने जताने के निमित्त कल्पी है नहीं तो आत्मा निर्वाच्यपद है, उसमें वाणी का गम्य नहीं और इनहीं से जाना जाता है, क्योंकि मन और वाणी में भी आत्मसत्ता है उसी से आत्मादिक संज्ञा सिद्ध होती हैं । जैसे जितने स्वप्न के पदार्थ हैं उनमें अनुभवसत्ता है उससे वे पदार्थ सिद्ध होते हैं, तैसे ही जितनी कुछ अर्थ संज्ञा हैं सो सब आत्मा से सिद्ध होती हैं ऐसा जो तेरा स्वरूप है उसमें स्थित हो कि जरा मृत्यु आदिक दुःख नष्ट हो जावें । हे राजन्! निस्पन्द होकर देखेगा तब स्पन्द में भी वही भासेगा और स्पन्द-निस्पन्द तुल्य होकर भासेंगे-   जो समाधि में होवेगा अथवा चेष्टा करेगा तो भी तुल्य होवेगी और न समाधि में शान्ति भासेगी और न चेष्टा में दुःख भासेगा दोनों में एकरस रहेगा । हे राजन्! देना अथवा लेना, यज्ञ, दान आदिक क्रिया जो कुछ प्रकृत आचार प्राप्त हो उनको मर्यादा और शास्त्र की विधिसंयुक्त कर, पर निश्चय आत्मस्वरूप में ही रख । जैसे नट स्वाँगों को धारकर सम्पूर्ण चेष्टा करता है पर उसमें निश्चय नटत्व ही का रहता है, तैसे ही तुम भी सर्वचेष्टा करो पर उसके अभिमान और संकल्प से रहित हो । ग्रहण अथवा त्याग जो कुछ स्वाभाविक आ प्राप्त हो उसमें ज्यों के त्यों रहो । जब निर्विकल्प होकर अपने स्वरूप को देखोगे तब उत्थानकाल में भी तुम्हें आत्मा ही भासेगा जैसे जल के जाने से तरंग फेन बुद्बुदा सर्व जल ही भासते हैं तैसे ही जब तुम आत्मा को जानोगे तब संसार भी आत्मरूप भासेगा । जो आत्मा को नहीं जानता उसको जगत् ही दृष्टि आता है और उससे दुःख पाता है, इससे तू अन्तर्मुख हो और संकल्प को त्यागकर परम निर्वाण अच्युतपद में स्थित हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजाइक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशोनाम षण्णवतितमस्सर्गः ।।96।।

www.tantrik-astrologer.in

अनुक्रम

सर्वब्रह्म-प्रतिपादन

मुनि बोले, हे राजन्! यह जो पुरुष है सो संकल्प से ही बँधता है और आपही मुक्त होता है । जब संकल्प से दृश्य की भावना करता है तब जन्म मरण को प्राप्त होकर दुःखी होता है । आपही संकल्प करता है और आपही बन्धन को प्राप्त होता है जैसे कुसवारी आपही गुफा बनाकर और आपही उसको मूँदकर फँसती है तैसे ही जीव अपने संकल्प से आपही दुःख पाता है और जब संकल्प को अन्तर्मुख करता है तब मुक्त होता है और मुक्त ही मानता है! इससे हे राजन्! संकल्प को त्यागकर आत्मा जो सबका अपना आप है उसकी भावना कर कि तू सुखी हो । हे राजन्! आत्मा के प्रमाद से देह अवस्था की भावना हुई है उससे दुःख पाता है, इससे आत्मस्वरूप की भावना करो । तुम आत्मा चिद्रुप हो । महा आश्चर्य माया है जिसने संसार को मोह लिया है । आत्मा सर्वदा अनुभवरूप सर्वत्र व्यापक है उसको जीव नहीं जानते यही आश्चर्य है । हे राजन्! आत्मा सदा अनुभवरूप है उसमें स्थित हो । संसार आत्मा के प्रमाद और फुरने से हुआ है सो सत् भी नहीं और असत् भी नहीं । जो आत्मा से भिन्न देखिये तो मिथ्या है इससे सत् नहीं और जो आत्मा के सिवा दूसरा है ही नहीं, इससे असत् भी नहीं । तू आत्मा की भावना कर । जो कुछ पदार्थ भासते हैं उन्हें आत्मा से भिन्न न जान सर्वात्मा ही है । आत्मा के सिवा जो और भावना है उसका त्याग कर । हे राजन्! जैसे जल में तरंग और बुद्बुदे होते हैं सो जल से भिन्न नहीं-जल ही ऐसा हो भासता है, तैसे ही जगत जो दृष्टि आता है सो आत्मा ही ऐसे हो भासता है जैसे सूर्य और किरणों में कुछ भेद नहीं, तैसे ही आत्मा और जगत् में भेद नहीं । आत्मा ही जगत्ूरूप है और भिन्न भिन्न आकार चित्त शक्ति से हैं सो भिन्न नहीं आत्मसत्ता ही है । जैसे तप्त हुआ लोहा वस्त्रादिक को जलाता है, सो लोहे को अपनी सत्ता नहीं अग्नि की सत्ता है, तैसे ही चैतन्य की सत्ता जगत्ूरूप होकर स्थित हुई है । सदा केवलरूप है जिसमे प्रकाश और तम दोनों नहीं और न सत् है, न असत् है, न कोई देश है, न काल है, न कोई पदार्थ है केवल चैतन्यमात्र गुणातीत है उसमें न कोई गुण है न माया है केवल शान्तरूप आत्मा है । हे राजन्! वह शास्त्रों और गुरु के वचनों से पाया जाता है और तप से नहीं मिलता । केवल अपने आपसे जाना जाता है और शास्त्रादिक लखा देते हैं परन्तु "यह है" ऐसा कहकर नहीं जानते । द्रष्टा पुरुष अपने आपसे जानता है । जैसे सूर्य की ज्योति जो नेत्रों में है वही सूर्य को देखती है, तैसे ही आत्मा ही आत्मा को देखता है । और अन्तर्मुख होकर संकल्प से रहित हुआ अपने आपको देखता है । जब संकल्प बहिर्मुख होता है तब वही दृढ़ होकर स्थित होता है और फिर उसकी भावना होती है । जब संकल्परूप जगत् दृढ़ता से स्थित होता है तब दुःखदायी होता है । हे राजन्! जीव को दुःखदायी और कोई नहीं, अपने ही संकल्प करके असम्यक्दर्शी दुःखी होता है और सम्यक्ूददर्शी को जगत् दृष्टि भी आता है तो भी दुःखदायी नहीं होता । जैसे रस्सी में सर्प की भावना होती है तो भय प्राप्त होता है फिर जब रस्सी के जानने से सर्पभावना दूर होती है तब भय भी जाता रहता है, तैसे ही जिस पुरुष को संसार की भावना होती है वह दुःखदायी है । इससे आत्मा की भावना कर कि तेरे सब दुःख नष्ट हो जावें । हे राजन्! तू सर्वदा आनन्दरूप और अद्वैत है, तेरे में कोई कल्पना नहीं और तू आत्मस्वरूप है । आत्मा षट्ूविकारों से रहित है, विकार मिथ्या देह के हैं आत्मा शुद्ध है और आत्मा के प्रमाद से विकार भासते हैं । जब तू आत्मा को जानेगा तब कोई विकार न दृष्टि आवेगा, क्योंकि आत्मा अद्वैत है । राजा ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि आत्मा अद्वैत है । जो इस प्रकार

www.tantrik-astrologer.in

है तो पर्वत आदिक विश्व का कैसे भान होता है, और पत्थररूप बड़े आकार बन के कहाँ से उपजे हैं? इसका रूप क्या है कृपा करके कहो? मुनि बोले, हे राजन् । आत्मा में संसार कोई नहीं वह सदा शान्तरूप और निराकार है और उसमें स्पन्द-निस्पन्द दोनों शक्ति हैं जब निस्पन्द शक्ति होती है तब केवल अद्वैत भासता है और जब स्पन्दशक्ति फुरती है तब नाना प्रकार के जगत् आकार भासते हैं पर वास्तव में आत्मा ही है- कुछ भिन्न नहीं । जैसे समुद्र में तरंग कुछ और नहीं वही रूप हैं पर पवन के संयोग से तरंग फुरते हैं तो भिन्न भिन्न दृष्टि आते हैं, तैसे ही फुरनशक्ति के अहंकार भिन्न भिन्न भासते हैं- वास्तव में आत्मस्वरूप है-इतर कुछ नहीं । जैसे वट के बीज में पत्र, डाल, फूल और फल अनेक दृष्टि आते हैं तैसे ही आत्मसत्ता ने जो नाना प्रकार के आकार धारे हैं यद्यपि वे दृष्टि आते हैं तो भी कुछ बना नहीं, केवल अद्वैत आत्मा ज्यों का त्यों स्थित है और सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म है और पर्वत आदिक जो विश्व भासता है सो आत्मा का चमत्कार है जैसे स्वप्न में पर्वत और वृक्षादिक नाना प्रकार के जो आकार भान होते हैं वे अनुभवरूप है-उनसे इतर कुछ नहीं, तैसे ही जाग्रत् विश्व भी आत्मा का अनुभवरूप है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं । इक्ष्वाकु ने पूछा, हे भगवन्! जो आत्मा सूक्ष्म है तो पर्वतादिक स्थल असत्ूरूप सत् होकर कैसे भासते हैं सो कृपा करके कहो? मुनि बोले, हे राजन्! आत्मा में अनन्त शक्ति है सो आत्मा से भिन्न नहीं वही रूप है । जैसै सूर्य की किरणें सूर्य से भिन्न नहीं, तैसे ही आत्मा की शक्ति आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे पवन में दो शक्ति हैं-स्पन्द और निस्पन्द, सो वही रूप है- स्पन्दशक्ति से प्रकट भासता है और निस्पन्द से प्रकट नहीं भासता, तैसे ही आत्मा में भी स्पन्द-निस्पन्द दो शक्ति है जब स्पन्दशक्ति फुरती है तब अहंभाव प्रकट होता है और जब अहंभाव हुआ तब चित्त उदय होता है । अहं ही चित्त है, जब चित्त हुआ तब आकाश की भावना बन जाता है जब स्पर्श की भावना हुई तब पवन उत्पन्न होता है, रूप की भावना से अग्नि बनती है और जब रस की भावना हुई तब जल उत्पन्न हुआ । इसी प्रकार चित्त की कल्पना से तत्त्व उपजे हैं । जब चारों तत्त्व इकट्ठे हुए तब एक अण्ड हुआ और जब दृढ़ संकल्प किया तब स्वायंभू मनु हुआ । जब अण्ड फूटा तब स्वर्ग मध्य और पाताल तीन लोक हुए वे तीनों लोक राजस, सात्त्विक और तामस तीनों गुण हुए । फिर पर्वत आदिक दृश्य पदार्थ हुए । हे राजन्! केवल संकल्पमात्र ही सब हुए हैं । जब स्पन्दशक्ति फुरती है तब इस प्रकार आत्मा में भासते हैं परन्तु कुछ बना नहीं । जैसे समुद्र में फेन और बुद्बुदे फुरते हैं सो जलरूप हैं-जल से कुछ भिन्न नहीं, तैसे ही आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं । आदि मनु जो स्वायंभू हैं उनके संकल्प ने आगे मन कल्पे हैं । इसी प्रकार त्रिगुणमय सृष्टि उत्पन्न होती है सो केवल संकल्पमात्र है । जबतक चित्त है तबतक विश्व है, जब चित्त फुरने से रहित हुआ तब निस्पन्दशक्ति होती है और जब निस्पन्द हुई तब फिर जगत् नहीं दिखाई देता । हे राजन्! यह विश्व मन के फुरने से है और सत्य की नाईं स्थित हुआ है । सत् जो है सर्वदेश, सर्वकाल, सर्ववस्तु सो नहीं भासता और असत् सत् की नाईं भासता है । वह सत् कैसे असत् की नाई हुआ है और असत् कैसे सत् की नाईं हुआ है सो सुन । सत् जो है सर्वदेश, सर्वकाल, सर्ववस्तु नहीं भासती और असत् जो परिच्छिन्नरूप देश, काल, वस्तु परिच्छेद संयुक्त है वह सत् की नाईं हुई है । जहाँ देखिये वहाँ दृश्य ही गुणमय संसार भान होता है । महा आश्चर्यरूप माया है जिसने सत्य को असत्य की नाईं किया है और असत्य को सत्य की नाईं स्थित किया है सो चित्त के सम्बन्ध से ही संसार भासता है आत्मा में संसार कोई नहीं । जब चित्त को स्थित करके देखोगे तब तुम्हे संसार न भासेगा । जैसे गम्भीर जल होता है तो चलता नहीं भासता तैसे ही गम्भीर आत्मा में संसार नहीं जाना जाता कि कहाँ फुरता है । संसार भी आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं

www.tantrikastrologer.in

आत्मस्वरूप ही है । जैसे अग्नि के चिनगारे और जल के तरंग जल से भिन्न नहीं और मनी का प्रकाश मणि से भिन्न नहीं तैसे ही आत्मा से संसार भिन्न नहीं केवल आत्मस्वरूप है । ऐसे आत्मा को जानकर शान्तिमान् हो कि तेरे दुःख नष्ट हो जावें । केवल शान्तपद आत्मा तेरा अपना आप है । अपने स्वरूप को भूल के तू दुःखी हुआ है । जब आत्मा को जानोगे तब संसार भी आत्मरूप भासेगा, क्योंकि आत्मस्वरूप है, आत्मा से भिन्न कोई वस्तु नहीं । ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है उसमें स्थित हो । हे राजन् यह सर्वजगत् चिदाकाशरूप है, यही भावना दृढ़ करो जिसको ऐसी भावना दृढ़ है और जिसकी सब इच्छा शान्त हो गई उस पुरुष को कोई दुःख नहीं लगता । उसने निरिच्छारूपी कवच पहिना है । हे राजन्! जो अहं के अर्थ से रहित है, जिसका सर्व शून्य हो गया है और जिसने निरालम्ब का आसरा किया है वह पुरुष मुक्तिरूप है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनुइक्ष्वाकुआख्याने सर्वब्रह्म- -प्रतिपादनं नाम सप्तनवतितमस्सर्गः ||97||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

परमनिर्वाण वर्णन

मनु बोले, हे राजन्! यह संसार आत्मा से कुछ भिन्न वस्तु नहीं । जैसे जल और तरंग, सूर्य और किरणें, अग्नि और चिनगारे भिन्न नहीं तैसे ही आत्मा और संसार भिन्न नहीं- आत्मस्वरूप ही है । जैसे इन्द्रियों के विषय इन्द्रियों में रहते हैं तैसे ही आत्मा में संसार है । जैसे पवन में स्पन्द-निस्पन्दशक्ति है सो पवन से भिन्न नहीं, तैसे ही संसार आत्मा से भिन्न नहीं-आत्मस्वरूप है । हे राजन्! विषय की सत्यता को त्याग कर केवल आत्मा की भावना कर कि तेरे संशय मिट जावें । तुम आत्मस्वरूप और निर्गुण हो तुमको गुणों का स्पर्श नहीं होता और तुम सब से परे हो । जैसे आकाश में फूल, धुवाँ, मेघ और बादल विकार भासते हैं । पर आकाश को कुछ लेप नहीं करते-आकाश अद्वैतरूप है, तैसे ही ज्ञानवान् पुरुष जिनको आत्मज्ञान हुआ है उनको सुख, दुख, राजस, तामस, सात्विक गुण लेप नहीं करते । यद्यपि उनमें लोकदृष्टि से ये गुण दीखते हैं पर वे अपने में नहीं दीखते । जैसे समुद्र में अनेक तरंग जलरूप होते हैं और शुद्धमणि में नील, पीत आदिक प्रतिबिम्ब पड़ते हैं सो देखनेमात्र हैं, मणी को स्पर्श नहीं करते, तैसे ही जिस पुरुष के हृदय से वासना का मल दूर हुआ है उसके शरीर को सम्बन्ध करके राजस, सात्विक और तामस गुणों के कार्य सुख दुःख देखनेमात्र होते हैं परन्तु स्पर्श नहीं करते । उसमें केवल सत्ता समान पद का निश्चय होता है और उसको कोई रंग स्पर्श नहीं करता । जैसे आकाश को धूल का लेप नहीं होता तैसे ही गुणों का सम्बन्ध नहीं होता । जो पुरुष ऐसे जानता है उसको ज्ञानी कहते हैं । जब जीव निस्पन्द होता है तब आत्मा होता है और जब स्पन्द होता है तब संसारी होता है । जब चित्त फुरता है तब अनेक सृष्टि भासती हैं और जब चित्त फुरने से रहित होता हे तब संसार का अत्यन्ताभाव होता है और प्रध्वंसाभाव भी नहीं भासता । तब संसार भी केवल आत्मरूप हो जाता है । इससे हे राजन्! वासना को त्यागकर चित्त को स्थित करो । यह वासना ही मल है । जब वासना का त्याग होगा तब केवल आकाश की नाईं आपको स्वच्छ जानोगे । आत्मा वाणी का विषय नहीं, वह केवल आत्मत्वमात्र है, अपने आपमें स्थित है और सर्वदा उदयरूप है । विश्व भी आत्मा का चमत्कार है कुछ भिन्न नहीं । दृष्टा, दर्शन, दृश्य जो त्रिपुटी है सो अज्ञान से भासती है, आत्मा सर्वदा एकरूप और त्रिपुटी से रहित है । फुरने से आत्मा ही त्रिपुटीरूप होकर स्थित हुआ है इससे चित्त को स्थिर कर देख कि आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं । फुरने में संसार है, जब फुरना मिटता हे तब संसार भी मिट जाता है । उस फुरने की निवृत्ति के लिये सप्तभूमिका कहता हूँ । जब प्रथम जिज्ञासु होता है तब चाहता है कि सन्तजनों का संग करूँ और ब्रह्मविद्या शास्त्र को देखूँ और सुनूँ-यह प्रथम भूमिका है । भूमिका चित्त के ठहरने के ठौर को कहते हैं फिर जब सन्तों के संग और शास्त्रों से बुद्धि बढ़ी तब सन्तों और शास्त्रों के कहने को विचारना कि मैं कौन हूँ और संसार क्या है-यह दूसरी भूमिका है । उसके उपरान्त यह विचारना कि मैं आत्मा हूँ, संसार मिथ्या है और मुझमें कोई संसार नहीं, ऐसी भावना बारम्बार करना तीसरी भूमिका है । जब आत्मभावना की दृढ़ता से आत्मा का साक्षात्कार होता है तब सम्पूर्ण वासना मिट जाती है और जब स्वरूप से उतरकर देखता है तब संसार भासता है परन्तु स्वप्ने की नाईं जानता है-इससे वासना नहीं फुरती । ऐसा जो अवलोकन है सो चौथी भूमिका है । जब अवलोकन होता है तब आनन्द प्रकट होता है । ऐसे महाआनन्द का प्रकट होना पञ्चम भूमिका है । जब आनन्द प्रकट होता है और उसमें बल से स्थित हुआ तो इसका नाम पञ्चम भूमिका है । तुरीयापद छठी भूमिका है चित्त की दृढ़ता का नाम तुरीया है । जब तुरीयातीतपद को प्राप्त होता है तब परम निर्वाण होता

www.tantrikastrologer.in

है-उसको सप्तम भूमिका कहते हैं । उस परमनिर्वाणपदकी जीवन्मुक्त को गम नहीं क्योंकि तुरीयापद है उसको वाणी से नहीं कह सकते । प्रथम तीन भूमिका जो कहीं है सो जाग्रत अवस्था हैं, उनमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन करता है और संसार की सत्ता भी दूर नहीं होती । चतुर्थ भूमिका स्वप्नवत् है उसमें संसार की सत्ता नहीं होती और पञ्चम भूमिका सुषुप्ति अवस्था है क्योंकि आनन्दघन में स्थित होता है । छठी भूमिका तुरीयापद है जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों का साक्षी है, उसमें केवल ब्रह्म ही प्रकाशता है और निर्वाणपद में चित्त लय हो जाता है । तुरीयापद में जीवन्मुक्त बिचरते हैं । सप्तम भूमिका तुरीयातीतपद है सो परमनिर्वाणपद है । तुरीया में ब्रह्माकारवृत्ति रहता है जब ब्रह्माकारवृत्ति भी लीन हो जाती है जहाँ वाणी की गम नहीं वहाँ चित्त नष्ट हो जाता है, वह केवल आत्मत्वमात्र है और अहंभाव नहीं होता । शान्त और परम निर्वाण तेरा स्वरूप है और सर्व विश्व भी वहीरूप है कुछ भिन्न नहीं । जैसे सुवर्ण ही भूषण है और सुवर्ण में भूषण कल्पित हैं । भूषण भी परिणाम से होता है पर आत्मा सदा अच्युतरूप है और कदाचित् परिणाम को नहीं प्राप्त होता । वह केवल एकरस है उसने चित्त के फुरने से विश्व कल्पा है इससे विकारसंयुक्त भासता है । हे राजन्! ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है उसमें स्थित होकर अपने प्रकृत आचार में निरहं कार होकर बिचरो बल्कि अहंकार के त्याग का अभिमान भी त्यागकर केवल आत्मरूप हो रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमनिर्वाणवर्णनं नामाष्टनवतितमस्सर्गः ।।98।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

मोक्षरूप वर्णन

मनु बोले, हे राजन्! सर्वचिदाकाश सत्ता आदि-मध्य-अन्त से रहित अनाभास ज्यों का त्यों स्थित है और आगे भी वही स्थित रहेगा । उसमें न ऊर्ध्व है, न अधः है न तम है, न प्रकाश है और न कुछ उससे भिन्न है । सर्व की सत्ता है जो चिन्मात्र परम सार है उसने आप ही संकल्प से चिन्तना की तब जगत् हुआ । हे राजन्! यह विश्व आत्मा से कुछ भिन्न नहीं । जैसे जल में तरंग, मिरच में तीक्ष्णता, शक्कर में मधुरता, अग्नि में उष्णता, बरफ में शीतलता, सूर्य में प्रकाश, आकाश में शून्यता और वायु में स्पन्द है तैसे ही आत्मा में विश्व है सो आत्मस्वरूप ही है कुछ भिन्न नहीं । हे राजन्! जो सब आत्मस्वरूप ही है तो शोक और मोह किसका करता है? जैसे काष्ठ की पुतली यन्त्र के तागे से अनिच्छित चेष्टा करती है तैसे ही नीतिरूप तागे से अभिमान से रहित होकर तू भी विचार और यह निश्चय रख कि न मैं कुछ करता हूँ, न कराता हूँ और किसी में राग द्वेष न कर । जैसे शिला पर जो मूर्ति लिखी होती है उसको न किसी का राग है और न द्वेष है, तैसे ही तू भी बिचार कि आत्मा से भिन्न कुछ न फुरे ऐसा निरहंकार हो । चाहे व्यवहारी गृहस्थ हो, चाहे सन्यासी हो, चाहे देहधारी हो चाहे देह त्यागी हो, चाहे विक्षेपी हो, चाहे ध्यानी हो तुझे कोई दुःख न होगा ज्यों का त्यों ही रहेगा । फुरना ही संसार है और फुरने से रहित असंसार है । जब फुरता है तब संसारी होता है और जब फुरना मिट जाता है तब केवल आकाशरूप भासता है । हे राजन्! यह जगत् सब आत्मरूप है और आत्मा ही अपने आपमें स्थित है । जो सर्वात्मा ही है तो शोक और मोह किसका कीजिये? हे राजन्! आत्मा सर्वदा एकरस है और विश्व आत्मा का चमत्कार है । जन्म मरण आदि नाना विकार आत्मा के अज्ञान से भासते हैं, जब आत्मा का ज्ञान होगा तब आत्मरूप ही एक रस भासेगा और विषमता कुछ न भासेगी । संवेदन से आकार भासते हैं । संवेदन और वासना के सम्बन्ध को कहते हैं । अहंकार और चित्त दोनों पर्याय हैं । हे राजन्! इसका अहंकार के साथ होना ही दुःखदायी है । केवल चिन्मात्र में अहंभाव मिथ्या है । जबतक संवेदन दृश्य की ओर फुरता है तबतक दृश्य का अन्त नहीं आत्मा और नाना प्रकार के विकार भासते हैं पर जब संवेदन आत्मा अधिष्ठान की ओर आता है तब आत्मा शुद्ध अपना आप होकर भासता है । संवेदन भी आत्मा का आभास कल्पित है, आभास के आश्रय के आश्रय विश्व कल्पा है और फुरने में भी और अफुरने में भी आत्मा ज्यों का त्यों है परन्तु फुरने में विषमता भासती है और अफुरने में ज्यों का त्यों भासता है । जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प भासता है और जब रस्सी का ज्ञान होता है तब सर्प की सत्यता जाती रहती है और ज्यों की त्यों रस्सी भासती है पर सर्प भासने के काल में भी रस्सी ज्यों की त्यों ही थी ,उसमें कुछ नहीं हुआ था- जानने न जानने में एक समान ही थी, तैसे ही आत्मा फुरने काल में जगत्‌रूप हो भासता है और फुरने के निवृत्त हुए आत्मा ही भासता है पर आत्मा दोनों कालों में एक समान है जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से भिन्न नहीं और अग्नि से उष्णता भिन्न नहीं, तैसे ही आत्मा से विश्व भिन्न नहीं-आत्मस्वरूप ही है । हे राजन्! अहंकार त्याग करके अपने सत्ता समान स्वरूप में स्थित हो तब तेरे सब दुःख निवृत्त हो जावेंगे । एक कवच तुझको कहता हूँ उसको धारण करके विचार तो यद्यपि अनेक शस्त्रो की वर्षा हो तो भी तुझे दुःख न होगा । "जो कुछ देखता सुनता है" उसे सर्वब्रह्म जान और बारम्बार यही भावना कर कि ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं । जब ऐसी भावना दृढ़ करेगा तब कोई शस्त्र छेद न सकेगा । यह ब्रह्मभावना ही कवच है । जब इसको तू धारेगा तब सुखी होगा । इतना कह वाल्मीकिजी बोले, कि जब वशिष्ठजी ने रामजी को मनु और इक्ष्वाकु का संवाद सुनाया तब सायंकाल

www.tantrikastrologer.in

होकर सूर्य अस्त हुआ और सम्पूर्ण सभा और वशिष्ठजी भी स्नान को उठे । फिर सूर्य की किरणों के निकलते ही सब आ पहुँचे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मोक्षरूपवर्णनं नामनवनवतितमस्सर्गः ॥99॥

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

परमार्थ उपदेश

मनु बोले, हे राजन्! जिसका कारण ही मिथ्या है उसका कार्य कैसे सत् हो । यह आभास जो संवेदन है सो ही विश्व का कारण है । जो आभास ही मिथ्या है तो विश्व कैसे सत्य हो और जो विश्व ही असत् है तो भय और शोक किसका करता है । हे राजन्! न कोई जन्मता है, न मरता है, न सुख है, न दुःख है ज्यों का त्यों आत्मा स्थित है उसी से संवेदन ने विश्व कल्पा है, इससे संवेदन का त्यागकर कि न `मैं हूँ', न यह है । जब तुझे ऐसा दृढ़ निश्चय होगा तब आत्मा ही शेष रहेगा और अहंकार निवृत्त हो जावेगा, क्योंकि आत्मा के अज्ञान से हुआ है और आत्मज्ञान से नष्ट हो जाता है । हे राजन्! जो वस्तु भ्रम सिद्ध हो और सत् दृष्टि आवे उसको प्रथम विचार किये से रहे तो सत्य जानिये और आत्मा जानिये और जो विचार किये से नष्ट हो जावे उसको मिथ्या जानिये । जैसे हीरा भी श्वेत होता है और बरफ का कणका भी श्वेत होता है और एक समान दोनों भासते हैं पर उनकी परीक्षा के लिये सूर्य के सम्मुख दोनों को रखिये तो जो धूप से गल जावे सो झूठा जानिये और ज्यों का त्यों रहे उसको सत् जानिये, तैसे ही विचाररूपी सूर्य के सम्मुख करिये तो अहंकार बरफ की नाईं नष्ट हो जाता है क्योंकि जो अहंकार अनात्म अभिमान में होता है सो तुच्छ है-सर्वव्यापी नहीं । जीव इन्द्रियों की क्रिया जो अपने में मानता है और परधर्म अपने में कल्पता है सो भी तुच्छ हैं, एवम् आपको भिन्न जानता है और पदार्थ आप से भिन्न जानता है इससे विचार किये से बरफ के हीरे की नाईं मिथ्या हो जाता है अतः अविचार सिद्ध है विचार किये से नष्ट हो जाता है पर आत्मा सर्व का साक्षी ज्यो का त्यों रहता है । वह अहंकार और इन्द्रियों का भी साक्षी है और सर्व व्यापी है । हे राजन्! जो सत् वस्तु है उसकी भावनाकर और सम्यक्दर्शी हो । सम्यक्‌्दर्शी को कोई दुःख नहीं होता जैसे मार्ग में रस्सी पड़ी हो उसको रस्सी जानिये तो कोई दुःख नही और सर्प जानिये तो भय होता है । इससे सम्यक्‌्दर्शी हो-असम्यक्‌्दर्शी मत हो । हे राजन्! जो कुछ दृश्य पदार्थ हैं वे सुखदायी नहीं हैं दुःखदायी ही हैं जबतक इनका संयोग है तबतक सुख भासता है पर जब वियोग होता है तब दुःख को प्राप्त करते हैं । इससे तू उदासीन हो, किसी दृश्य पदार्थ को सुखदायी न जान और दुःखदायी भी न जान । सुख और दुःख दोनों मिथ्या हैं इनमें आस्था मत कर और अहंकार से रहित जो तेरा स्वरूप है उसमें स्थित हो । जब अहं कार नष्ट होगा तब आपको जन्म मरण विकारों से आत्मा जानोगे कि मैं निरहंकार ब्रह्म चिन्मात्र हूँ । ऐसे अहंभाव से रहित होने पर अपना होना भी न रहेगा केवल चिन्मात्र आनन्द और रागद्वेष के क्षोभ से रहित शान्तरूप होगा । जब ऐसा आपको जाना तब शोच किसका करेगा? हे राजन्! इस दृश्य को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो और इस मेरे उपदेश को बिचारो कि मैं सत्य कहता हूँ अथवा असत्य कहता हूँ । जो विचार से संसार सत्य हो तो संसार की भावना करो और जो आत्मा सत्य हो तो आत्मा की भावना करो हे राजन्! तू सम्यक्दर्शी हो सत् को सत् जान और असत् को असत् जान कि जो असम्यक् दर्शी हैं वे सत्य को असत्य मानते हैं और असत्य को सत्य मानते हैं । यथार्थ न जानने से असत् वस्तु स्थिर नहीं रहती परन्तु दुःख पाता है । जैसे कोई पुरुष एक कुटी रचकर चिन्तने लगा कि मैंने आकाश की रक्षा की है तो जब कुटी नष्ट हो तब शोक करता है कि आकाश नष्ट हो गया, क्योंकि आकाश को वह कुटी के आश्रय जानता था तैसे ही अज्ञानी पुरुष आत्मा को देह के आश्रय जानकर देह के नष्ट हुए आत्मा का नाश मानता है और दुःखी होता है । जैसे सुवर्ण में भूषण कल्पित हैं, भूषणों के नष्ट हुए मूर्ख सुवर्ण को नष्ट मानता है तैसे ही देह के नष्ट हुए अज्ञानी आपको नष्ट जानता है पर जिसको सुवर्ण का ज्ञान है वह भूषणों के होते

www.tantrikastrologer.in

भी सुवर्ण को देखता है और भूषणसंज्ञा कल्पित जानता है अतः ज्ञानवान् आत्मा को अविनाशी जानता है और देह और इन्द्रियों को असत् जानता है हे राजन्! तू देह और इन्द्रियों के अभिमान से रहित हो । जब अभिमान से रहित इन्द्रियों की चेष्टा करेगा तब शुभ अशुभ क्रिया तुझे बाँध न सकेंगी और जो अभिमान सहित करेगा तो शुभ अशुभ फल को भोगेगा । हे राजन! जो मूर्ख अज्ञानी हैं वे ऐसी क्रिया का आरम्भ करते हैं जिसका कल्पपर्यन्त नास न हो और देह- इन्द्रियों के अभिमान का प्रतिबिम्ब आपमें मानते हैं कि मैं करता हूँ, मैं भोगता हूँ, इससे अनेक जन्म पाते हैं, क्योंकि उनके कर्मों का नाश कभी नहीं होता और जो तत्त्ववेत्ता ज्ञानवान् पुरुष हैं वे आपको देह और इन्द्रियों के गुणों से रहित जानते हैं और उनके संचित और क्रियमाण कर्म नष्ट हो जाते हैं । संचित कर्म वृक्ष की नाईं हैं और क्रियमाण फूल फल की नाईं हैं । जैसे रुई को लपेट कर अग्नि लगाने से वृक्ष फूल, फल सूखे तृणवत् दग्ध होते हैं तैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि से संचित् और क्रियमाण कर्म दग्ध हो जाते हैं । इससे हे राजन्!जो कुछ चेष्टा तू वासना से रहित होकर करेगा उसमें कोई बन्धन नहीं जैसे बालक के अंग स्वाभाविक ही भली प्रकार हिलते हैं, उसके हृदय में अभिमान नहीं फुरता इससे उसको बन्धन नहीं, तैसे ही तू भी इच्छा से रहित होकर चेष्टा करे तो तुझे कोई बन्धन न होगा । यद्यपि सब चेष्टा तुझसे तब भी भासेंगी तो भी वासना से रहित होगा फिर जन्म न पावेगा । जैसे भूनाबीज देखने मात्र होता है और उगता नहीं तैसे ही तुझमें सर्वक्रिया दृष्टि आवेगी परन्तु जन्म का कारण अर्थात् पुण्यक्रिया का फल सुख न भोगेगा और पापक्रिया से दुःख न भोगेगा किन्तु पाप पुण्य का स्पर्श न होगा । जैसे जल में कमल स्थित होता है और उसको जल स्पर्श नहीं करता तैसे ही पाप पुण्य का स्पर्श तुझे न होगा । इससे अहं अभिलाषा से रहित होकर जो कुछ अपना प्राकृतिक आचार है सो कर । हे राजन! जैसे आकाश में जल से पूर्ण मेघ भासते हैं परन्तु आकाश को लेप नहीं करते तैसे ही तुझको कोई क्रिया बन्धन न करेगी । जैसे विष के खानेवाले को विष नहीं मार सकता तैसे ही ज्ञानी को क्रिया नहीं बाँध सकती । ज्ञानवान् क्रिया करने में भी आपको अकर्त्ता जानता है पर अज्ञानी न करने में भी अभिमान से कर्ता होता है जो देह इन्द्रियों से कर्ता है- और उसके अभिमान से रहित है वह अकर्ता है और जो पुरुष इन्द्रियों का संयम करता है पर मन में विषय के भोग की तृष्णा रखता है और जिसका अन्तःकरण राग द्वेष से मूढ़ है और बड़ी क्रिया को उठाता और दुःखी होता है वह मिथ्याचारी है । जो पुरुष हृदय में रागद्वेष से रहित है-पर कर्म इन्द्रियों से चेष्टा करता है वह विशेष है अपने जाने में कुछ नहीं करता । वह मोक्ष पाता है । हे राजन्! अज्ञानरूप वासना से रहित होकर बिचरो । जो ऐसे होकर बिचरोगे तो आपको ज्यों का त्यों आत्मा जानोगे और सदा उदय रूप सबका प्रकाश आपको जानोगे और जन्म मरण बन्धमुक्ति विकार से रहित ज्यों का त्यों आत्मा भासेगा । हे राजन्! उस पद को पाकर तू शान्तिमान् होगा । अन्य सर्वकला अभ्यास विशेष बिना नष्ट होती है । जैसे रस बिना वृक्ष होता है तो यद्यपि फैलाववाला होता तो भी उगता नहीं । ज्ञानकला अभ्यास बिना नहीं उपजती और उपजकर नष्ट नहीं होती । जैसे धान बोते हैं तो दिन प्रतिदिन बढ़ने लगते हैं, तैसे ही ज्ञानकला दिन प्रतिदिन बढ़ती है । हे राजन्! ज्ञान उपजने से ऐसे जानता है कि मैं न मरता हूँ, न जन्मता हूँ, निरहंकार, निष्किंचनरूप हूँ, सर्वका प्रकाश हूँ, अजर हूँ और अमर हूँ । हे राजन्! ऐसी ज्ञानकला पाकर जीव मोह को नहीं प्राप्त होता । जैसे दूध से दही हुआ फिर दूध नहीं और जैसे दूध को मथकर घृत निकला फिर नहीं मिलता तैसे ही जिसको ज्ञानकला उदय हुई है वह फिर मोह का स्पर्श नहीं करता । हे राजन! अपने स्वरूप में स्थिर होकर और के त्याग करने का नाम पुरुष प्रयत्न है । जिस

www.tantrikastrologer.in

पुरुष को आत्मा की भावना हुई है वह संसार समुद्र से पार हुआ है और जिसको संसार की भावना है वह संसारी जरामृत्यु दुःख को प्राप्त होता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाण प्रकरणे परमार्थोपदेशो नामशततमस्सर्गः ||100||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in